सुदृष्टि गीताञ्जली

(सम्यक्दृष्टि से शुद्ध बुद्ध आनन्द)

(गद्य-पद्यमय)

-आचार्य कनकनन्दी

: पुण्य-स्मरण :

नन्दौड़ में एकला परिवार द्वारा निराडम्बर बिना बोली के तृतीय चातुर्मास (2019) उपलक्ष्य में

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. सुश्री अन्वेषा जैन (उम्र 8 माह) माता - श्वेता, पिता - योगेन्द्र जैन (लन्दन)
2. कुमार अन्मय के जन्म दिवस के उपलक्ष्य में श्री मयंक s/o श्री भँवरलाल जी शाह, चितरी
3. श्रीमती सुरुचि w/o डॉ. आशीष जैन, सागवाड़ा

ग्रंथाङ्क- 319 प्रतियाँ-500

संस्करण-प्रथम 2019 मूल्य-151/- रु.

प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,

उदयपुर (राज.)-313001/मो. 082337-34502

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001

फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622

E-mail:nlkachhara@yahoo.com

आचार्य श्री कनकनन्दी जी को प्रतिनमोस्तु सहित आशीर्वाद।

आप गीताञ्जली के माध्यम से धर्म की प्रभावना कर रहे हैं। आपने अधिकतर सभी विषयों पर लिखा हैं। आप इसी तरह अनवरत रूप से अपनी लेखनी चला कर भव्य जीवों का धर्म मार्ग प्रशस्त करें तथा आप निस्पृह साधना के द्वारा समस्त जन-जन पर दिगम्बर जिनधर्म की अमिट छाप छोड़ें। आप स्व-कल्याण तो निश्चित रूप से कर ही रहे हैं और आपकी लेखनी पर कल्याण करने में परम सहायक बनें यही आशीर्वाद!

ग.आ. कुन्थुसागर

28.6.2019

श्री क्षेत्र कुन्थुगिरि

ज्ञान-भाव क्रान्ति पर्व श्रुत पञ्चमी सम्पन्न

वाग्वर अञ्चल के सांस्कृतिक नगर सागवाड़ा की ग.पु. कॉलोनी के निवासी श्रीमती टीना ध.प. मनीष जैन के नूतन स्व गृह में विराजित प.पू. वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी गुरुवर श्रीसंघ के ग्रीष्मकालीन प्रवास व स्वाध्याय से दान-सेवा आदि गुणों के माध्यम से हो रही महती आध्यात्मिक प्रभावना की शृंखला में अभूतपूर्व ज्ञान-भाव क्रान्ति युक्त साहित्य पर्व श्रुत पञ्चमी सोल्लास सम्पन्न हुआ।

प्रभातकाल में जिनवाणी शास्त्रों को शिर पर धारण कर महिला व पुरुषों ने शोभा यात्रा में भाग लेकर देवाधिदेव विमलनाथ दि. जैन मन्दिर में आयोजित सभा में आचार्यश्री का क्रान्तिकारी आध्यात्मिक प्रभावना युक्त सम्बोधन श्रवण किया। आचार्य श्री ने यहाँ के आबाल महिला पुरुष वृद्ध जनों के गुण व दोषों की समीक्षा करते हुए कहा कि जो नास्तिक व दुराचारी हैं, परलोक, धर्म, तप, चारित्र व जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कथित शास्त्र आदि को नहीं मानते हैं, दुर्बुद्धि हैं व तीव्र मिथ्यात्व से भरे हुए हैं ऐसे जीवों को नरक में भी स्थान प्राप्त न होकर वे अनन्त दुःखों के सागर ऐसे निगोद को जाते हैं। और वहाँ पर वे पापी अपने पाप से अनन्त काल पर्यन्त वचनातीत जन्म-मरण जनित महादुःखों को भोगते हैं। आचार्यश्री ने फटकार लगाते हुए ऐसे भाव पापों से बचकर शुभ भावों में प्रवृत्ति हेतु प्रेरित किया।

मध्याह्न में स्व सृजित जिनवाणी पूजा व श्रुत पञ्चमी पर्व की प्रेरक कविता के माध्यम से आचार्य श्री ने स्थानीय व अञ्चल से पधारे स्वाध्याय प्रेमियों को अनेकान्तिक समन्वय पद्धति से आत्मबोध कराते हुए अनात्म भावों से परे रहने का नियम दिया जिसे सभी ने सहर्ष स्वीकार किया। ग.पु. कॉलोनी के सभी आबाल वृद्धों ने आचार्य श्रीसंघ के आगामी चातुर्मास व प्रवास हेतु भावभीना निवेदन किया। इस अवसर पर आचार्य श्री सृजित ग्रन्थ द्वय का विमोचन ज्ञानदाताओं के शुभ हस्ते हुआ। 1. कल्याणालोचना गीताञ्जली धारा...100, ग्रन्थांक 313 व 2. विश्व विज्ञान रहस्य गीता. धारा...104, ग्रंथाक 317 आचार्य श्री ने ज्ञानदानियों को साहित्य व आशीर्वाद प्रदान किया।

शुभाकांक्षी-श्रमण मुनिसुविज्ञसागर

प्रभावी गुरु आचार्य कनकनन्दी जी

(चालः- फूल तुम्हे भेजा है खत में).... रचयिता- कुमार चैत्य जैन कक्षा-9वी, उदयपुर

नाम जिनका कनकनन्दी...आपके शुभ दर्शन से...
दर्शन वन्दन से ज्ञात हुआ कि...आप कितने गुणवन्त हैं...(स्थायी)
आओ रे! आओ गुरुकुल में...कुछ ज्ञान अर्जन कर लो...
जिनका ज्ञान इतना प्रभावी...वो कितने ज्ञानी होंगे...नाम...(1)

विविध विधा के अधिज्ञानी है...बहु भाषा के शिरोमणि...
जिनका विज्ञान इतना आधुनिक...वो कितने विज्ञानी है...नाम(2)

नन्दी संघ के शिक्षा गुरुवर...कनकनन्दी जी वैश्विक हैं...
जिनके शिष्य इतने विशुद्ध...वो कितने विशुद्ध होंगे...नाम(3)

कनकनन्दी के दीक्षा गुरुवर...गणधराचार्य कुन्थुसागर हैं...
जिनके शिष्य इतने आध्यात्मिक...वो कितने आध्यात्मिक होंगे...नाम...(4)

ऐसे हितैषी ऐसे मनीषी...सद्ज्ञानी (तत्त्वज्ञानी) गुरुवर हैं...
'चैत्य' करे विनम्र नमन...आपके गुण पाने हैं...नाम...(5)

ग.पु. कॉलोनी, दि. 1.6.2019, मध्याह्न 1.25

ऐ मेरे कनक गुर ज्ञानी

(चाल:- ऐ मेरे वतन के लोगों....) रचयिता - कुमार वर्ण जैन ग.पु. कॉलोनी

ऐ मेरे कनक गुरु ज्ञानी, आप ज्ञान के पारगामी।
ज्ञान-विज्ञान के महागुरु, मैं चरणों में नमन करूँ।
ज्ञान-विज्ञान के दाता,कुन्थुसागर के शिष्य।
आप की वाणी सुनकर, हम सब प्रेरित है जन-गण।

मैं (आत्मा) को है आप ने जाना, आत्मा व शरीर भिन्न माना।
आप हो विश्व के ज्ञाता, हम सब को ज्ञान देना।
ख्याति-पूजा त्यागी आपने, राग द्वेष मोह त्यागा,
ईर्ष्या-घृणा त्यागी, अपेक्षा-उपेक्षा त्यागी।

आप मुझे शिक्षा दो, जिससे मैं बनूँ ज्ञानी।
कनकनन्दी गुरुवर को, मेरा बारमबार प्रणाम है।
ग.पु. कॉलोनी -7:30

कनकनन्दी गुरुवर ज्ञान मुझे दो

(चाल: हर घड़ी बदल रही है रूप जिंदगी) रचयिता -वर्ण जैन, ग्रीष्म प्रवास स्वाध्याय कर्त्ता परिवार

कनकन्दी गुरुवर ज्ञान मुझे दो।...
हे। समता धारी गुरुवर ज्ञान मुझे दो...
गुरुवर ज्ञानी हो आप...ज्ञान के लिए आया हूँ पास।...
चाहूँ मैं ज्ञान परे मन से,मिलता ज्ञान मुश्किल से।
ऐसा है ज्ञान गुरुदेव के पास,बस वही है वैज्ञानिक ज्ञान।
उस ज्ञान को मैं चाहूँ,
वो ज्ञान-विज्ञान अन्य न कहाँ हो...कनक...
निवेदन है हमारा,चातुर्मास यहाँ करो।
ज्ञानी हम बनेंगे,आप से ज्ञान लेकर।
उस ज्ञान से बने हम ज्ञानी,
आपको ''वर्ण' का प्रणाम है। कनकनन्दी गुरु...

जहाँ गुरु कनकनन्दी वहाँ ज्ञान-ध्यान

(चाल:- जहाँ डाल-डाल पर सोने) रचयिता-कुमार वर्ण

जहाँ कनकनन्दी गुरुदेव विराजे, वहाँ ज्ञान-ध्यान ही होता।
ये कनक गुरु है ज्ञानी...(2)
ये सत्य के मार्ग पर चलते हैं और मैं का ज्ञान देते।
ये कनक गुरु है ज्ञानी...(2)।
यह आत्मा का ज्ञान देते हैं, और इनने आत्मा को पहिचाना।
ये कनक गुरु है ज्ञानी...
कुन्थुसागर जी के शिष्य हैं, इनके मैं गुण गाऊँ।
ये कनक गुरु है ज्ञानी...(2)
इन्होंने बहुत ग्रन्थ लिखे हैं, ये हैं ज्ञानी-विज्ञानी।
ये कनक गुरु है ज्ञानी...(2)
इनसे शिक्षा लेकर, हम ज्ञान-दान भी देते।
ये कनक गुरु हैं ज्ञानी...(2)
समता-शांति में रहने वाले, ये गुरुवर हैं न्यारे
ये कनक गुरु हैं ज्ञानी...(2)
गुरुवर ऐसा ज्ञान दो, जिससे मैं बनूँ ज्ञानी।
ये कनक गुरु हैं ज्ञानी...(2)
मैं जीव रक्षा करूँ, मुनियों की रक्षा करूँ।
ये कनक गुरु हैं ज्ञानी...(2)।

''कितने ज्ञानी कनक गुरुवर''

(चाल :- तू कितनी अच्छी है...ओ माँ) रचयित्री-कुमारी क्रिया जैन

कितने ज्ञानी हो...कितने ध्यानी हो...कितने विज्ञानी हो...
कनक गुरुवर...श्रमण गुरुवर...(स्थायी)...
प्रात:काल में भ्रमण को जाते...व्यायाम करते स्वस्थ रहते...
कुन्थु गुरु के शिष्य हो प्यारे...सारे जग से न्यारे...
आध्यात्मिक हो...वैज्ञानिक हो...कितने ज्ञानी हो...कनक गुरुवर...(1)

वैज्ञानिक चैनल देखते हो...जीव दया का भाव रखते हो...
अनेक प्रकार कविता लिखकर...ग्रन्थों में छपवाते...
अच्छे लेखक हो...महाकवि हो...कितने ज्ञानी हो...कनक गुरुवर...(2)
ग.पु. कॉलोनी, दि. 5.6.2019, मध्याह्न

हम कनक गुरु के शिष्य

(चाल :- सन्देशे आते हैं...) रचयित्री-कुमारी क्रिया जैन, ग.पु. कॉलोनी

कनक गुरु आए हैं...हमें पढ़ाते हैं...ज्ञानी बनाते हैं...
कुन्थु गुरु के शिष्य...आध्यात्मिक सन्त हैं
वैज्ञानिक ज्ञानी-ध्यानी हैं...कनक(ध्रुव)
मोह को छोड़ा है...द्वेष को छोड़ा है...राग को छोड़ा है...
बड़े ही सरल हैं...बड़े विज्ञानी है...
हम शिष्य बहुत प्रसन्न है...कनक(1)
हम आहार देते हैं...पुण्य कमाते है...गुरु गिफ्ट देते हैं...
बड़ा आनन्द आता...ज्ञान बढ़ता जाता...
ऐसे गुरुवर को 'क्रिया' का नमन है...कनक(2)

मोक्षमार्गी कनकनन्दी गुरु

(तर्ज :- (ओ पिया....) रचयित्री-श्रीमती सुरुचि w/o डा. आशीष जैन सागवाड़ा

कनक गुरुवर कनक गुरुवर
ले के पिच्छी कमण्डल ओ गुरुवर...2
ज्ञान का दीप जलाकर
चले आप मोक्ष मार्ग...2
मोक्ष मार्ग तो लगे सबसे भला
सबसे भला...कनक गुरुवर...2
हम तो अज्ञानी ये जाना है अभी...
आप हो सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी ये जाना है अभी...हो हो...2
पहले हम विपरीत बुद्धि वाले थे...
पाप में ही रहने रमने वाले थे...हो-हो...2

जब से मिली स्वाध्याय की घड़ी...2
ज्ञान का विकास हुआ
सुरुचि भी बढ़ी...2 कनक गुरुवर...2
चलूँ मैं भी मोक्षमार्ग...2
मोक्षमार्ग तो लगे सबसे भला...2

सागवाड़ा, दि. 12.6.2019 प्रातः8.30

''कनक गुरु की वाणी खिरी''

(तर्ज: गौरी तेरी आँखें...) - श्रीमती सुरुचि डा. आशीष जैन सागवाड़ा

कनक गुरु की वाणी खिरी... के मैं रात भर सोयी नहीं...
उनके ही विचार आये मुझे... सपनों में भी दिखते हैं वही...
स्वाध्याय में रूची बढ़ी मैं का बोध हुआ
निगोद का बोध हुआ आत्मा का ध्यान कराया मुझे, कनक गुरु की वाणीऽऽ...
गुरु नहीं मिलते तो मेरा क्या होता क्या पता
वो है मेरे पास तो लगता सब कुछ मिल गया... पर निंदा से बचाया
मेरे दोषों को बताया मैंने उनके गुणों को देखकर
समता को अपनाया...(3)
उनसे ऊर्जा मिलती मुझे उनके जैसी ही बन जाऊँ मैं भी
घर पर मन अब लगता नहीं गुरु के चरणों में रम जाऊँ अभी
स्वाध्याय..., मैं..., आत्मा... कनक गुरु की...

सागवाड़ा, दि. 11.6.2019, प्रातः 10.00 बजे

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृ.स.
(1)	ज्ञान-भाव क्रान्ति पर्व श्रुतपञ्चमी सम्पन्न	2
(2)	प्रभावी गुरु आचार्य कनकनन्दी जी	3
(3)	ऐ मेरे कनक गुरु ज्ञानी	4
(4)	जहाँ गुरु कनकनन्दी वहाँ ज्ञान-ध्यान	5
(5)	कितने ज्ञानी कनक गुरुवर	5
(6)	हम कनक गुरु के शिष्य	6
(7)	कनक गुरु की वाणी खिरी	7

सुदृष्टि गीताञ्जली

(1)	जयतु! नन्दतु! श्री जिनवाणी!	9
(2)	सम्यग्दर्शन महान् है!	27
(3)	सुदृष्टि में अनन्त श्रद्धा-शक्ति!	40
(4)	मम शुद्धात्मा ध्यान	61
(5)	मोहात्मक प्रसिद्धि v/s मोह रहित सिद्धि	88
(6)	अनन्त विभाव त्याग से अनन्त वैभव पाऊँ!	112
(7)	सत्य-समता की शक्ति-मेरे अनुभव से/(मैं)	128
(8)	समता शान्ति से स्व-पूर्णता हेतु, अन्य की न्यूनता से स्वयं को पूर्ण न मानूँ	143
(9)	मेरा उत्तम क्षमा धर्म	162
(10)	मोही ही महापापी/मोही ही निगोदिया बनते/मोह की अनंत शक्ति	181
(11)	आत्मन्! स्व शुद्धात्मा श्रद्धान बिना सभी धर्म संसार वर्धक	195
(12)	सम्यक्त्व की आत्मकथा	201
(13)	आध्यात्मिक शक्ति बढ़ाने हेतु...	209
(14)	माँ जिनवाणी से जाना स्व अनन्त विश्वरूप	228
(15)	क्या है धर्म ? क्या है कर्म ?	245
(16)	अन्तः (स्व) प्रवृत्ति से पर (बाह्य) निवृत्ति	246
(17)	सुशिष्य की सद्गुरु प्रति कृतज्ञता व व्यथा ज्ञापन	247

जयतु! नन्दतु! श्री जिनवाणी

(पंचमकाल में भरतक्षेत्र में जिनवाणी ही सर्वोच्च)

(चालः- तुम दिल की....)

जयतु! जयतु! हे! जिनवाणी, सर्वज्ञसुता सर्वज्ञानमयी।
नन्दतु! नन्दतु! हे! सरस्वती, 'विश्वहितंकरी हे! जगज्जननी।। स्थायी।।
तेरे प्रसाद से निकट भव्य, बनते सुदृष्टि त्याग के मोह।
सत्य असत्य का करते ज्ञान, द्रव्य तत्त्व नवपदार्थ ज्ञान।।
आत्म-अनात्म का करते ज्ञान, आत्मा को परमात्मा बनाने का ज्ञान।
हेय उपादेय का होता सुज्ञान, त्यजनीय-ग्रहणीय का सुज्ञान।। (1)।।

सर्वज्ञ अभाव अभी पंचमकाल में, गणधर अंगधारी अभाव अभी।
अतएव तुम हो सर्वोच्च मान्य, आचार्य उपाध्याय साधु से पूज्य।।
सम्यक्त्व सहित अभी कोई न जन्मे, देशनालब्धि गुरु आप से करें।
तब ही निकट भव्य बने सुदृष्टि, अन्यथा कोई न बन सके सुदृष्टि।। (2)।।

श्रावक धर्म का ज्ञान होता आप से, पूजादान व्रतशील ज्ञान आप से।
मंदिर निर्माण से ले पंचकल्याणक, दैनिक पूजा से ले विधान तक।।
मुनिधर्म का ज्ञान भी होता आप से, दीक्षा शिक्षा प्रतिक्रमण आप से।
ध्यान अध्ययन से ले समाधि तक, श्रेणी आरोहण से ले मोक्षपर्यंत।। (3)।।

आध्यात्मिक ज्ञान से लौकिक तक स्वप्न शकुन अंगस्फुरण तक।
न्याय राजनीति समाज ज्ञान, भौतिक विज्ञान से पर्यावरण ज्ञान।।
कर्म सिद्धांत से ले मनोविज्ञान, दयादान सेवा परोपकार का ज्ञान।
जीव सुरक्षा से ले पर्यावरण सुरक्षा, अपरिग्रह से ले विश्व सुरक्षा।। (4)।।

पृथ्वी में अनुपलब्ध ज्ञान-विज्ञान, अलौकिक गणित से जीव विज्ञान।
आत्मा को परमात्मा बनाने का परमज्ञान, आप में समाहित है विश्वविज्ञान।।
आप की पूजा साक्षात् केवली पूजा, तव स्वाध्याय परोक्ष दिव्यध्वनि सुनना।
श्रद्धा से आपका जो श्रवण करें, निकट भव्य वह सातिशय पुण्य कमायें।।(5)।।

आप का दान जो श्रद्धा से करें, सुज्ञानी बनकर मोक्ष को वरे।
आप का अनादर जो जीव करे, कुज्ञानी मोही बनकर निगोद जाये।।
आपकी आराधना करते गणधर, द्वादश कोठा के संपूर्ण भव्यवर।
शतेंद्र पूजित आप जगज्जननी,केवली के अनंतर पूज्या जननी।। (6)।।

सात सौ अठारह भाषामयी जननी, निबद्ध अनिबद्धमय जिनवाणी।
अनेकांत स्याद्वादमयी जननी, 'कनकनन्दी' की आप पूज्या जननी।।
सर्वज्ञ कथित गणधर संपादित, परंपरा आचार्य द्वारा रचित।
सूत्र से टीका वार्तिक भाष्य तक आप के स्वरूप अनेकानेक।। (7)।।
ग.पु. कॉ, 9.06.2019, मध्याहन 02:42
(यह कविता आनन्दी बाई व स्वाध्याय मंडल के कारण बनी)

संदर्भ-गुरु एवं शास्त्र की सेवा साक्षात् भगवान् की सेवा

सम्प्रत्यस्ति न केवली किल किलौ त्रैलोक्यचूडामणि-
स्तद्वाचः परमास्तेऽत्र भरतक्षेत्रे जगद्द्योतिका।
सद्रत्नत्रयधारिणो यतिवराँस्तेषा समालम्बनं।
तत्पूजा जिनवाचिपूजनमतः साक्षाज्जिनः पूजितः।। (पद्म.पंच.)

वर्तमान में इस कलिककाल में तीन लोक के पूज्य केवली भगवान् इस भरतक्षेत्र में नहीं है तथापि समस्त भरतक्षेत्र में जगत्प्रकाशिनी केवली भगवान् की वाणी विद्यमान है तथा उस वाणी के आचार स्तम्भ श्रेष्ठ रत्नत्रयधारी मुनि भी हैं। इसलिये उन मुनियों की पूजन तो सरस्वती की पूजन है तथा सरस्वती पूजन साक्षात् केवली भगवान् की पूजन है।

केवली (अरिहंत, तीर्थंकर, सिद्ध) हमारे सर्वोच्च आदर्श-पूजनीय होने पर भी उनकी साक्षात उपलब्धि-संगति-पूजा-उपासना देशना वर्तमान पंचमकाल में भरत-क्षेत्र में संभव नहीं है किन्तु उनके द्वारा सच्चा-अच्छा मार्गदश्नक उपदेश प्राचीन आर्ष-आगम में लिपिबद्ध है और उस मार्ग में यथाशक्ति यथायोग्य गमन करने वाले साधक-साधु हैं। अतः ऐसे जीवन्त साधुओं की उपासना (सेवा, संगति, उपदेश ग्रहण, आहारादि 4 प्रकार के दान देना आदि) करना साक्षात् सरस्वती (आगम-अध्यात्मिक ग्रन्थ) की पूजा है और सरस्वती की पूजा साक्षात् सर्वज्ञ भगवान् की पूजा है, परन्तु खेद का विषय यह

है कि भगवान् के प्रतीक स्वरूप मूर्ति-मन्दिर-तीर्थक्षेत्र आदि के लिये जितना समय-श्रम-धन-मन साधनों का उपयोग करते हैं उसके अनुपात से साधु एवं सरस्वती के लिये कम उपयोग करते हैं जिससे स्वास्थ्य एवं विकास अनुपात से कम हो रहा है।

शास्त्राध्ययन के उद्देश्य एवं फल

बोधिः समाधि परिणाम शुद्धिः स्वात्मोपलब्धि शिवसौख्य सिद्धिः।
चिन्तामणिं चिन्तित वस्तु दाने, त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवी।। (भा. द्वा.)

हे माँ सरस्वती देवी! आपको वन्दन करने वाले मुझे ज्ञान, समाधि, परिणामों में विशुद्धि, स्वात्मा की उपलब्धि, मोक्ष सुख की सिद्धि होवे।

ये यजन्ते श्रुतं भक्त्या ते यजन्तेऽन्तसा जिनम्,
नहिं किंचिदन्तरं प्राहुराप्ता हि श्रुतदेवयो(44) (सागा. धर्मा.)

जो भक्तिपूर्वक श्रुताराधना करते हैं वे प्रकारान्तर से जिनेन्द्र देव की अर्चना ही कर रहे हैं। जिनेन्द्र देव की भक्ति और श्रुत की आराधना में कोई अन्तर नहीं है।

उत्तरोत्तर दुर्लभः बोधि (आत्म-ज्ञान)

देशजातिकुलरूपकल्पताजीवितव्यबलवीर्यसम्पदः।
देशनाग्रहणबुद्धिधारणाःसन्तिदेहिनिवहस्य दुर्लभाः।। (69) अमित.

धर्म धारण करने के योग्य देश-जाति-कुल-रूप-सौन्दर्य-दीर्घायु-बल-वीर्य-सम्पदा, जिनवाणी का उपदेश, उसके ग्रहण करने की बुद्धि और उसे धारण करने की शक्ति इतनी विशेषताओं का मिलना जीव-समुदाय को उत्तरोत्तर दुर्लभ है।

हन्त तासु सुखदान सुखदानकोविदा ज्ञानदर्शनचरित्र सङ्गतिः।
लभ्यते तनुभृताऽतिकृच्छतः कामिनीष्विव कृतज्ञता सती।। (70)

आचार्य खेद प्रकट करते हुए कहते हैं कि उपर्युक्त सामग्री में भी सुख देने में प्रवीण ऐसी समयग्ज्ञान' दर्शन और चरित्र की सङ्गति यह प्राणी अति कष्ट से प्राप्त करता है, जैसे कि स्त्रियों में सुन्दर कृतज्ञता अति कष्ट से पायी जाती है।

साधुलोक महिता प्रमादतो बोधिरत्र यदि जातु नश्यति।
प्राप्तये न भविना तदा पुनर्नीरधाविव मनोरमो मणिः।। (71)

इस लोक में साधुजनों से पूजित रत्नत्रय की प्राप्ति रूप यह बोधि यदि कदाचित् प्रमाद से नष्ट हो जाती है, तो फिर संसारी जीव को नहीं प्राप्त होती है। जैसे कि समुद्र

में गिरा हुआ मनोहर मणि पुनः नहीं प्राप्त होता है।

हन्त बोधिमपहाय शर्मणो योऽधमो वितनुते धनार्जनम्।
जीविताय विषवल्लरीं स्फुटंसेवतेऽमृतलतामपास्य सः।। (72)

यह बड़े दुःख का विषय है कि ऐसी अतिदुर्लभ बोधि को पाकर के भी जो अधम पुरुष उसे छोड़कर सुख के लिए धन का उपार्जन करता है, वह अमृतलता को छोड़कर जीवित रहने के लिए नियम से विषवेलि का सेवन करता है।

योऽत्र धर्ममुपलभ्य मुञ्चते क्लेषमेष लभतेऽतिदारुणम्।
यो निदानमनघं व्यपोहते खिद्यते स नितरां किमद्भुतम।।(73)

जो मनुष्य इस भव में ऐसे उत्तम धर्म को पाकर के छोड़ता है, वह अति दारुण क्लेश को पाता है। जो निर्दोष धन के भण्डार को छोड़ता है, वह अत्यन्त खेदित होता ही है, इसमें क्या आश्चर्य है।

मुञ्चता जनन मृत्युयातनां गुह्णता च शिवतातिमुत्तमाम्।
शाशवतीं मतिमता विधीयते बोधिरद्रिपतिचूलिकास्थिरा।। (74)

जो मतिज्ञान पुरुष जन्म-मरण की यातना को छोड़ता है और उत्तम कल्याण-परम्परा को ग्रहण करता है, वह सुमेरु की स्थिर चूलिका के समान रत्नत्रय की प्राप्ति रूप बोधि को शाश्वत नित्य बनाता है।

जिणवयण मोसदमिणं विसय सुहं विरेयणं अमिद भूयं।
जर मरण वाहि हरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं।। (दंसण पाहुड)

यह जिनवचन रूप औषधि इन्द्रिय विषय से उत्पन्न सुख को करने वाला है तथा जन्म-मरण रूप रोग दूर करने के लिए अमृत सृदश है और सर्व दुःखों के क्षय का कारण है।

शास्त्रं वदोडे शांति सैरने निर्गव नीति मेल्वातु मुक्ति स्त्री चिंते।
निजात्म चिंतने निल वेलक तेल्लदा शास्त्रादिं।।
दुस्त्रीचिंत ने दुर्मुखं कलहमु गर्व मनंगों दंडें।
शास्त्र शस्त्र में शास्त्रिमनला रत्नाकराधीस्वरा।। (कन्नड काव्य)

शास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर शांति और सहिष्णुता को धारण करना, अहंकार से रहित होना, धार्मिक बनना, मृदु बातें करना, मोक्ष चिंता तथा स्वात्म चिंता में निरत रहना श्रेष्ठ कर्त्तव्य है। इसके विपरीत शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त कर स्त्रियों की चिंता, क्रोध, मान, माया आदि से विकसित स्पर्धा और अहंकार के उपयोग से शास्त्र शस्त्र बन

जाता है और शास्त्रज्ञ भी शास्त्रधारी हो जाते हैं। अभिप्राय यह है कि शास्त्र ज्ञान का उपयोग आत्महित के लिए करना चाहिए।

सतत अध्ययनशीलता के लाभ

णिउणं विउलं सुद्धं णिकाचिद मणुत्तरं च सव्वहिदं।
जिणवयणं कलुसहरं अहो य रत्ती य पढिदव्वं।। (98) भ. आ.

निपुण, विपुल, शुद्ध अर्थ से पूर्ण, सर्वोत्कृष्ट और सब प्राणियों का हित करने वाला द्रव्य कर्म, भाव कर्म रूपी मल का नाशक जिनवचन दिन-रात पढ़ना चाहिए।

जिनवचन रात-दिन पढ़ना चाहिए। किस प्रकार जिनवचन पढ़ना चाहिये ? इसके उत्तर में कहते हैं जो निपुण हो अर्थात् जीवादि पदार्थों का प्रमाण और नय के अनुसार निरूपण करने वाला हो, पूर्वापर विरोध पुनरुक्तता आदि बत्तीस दोषों से रहित होने से शुद्ध हो विपुल हो अर्थात् निक्षेप, निरुक्त, अनुयोग द्वार और नय इन अनेक विकल्पों से जो जीवादि पदार्थों का विस्तार से निरूपण करता है। निकाचित अर्थात् अर्थ से भरपूर हो। अनुत्तर अर्थात् जिससे कोई उत्तर यानी उत्कृष्ट न हो। दूसरों के वचन पुनरुक्त, निरर्थक, बाधित और प्रमाण विरुद्ध है, अतः उनसे जिनवचन उत्कृष्ट है, क्योंकि जो गुण उनमें संभव नहीं है उन गुणों से युक्त है।

सब प्राणियों का हितकारी है। दूसरों के मत तो किन्हीं की ही रक्षा सूचित करते है। ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्म और अज्ञानादि भाव मल का विनाश करने से जिनवचन पाप हरने वाला है। उसे रात-दिन पढ़ना चाहिए इससे निरंतर अध्ययन करना सूचित किया है।

जिनवचन की शिक्षा में गुण

आदहिदपइण्णा भाव संवरो णवणवो या संवेगो।
णिक्कपदा तवो भावणा य परदेसि गतं चा।। (99) भ. आ.

आत्महित का ज्ञान होता है। भाव संवर होता है। नवीन-नवीन संवेग होता है, रत्नत्रय में निश्चलता होती है। स्वाध्याय तप होता है और भावना होती है और दूसरों को उपदेश करने की क्षमता होती है।

जिनवचन के पढ़ने से आत्महित का परिज्ञान होता है। इन्द्रिय सुख अहितकर है, उसे लोग हितकर ग्रहण करते हैं। इन्द्रिय सुख-दुःख का प्रतिकार मात्र है, अल्प

काल तक रहता है। पराधीन है, राग का सहकारी है, दुर्लभ है, भयकारी है, शरीर का आभास मात्र है, अपवित्र शरीर के स्पर्श से उत्पन्न होता है। उसकी यह अज्ञानी सुख मानता है। समस्त दुःखों के विनाश से उत्पन्न हुआ स्वास्थ्य आत्मा में स्थिति भाव स्थायी सुख है, यही नहीं जानता। वह सुख जिनवचन के अभ्यास से प्राप्त होता है। भाव अर्थात् परिनणाम का संवर अर्थात् निरोध भाव संवर है।

ज्ञान से आत्महित परिज्ञान

णाणेण सव्वभावा जीवाजीवा सवादिय तधिगा।
णज्जदि इह परलोए अहिदं च तहा हियं चेव।। (100)

ज्ञान के द्वारा, जीव, अजीव, आस्रव आदि सब पदार्थ तथ्यभूत जाने जाते है। उसी प्रकार से इस लोक और परलोक में अहित और हित जाना जाता है।

शांत एवं एकाग्र मन से लाभ

शोक-मद-मदन-मत्सर-कलह-कदाग्रह-विषाद-वराणि।
क्षीयवन्ते शान्त हदामनुभव एवात्र साक्षी नः।। (18)

शांत हृदय वालों के शोक, मद,काम, मत्सर, कलह, कदाग्रह,विषाद और वैर ये सब क्षीण हो जाता है। शमयुक्त चित्त वालों के शोक इष्टवियोगादि से उत्पन्न हुआ चित्त का उद्वेग अथवा पश्चात्ताप, जाति आदि 6 प्रकार के मद, काम विकार, मात्सर्य (डाह, ईर्ष्या, दूसरे के गुणों को न सहना), कलह (वाग्युद्ध, झगड़ा) कदाग्रह (मिथ्या आग्रह) विषाद (कार्य करने की अशक्ति) और वैर (विरोध द्वेष) ये सब क्षीण हो जाते हैं। शांत चित्त व्यक्तियों के शोकादि का नाश होने में हमारा अनुभव ही, यानी प्रकट हुए गुणसंपत्ति का साक्षात् दर्शन करने वाली हमारी बुद्धि ही साक्षीभूत है अर्थात् उसे साक्षात् देखने वाली है।

शान्ते मनसि ज्योतिः प्रकाशते, शान्तमात्मनः सहजम्।
भस्मीभवत्यविद्या मोहध्वान्तं विलयमेति।। (19)

मन शांत हो जाने पर आत्मा की स्वाभाविक और शांत-ज्योति प्रकाशित होती है, अविद्या भस्मीभूत हो जाती है और मोहरूपी अंधकार का सर्वथा विनाश हो जाता है। जब चित्त वृत्ति शांत (निर्विकार) हो जाती है, तब आत्मा का सहज (स्वभाव सिद्ध) और शांत (विभाव विकार रहित) ज्योति प्रकाशित करने वाला

चैतन्य प्रकाशित हो जाता है, उसके साथ ही अज्ञानदशा भस्मीभूत यानी निर्मल हो जाती है और मोहरूपी अंधकार सर्वथा विनष्ट हो जाता है।

हाय रे! अयोग्य-साक्षरी-आधुनिक वाली व वाले! ?

(विविध चाल :- बड़ा नटखट है रे...., जिन्दगी एक सफर है सुहाना....फूलों का तारों का...., ऐके लाल दरवाजे....)

हाय रे! साक्षरी...आधुनिक वाली-फैशन-व्यसन...उदण्ड वाली...
दया दान सेवा रहित वाली...अस्त-व्यस्त व संत्रस्त वाली...
शांति-समता से रहित वाली...हो...हाय रे!...(स्थायी)...
रटन्त पढ़ाई व...डिग्री वाली...संस्कार-संस्कृति...रहित वाली...
प्रयोग-अनुभव-रहितवाली...दिखावा-ढोंग...करने वाली...
मर्यादा रहित...बोल्ड वाली...दिखावा व ढोंग...सहित वाली...हाय रे!...(1)...
गुरुजनों को न...मानने वाली...नेता-अभिनेताको मानने वाली...
परिवार की सेवा...न करने वाली...टी.वी. सीरियल...देखने वाली...
फैशन-स्टाइल करने वाली...हाय रे! साक्षरी...आधुनिक वाली...हाय रे!(2)...
सेवा सहयोग से...रिक्त वाली...आहारदान से...रहित वाली...
विनय-सदाचार...रहित वाली...हॉटेल-क्लब में जाने वाली...
रेडिमेड भोजन...करने वाली...भोजन सही न...बनाने वाली...हाय रे!...(3)...
ईर्ष्या-घृणा व तृष्णा वाली...निन्दा-अपमान/(चुगली)...गप्प वाली...
वाद-विवाद...झगड़ा कलह वाली...परिवार में फूट...डालने वाली...
मन्थरा सम व्यवहार वाली...हाय रे! साक्षरी...आधुनिक वाली...हाय रे...(4)
भ्रूण हत्या व दहेज वाली...झूठा मुकदमा करने वाली...
लिव इन रिलेशनशिप वाली...बॉयफ्रेण्ड व अश्लील वाली...
सादा जीवन उच्च विचार,रिक्त वाली..हाय रे! साक्षरी..आधुनिक वाली..
हाय रे!(5)

तनाव-उदास...फोबिया वाली...शांति-तृप्ति...रहित वाली...
रोग-शोक...अतृप्त वाली...आत्म ग्लानि...आत्महत्या वाली...
मानव जीवन...व्यर्थ(करने) वाली...हाय रे! साक्षरी...आधुनिक वाली...(6)
साक्षरी पुरुष (भी)...जो (उक्त) दुर्गुण युक्त...वे भी उपरोक्त...दुःख सहित...

साक्षरी सदाचारी...संस्कृति बनो...प्रगतिशील/(उदार)...आधुनिक बनो...
'कनकनन्दी' का आशीष...महान् बनो...हाय रे! साक्षरी...हाय रे!..(7)

अध्ययन ही ध्यान है

अज्झयणमेव झाणं पंचेदिय णिग्गहं कसायं पि।
तत्तो पंचमकाले पवयणसारब्भासमेव कुज्जा हो।। (95) (रयण)

अन्वयार्थः-(पंचमकाले) इस दुस्सह पंचम काल में (अज्झयणमेवज्झाणं) जिनशास्त्रों का अध्ययन ही ध्यान है (पचेंदिंय णिग्गह) पंचेन्द्रियों का निग्रह करने वाला है (कसायपि) कषायों का भी निग्रह करने वाला है (पवयणसारब्भासमेव) जिनोक्त-प्रवचनसार का ही अध्ययन (कुज्जा) अवश्य करो, करना चाहिए।

पद्य- अध्ययन ही है ध्यान पंचेन्द्रिय निग्रह-कषाय भी।
अतः पंचम काले प्रवचनसार अभ्यास ही करणीय ही।।
समीक्षा- हीन संहनन आदि विपरीत परिस्थिति में अध्ययन ही ध्यान।
अतः पंच प्रकार अध्ययन ग्रन्थ लेखनादि अति उत्तम धर्म।।

त्रिकरण शुद्धि पूर्व धर्मध्यान

धम्मज्झाणब्भासं करेइ तिविहेण जाव सुद्धेण।
परमप्पज्झाणचेतो तेणेव खवेइ कम्माणि।।(96) रयण.

अन्वयार्थ :- (धम्मज्झाणब्भासं) धर्मध्यान का अभ्यास (तिविहेण) त्रिकरण पूर्वक (भावसुद्धेण) भावों की शुद्धि से (करेइ) जो करता है (परमप्पज्झाण चेतो) उसे परमात्म ध्यान का कारण बनता है (तेणेव कम्माणि) उसी परमात्म ध्यान से ही कर्मो का (खवेइ) नाश करता है।

पद्य- धर्मध्यान अभ्यास करणीय यावत् त्रिकरण शुद्धि से।
परमात्माध्यान चित्त में उससे ही होते हैं कर्मक्षय।।
समीक्षा- मन, वचन-काय शुद्धि से धर्मध्यान अभ्यास सदाकरणीय।
इससे ही होगा परमात्माध्यान परम्परा से जिससे मिलेगा मोक्ष।।

सम्यग्ज्ञान ही धर्मध्यान

पावारंभ णिवित्ती पुण्णारंभे पउति करणं पि।
णाणं धम्मझाणं जिणभणियं सव्व जीवाणं।। (97) रयण.

अन्वयार्थ :- (पावारंभणिवित्ती) हिंसादि पापारंभो से निवृत्ति होना (पुण्यारंभ पउत्ति करणं पि) और पुण्य कार्यों में प्रवृत्ति करना (णाणं धम्मज्झाणं) ज्ञान और धर्मध्यान को करना (सव्व जीवाणं) यह सभी देह धारियों को सब संसारी जीवों को करने के लिए (जिणभणियं) जिनेन्द्र भगवान् ने आदेश दिया है।

पद्य- पापारंभ से निवृत्ति पुण्यारंभ में प्रवृत्ति करने से।
होता है ज्ञान धर्मध्यान जिनेन्द्र भणित सर्व जीव हेतु।।

समीक्षा- पापों से निवृत्त व पुण्य में प्रवृत्ति होती है सुज्ञान से।
अतएव सुज्ञान है धर्म ध्यान कुज्ञानी को न होता धर्म ध्यान।।

श्रुताभ्यास के बिना सम्यक् तप नहीं

सुदणाणब्भासं जो ण कुणइ सम्मं ण होइ तवयरणं।
कुव्वं जइ मूढमई संसारसुखाणुरत्तो सो।। (98) रयण.

अन्वयार्थ :- (जो) जो योगी(सुदणाणब्भास) श्रुतज्ञान का अभ्यास (ण कुणइ) नहीं करता है (तस्य) उस योगी का (तवयरणं) तपश्चरण (सम्मं) सम्यक् पूर्वक (ण) नहीं (होई) होता है (मूढमई) मूढमति (यदि) यदि तपश्चरण(कुव्वं) करता भी है (संसार सहाणुरत्तो सो) वह संसार भोग सम्बन्धी सुखों में अनुरक्त रहता है।

पुद्य- जो श्रुताभ्यास नहीं करते उनका न होता धर्मध्यान सम्यक्।
यदि करता है मूढमति संसार सुख अनुरक्त भाव से।

समीक्षा- श्रुताभ्यास से होता है सुज्ञान जिससे होता भेद-विज्ञान।
जिससे होता वीतराग विज्ञान, जिससे होता वैराग्यपूर्ण धर्मध्यान।।
अन्यथा श्रुताभ्यास बिन न होता उपरोक्त सुज्ञान।
जिससे जो होता धर्म ध्यान वह होता संसार सुख अनुरंजन।।
ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि व वर्चस्व भोगोपभोग हेतु।
जो होता है धर्म ध्यान जिससे संसार भ्रमण होता वर्द्धमान।।

मुनिराज तत्त्वचिंतक होते हैं

तच्चवियारणसीलो मोक्ख महाराहणा सुहावजुदो।
अणवरयं धम्मकहा पसंगओ होइ मुणिराओ।। (99)

अन्वयार्थः- (मुणिराओ) मुनिराज (तच्च विसारण सीलो) तत्त्वों के विचार करने में कुशल(मोक्ख महाराहणा) मोक्ष मार्ग की आराधना करने में (सुहावजुदो)

स्वभाव से युक्त जुड़े रहते हैं (अणवरयं) जो निरन्तर(धम्मकहा) धर्मकथा में (पसंगओ) संलग्न (होई) रहते हैं।

पद्य- तत्त्व विचारणशील, मोक्षमहाराधना स्वभाव युक्त।
अनवरत धर्मकथा प्रसंग सहित होते मुनिराज।।

जयत्यशेषामरमौलिलालितं सरस्वति त्वत्पदपंकजद्वयम्।
हृदि स्थितं यज्जनजाड्यनाशनं रजोविमुक्तं श्रयतीत्यपूर्वाताम्।।(1)।। श्री पद्म.प.

समस्त प्रकार के जो देव उनके जो मुकुट उनकर के लालित अर्थात् जिनको समस्तदेव मस्तक नवाकर नमस्कार करते हैं ऐसी हे सरस्वति मातः! आपके दोनों चरणकमल सदा इस लोक में जयवंत हैं जो चरण कमल मन में तिष्ठते हुए मनुष्यों की समस्तप्रकार के जड़ताओं के नाश करने वाले और रजकर रहित अपूर्वता को आश्रय करते हैं।

अपेक्षते यन्न दिनं न यामिनीं नचांतरं नैव वहिश्च भारति।
न तापकृज्जाड्यकरं न तन्महःस्तुवे भवत्याः सकलप्रकाशकम्।।(2)।।

हे सरस्वती! जो आपका तेज न तो दिन की अपेक्षा करता है और न रात्रि की अपेक्षा करता है और न भीतर की अपेक्षा करता है और न बाहर की अपेक्षा करता है और जो तेज न जीवों का संताप का देने वाला है और न जड़ता का करने वाला है तथा जो समस्त प्रकार के पदार्थों का प्रकाश करने वाला है आचार्य कहते हैं कि इस प्रकार के सरस्वती के तेज को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ अर्थात् ऐसा सरस्वती का आश्चर्य का करने वाला तेज मेरी रक्षा करे।

तव स्तवे यत्कविरस्मि साम्प्रतं भवत्प्रसादादिव लब्धपाटवः।
सवित्रि गंगासरितेऽर्घकदायको भवामि तत्तज्जलपूरिताञ्जलिः।।(3)।।

हे सरस्वती मातः! आपकी कृपा से ही प्राप्त किया है चातुर्य जिसने ऐसा जो मैं इस समय आपकी स्तुति करने में कवि हुआ हूँ उससे ऐसा मालूम होता है कि गंगा नदी के जल से पूरित (भरी हुई) है अंजिली जिसकी ऐसा मैं गंगा नदी के लिये ही अर्घ देने वाला हूँ। जिस प्रकार गंगा नदी से पानी लेकर उसी को अर्ध देते हैं उसी प्रकार हे मातः सरस्वति आपकी कृपा से ही चातुर्य प्राप्त कर आपकी स्तुति में ही मैं कवि हुआ हूँ।।

श्रुतादिकेवल्यपि तावकीं श्रियं स्तुवन्नशक्तोऽहमिति प्रपद्यते।

जयेति वर्णद्वयमेवमादृशा वदंति यद्देवि तदेव साहसम्।।(4)।।

हे सरस्वति मातः! आपकी शोभा की स्तुति करता हुआ श्रुत है आदि में जिसके ऐसा केवली भी अर्थात् श्रुतकेवली भी जब ''मैं सरस्वती की शोभा की स्तुति करने में ''असमर्थ हूँ ऐसा अपने को मानता है तब मुझ सरीखे मनुष्यों की तो क्या बात है ? अर्थात् मुझ सरीखे मनुष्य तो आपकी स्तुति कर ही नहीं सकते किंतु हे देवी! जो मुझ सरीखे मनुष्य आपके लिये जय इन दो वर्णों को भी बोलते हैं वही मेरे सरीखे मनुष्यों का एक बड़ा भारी साहस है ऐसा समझना चाहिये।

त्वमत्र लोकत्रयसद्मनि स्थिति प्रदीपिका बोधमयी सरस्वति।
तदंतरस्थाखिलवस्तुसंचयं जनाः प्रपश्यन्ति सदृष्टयोप्यतः।।(5)।।

हे सरस्वति मातः! आप तीन लोक रूपी घर में स्थित सम्यग्ज्ञानमय उत्कृष्ट दीपक हैं जिस दीपक की कृपा से सम्यग्दृष्टिजीव उन तीनों लोकों के भीतर रहने वाले जीवाजीवादि पदार्थों को भलीभांति देखते हैं।

नभःसर्म वर्त्म नवातिनिर्मलं पृथुप्रयातं विबुधैर्न कैरिह।
तथापि देवि प्रतिभासतेतरां यदेतदक्षुण्णमिव क्षणेन तत्।।(6)।।

हे देवी! आपका जो मार्ग है वह आकाश के समान अत्यंत निर्मल है और अत्यंत विस्तीर्ण है उस मार्ग में ऐसे कौनसे विबुध हैं जो नहीं गये हों अर्थात् सब ही गये हैं किंतु मातः तो भी वह मार्ग क्षण भर में ऐसा मालूम होता है कि अक्षुण्ण ही है अर्थात् कोई भी उस मार्ग से नहीं गया है।

तदस्तु तावत्कवितादिकं नृणां तव प्रभावात्कृतलोकविस्मयम्।
भवेत्तदप्याशु पदं यदिष्यते तपोभिरुग्रैर्मुनिभिर्महात्मभिः।।(7)।।

हे मातः सरस्वति! समस्त लोक को आश्चर्य के करने वाले कविता आदिक गुण मनुष्यों को आपकी कृपा से हों इसमें किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं हैं किन्तु हे मातः! जिस पद को बड़े-2 मुनि कठिन-2 तप करके प्राप्त करने की इच्छा करते हैं वह पद भी आपकी कृपा से बात की बात में प्राप्त हो जाता है।

भवत्कला यत्र न वाणि मानुषे न वेत्ति शास्त्रं स चिरं पठन्नपि।
मनागपि प्रीतियुतेन चक्षुषा यमीक्षसे कैर्न गुणैः स भूष्यते।।(8)।।

हे सरस्वति! हे मातः! जिस मनुष्य में आपकी कला नहीं अर्थात् जो मनुष्य आपका कृपापात्र नहीं है वह चिरकाल तक पढ़ता हुआ भी शास्त्र को नहीं जानता है

किंतु जिसको आप थोड़ा भी स्नेह सहित नेत्र से देख लेती हो अर्थात् जो मनुष्य थोड़ा भी आपकी कृपा का पात्र बन जाता है वह मनुष्य संसार में किन-2 गुणों से विभूषित नहीं होता है ? अर्थात् बिना ही प्रयत्न के वह केवल आपकी कृपा से समस्त गुणों का भंडार हो जाता है।

स सर्ववित्पश्यति वेत्ति चाखिलं नवा भवत्या रहितोऽपि बुध्यते।
तदत्र तस्यापि जगत्त्रयप्रभोस्त्वमेव देवि प्रतिपत्तिकारणम्।।(9)।।

संसार में जो केवली भगवान् समस्त पदार्थों को भलीभांति देखते हैं तथा समस्त पदार्थों को भलीभांति जानते हैं वे भी आपकी ही कृपा से हे देवि! जानते तथा देखते हैं किन्तु आप की कृपा के बिना न वे जानते हैं और न देखते ही हैं इसलिये हे मातः! इस संसार में तीनों जगत् के प्रभु उन केवली के ज्ञान तथा दर्शन में भी आप ही कारण हैं।

चिरादति क्लेशतैर्भवाम्बुधौ परिभ्रमन् भूरि नरत्वमश्नुते।
तनूभृदेतत्पुरुषार्थसाधनं त्वया विना देवि पुनः प्रणश्यति।।(10)।।

चिरकाल से इस संसार रूपी समुद्र में भ्रमण करता हुवा यह जीव सैंकड़ों क्लेशों से इस मनुष्य जन्म को पाता है तथा वह मनुष्य भव ही समस्त पुरुषार्थों का साधन है किंतु हे देवि! आपके बिना यह पाया हुआ भी मनुष्यभव नष्ट ही हो जाता है।

कदाचिदंव त्वदनुग्रहं विना श्रुते ह्यधीतेऽपि न तत्त्वनिश्चयः।
ततःकुतःपुंसि भवेद्विवेकता त्वया विमुक्तस्य तु जन्म निष्फलम्।।(11)।।

हे मातः! आपके अनुग्रह के बिना शास्त्र के भली प्रकार अध्ययन करने पर भी वास्तविकतत्त्व का निश्चय नहीं होता है और वास्तविक तत्त्व के निश्चय न होने के कारण मनुष्य में हिताहित का विवेक भी नहीं हो सकता है ? इसलिये हे देवि! आपके अनुग्रहकर रहित जो पुरुष है उसका मनुष्य जन्म पाना निष्फल ही है।

विधाय मातः प्रथमं त्वदाश्रयं श्रयंति तन्मोक्षपदं महर्षयः।
प्रदीपमाश्रित्य गृहे तमस्तंते यदीप्सितं वस्तु लभेत मानवः।।(12)।।

जिस प्रकार मनुष्य, जो घर अंधकार से व्याप्त है ऐसे घर में दीप के आश्रय से इष्ट वस्तु को प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार हे मात! बड़े-2 ऋषि पहले आपके आश्रय को करते हैं पीछे सर्वोत्कृष्ट उस प्रसिद्ध मोक्ष स्थान को वे पाते हैं।

त्वयि प्रभूतानि पदानि देहिनां पदं तदेकं तदपि प्रयच्छति।

समस्तशुक्लापि सुवर्णविग्रहा त्वमत्र मातः कृतचित्रचेष्टिता।।(13)।।

हे मातः! यद्यपि तुझ में अनेक पद हैं तो भी तू जीवों को एक ही पद देती है तथा यद्यपि तू चौतर्फा शुक्ल है तो भी तू सुवर्णविग्रहा (सुवर्ण के समान शरीर को धारण करने वाली) है इसलिये तू इस संसार में आश्चर्यकारी चेष्टा को धारण करने वाली है।

भावार्थ- इस श्लोक में विरोधाभास नामक अलंकार है इसलिये आचार्यवर शब्द से विरोध दिखाते हैं कि जो अनेक पदों का धारण करने वाला होगा? वह जीवों का एक ही पद क्यों देगा तथा जो चौतर्फा सफेद होगा वह सुवर्ण के रंग के समान शरीर को धारण करने वाला कैसे होगा ? अब आचार्यवर उस विरोध का अर्थ से परिहार करते हैं कि हे मातः! यद्यपि आप में अनेक पद (सुवंत तथा तिङंतरूप) विद्यमान हैं तो भी अपने भक्तों को आप एक मोक्ष पद को देती हैं और यद्यपि आप शुक्ल (उज्जवल) हैं तो भी आप सुवर्ण विग्रहा (श्रेष्ठ ''वर्ण'' अक्षर रूपी शरीर को धारण कराने वाली) हो इसलिये आपकी इस प्रकार की चेष्टा आश्चर्य करती है।

सारार्थ- हे मातः! आप अनेक सुवंत तथा तिङंतस्वरूप पदों को धारण करने वाली हो तथा भव्य जीवों को मोक्ष को देने वाली हो और आप सर्वथा निर्मल हो तथा श्रेष्ठ वर्ण रूपी शरीर को धारण करने वाली हो।

समुद्रघोषाकृतिरर्हति प्रभौ यदा त्वमुत्कर्षमुपागता भृशम्।

अशेषभाषात्मतया त्वया तदा कृतं न केषां हृदि मातरद्भुतम्।। (14)।।

हे मातः सरस्वति! जिस समय तू भगवान् अर्हंत में अत्यंत उत्कर्ष को प्राप्त हुई थी अर्थात् जिस समय समवसरण में तू भगवान् अर्हंत के मुख से दिव्य ध्वनि रूप में प्रकट हुई थी उसी समय तेरी ध्वनि समुद्र के समान धीर तथा गंभीर थी और उस समय तू अनेक भाषा स्वरूप थी इसलिये किसके मन में तेने उस समय आश्चर्य नहीं किया था अर्थात् तुझको सुनकर समस्त जीव आश्चर्य करते थे।

सचक्षुरप्येष जनस्त्वया बिना यदंध एवेति विभाव्यते बुधैः।

तदस्य लोकत्रितयस्य लोचनं सरस्वति त्वं परमार्थदर्शने।।(15)।।

हे मातः सरस्वति! आपके बिना नेत्रों सहित भी इस पुरुष को विद्वान् लोग अंधा ही समझते हैं इसलिये हे सरस्वति! इस तीनों लोक के वास्तविक दर्शन में आप ही नेत्र हैं।

गिरा नरप्राणितमेति सारतां कवित्ववक्तृत्वगुणे च सा चगीः।
इदं द्वयं दुर्लभमेव ते पुनः प्रसादलेशादपि जायते नृणाम्।। (16)।।

मनुष्य का जो जीवन है वह वाणी से सफल समझा जाता है और कवित्व तथा वक्तृत्वगुण के होने पर वाणी सारभूत समझी जाती है किन्तु इस संसार में कविपना तथा वक्तापना दोनों ही दुर्लभ हैं परन्तु आपके तो थोड़े से ही प्रसाद (अनुग्रह) से यह दोनों गुण बात-की-बात में प्राप्त हो जाते हैं।

नृणां भवत्सन्निधिसस्कृतं श्रवो विहाय नान्यद्धितमक्षयं च तत्।
भवेद्विवेकार्थमिदं परं पुनर्विमूढतार्थं विषयं स्वमर्पयत्।।(17)।।

हे मातः सरस्वति! जिस कान का आपके समीप में संस्कार किया गया है अर्थात् जो काल आपके सहवास से शुद्ध एवं पवित्र किया गया है वही कान हित का करने वाला तथा अविनाशी है किन्तु उससे भिन्न कान न हितकारी है और न अविनाशी है और आपके सहवास से पवित्र ही कान मनुष्यों को विवेक के लिये होता है किन्तु उससे भिन्न अपने विषयों की ओर झुकता हुआ कान विवेक के लिये नहीं होता किन्तु विशेषता से मूढ़ता के लिये ही होता है।

कृत्वापि ताल्वोष्ठपुटादिभिर्नृणां त्वमादिपर्यंतविवर्जितस्थितिः।
इतित्वयापीदृशधर्मयुक्तया स सर्वथैकान्तविधिर्विचूर्णितः।। (18)।।

हे मातः सरस्वति! यद्यपि तू मनुष्यों के तालू तथा ओष्ठ पुटों से की गई है तो भी मेरी स्थिति आदि तथा अन्तकर रहित ही हैअतः इस प्रकार के धर्मोंकर संयुक्त हे सरस्वति! तूने सर्वथा एकान्तमार्ग का नाश कर दिया ऐसा भलीभांति प्रतीत होता है।

अपि प्रयाता वशमेकजन्मनि द्युधेनुचिंतामणिकल्पपादपाः।
फलंति हि त्वं पुनरत्र चापरे भवे कथं तैरुपमीयसे बुधैः।। (19)।।

हे सरस्वति मातः किसीरीतिसे वश को प्राप्त ऐसे कामधेनु, चिंतामणि तथा कल्पवृक्ष एक ही भव में मनुष्यों को इष्टफलके देने वाले होते हैं किंतु आप इस भव में तथा परभव में (दोनों भवों में) मनुष्यों को इष्टफलों को देने वाली हो इसलिये आपको कामधेनु आदि की उपमा कभी भी नहीं दी जा सकती है।

अगोचरो वासरकृन्निशाकृतो जनस्य यच्चेतसि वर्तते तमः।
विभिद्यते वागधिदेवते त्वया त्वमुत्तमज्योतिरिति प्रगीयसे।। (20)।।

हे वागाधिदेवते! हे सरस्वति! जो अंधकार सूर्य तथा चंद्रमा के भी गोचर नहीं

है अर्थात् न जिस अंधकार को सूर्य देख सकता है और न चन्द्रमा देख सकता है ऐसा मनुष्यों के चित्त में अंधकार विद्यमान है उस अंधकार को तू नाश करती तो है इसलिये संसार में तू ही उत्तम ज्योति है ऐसा (विद्वान् मनुष्य) तेरा गुणगान करते हैं।

जिनेश्वरस्वच्छसरःसरोजिनी त्वमंगपूर्वादिसरोजराजिता।
गणेशहंसब्रजसेविता सदा करोंषि केषां न मुदं परामिह।। (21)।।

हे मातः सरस्वति! तू जिनेश्वर रूपी जो निर्मल सरोवर उसकी तो कमलिनी है और ग्यारह अंग चौदह पूर्व रूपी जो कमल उन से शोभित है और गणधररूपी जो हंसों का समूह उस करके सेवित है इसलिये तू इस संसार में किसको उतम हर्ष को करने वाली नहीं है ?

परात्मतत्त्वप्रतिपत्तिपूर्वकं परं पदं यत्र सति प्रसिध्यद्यति।
कियत्ततस्ते स्फुरतः प्रभावतो नृपत्वसौभाग्यवरांगनादिकम्।। (22)।।

हे मातः सरस्वति! जब आपकी कृपा से परमात्म तत्त्व का जो ज्ञान उस ज्ञानपूर्वक परमपद (मोक्ष पद) की सिद्धि हो जाती है तब आपके दैदीप्यमान प्रभाव के सामने राजापना, सौभाग्य तथा उत्तमस्त्री आदि की प्राप्ति क्या विशेष है ?

त्वदंघ्रिपद्मद्वयभक्तिभाविते तृतीयमुन्मुलति बोधलोचनम्।
गिरामधीशे सह केवलेन यत्समाश्रितं स्पर्धमिवेक्षतेऽखिलम्।। (23)।।

हे मातः सरस्वति! जो भव्य जीव मनुष्य आपके दोनों चरण कमलों की भक्ति तथा सेवा करता है उस मनुष्य के तीसरा सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्र प्रकट होता है जो सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्र केवलज्ञान के साथ ईर्ष्या करके ही मानो समस्त पदार्थों को देखता जानता है ऐसा मालूम पड़ता है।

त्वमेव तीर्थं शुचिबोधवारिमत्समस्तलोकत्रयशुद्धिकारणम्।
त्वमेव चानंदसमुद्रवर्धने मृगांकमूर्तिः परमार्थदर्शिनाम्।। (24)।।

हे मातः सरस्वति! सम्यज्ञानरूपी जल से भरा हुआ तथा समस्त लोकों की शुद्धि का कारण तू ही तो पवित्र तीर्थ है तथा जो पुरुष परमार्थ को देखने वाले हैं उन मनुष्यों के आनंदरूपी समुद्र के बढ़ाने में तू ही चंद्रमा है।

त्वयादिबोधः खलु संस्कृतो ब्रजेत् परेषु बोधेष्वखिलेषु हेतुतां।
त्वमक्षि पुंसामति दूरदर्शने त्वमेव संसारतरोः कुठारिका।। (25)।।

हे भगवति सरस्वति! तेरे द्वारा अत्यंत पवित्र किया हुआ मतिज्ञान ही शेष बचे हुवे समस्त श्रुत, मनःपर्यय, आदि ज्ञानों में कारण है और अत्यंत दूर देखने में तू ही मनुष्य का नेत्र है और संसार रूपी वृक्ष के काटने के लिये तू ही कुठार है।

यथाविधानं त्वमनुस्मृता सती गुरुपदेशोयमवर्णभेदतः।
न ताः श्रियस्ते न गुणा न तत्पदं प्रयच्छसि प्राणभृते न यच्छुभे।।(26)।।

हे शुभे! हे सरस्वति! यह गुरु का उपदेश है कि जो पुरुष शास्त्रानुसार अकार से लेकर अंत तक आपका समरण करने वाला है उस पुरुष के न तो कोई ऐसी लक्ष्मी है जिसको आप न देवे और न कोई उत्तम गुण तथा उत्तम पद ही है जो कि आपकी कृपा से वह जीव न पा सके।

अनेकजन्मार्जितपापपर्वतो विवेकव्रजेण स येन भिद्यते।
भवद्वपुःशास्त्रघनान्निरेति तत्सदर्थवाक्यामृतभारमेदुरात्।। (27)।।

हे मातः! सरस्वति! अनेक भवों में संचय किया हुवा जो पापरूपी पर्वत है वह जिस विवेक रूपी वज्र के द्वारा तोड़ा जाता है वह विवेक रूपी वज्र श्रेष्ठ अर्थ तथा वाक्यरूपी जो जल उनका जो भार उससे वृद्धि को प्राप्त ऐसा आपका शरीर स्वरूप जो शास्त्र वही हुआ मेघ उससे निकला है।

तमांसि तेजांसि विजित्य वाङ्मयं प्रकाशयद्यत्परमं महन्महः।
न लुप्यते तैर्नच तैः प्रकाश्यते स्वतः प्रकाशात्मकमेव नंदतु।। (28)।।

हे सरस्वति! अन्धकार तथा अन्य तेजों को जीतकर प्रकाश करता हुआ तथा सर्वोत्कृष्ट, तेरी वाणी रूपी तेज इस लोक में जयवन्त प्रवर्त हो क्योंकि जो तेज न तो अन्धकार से नाश होता है और न किसी दूसरे तेज से प्रकाशित होता है किन्तु स्वतः प्रकाश स्वरूप ही है।

तव प्रसादः कवितां करोत्यतः कथं जडस्तन्न घटेत मादृशः।
प्रसीद यत्रापि मयि स्वनन्दने न जातु माता विगुणेपि निष्ठुरा।। (29)।।

हे सरस्वति! हे मातः ! तेरे प्रसाद ही कविता का करने वाला है इसलिये मेरे (ग्रंथकर्त्ता के) समान वज्र मूर्ख उस कविता के करने में कैसे चेष्टा को कर सकता है ? अतः इस कविता के करने में तू मुझ पर प्रसन्न हो क्योंकि यदि अपना पुत्र निर्गुणी भी होवे तो भी माता उसके ऊपर कठोर नहीं बनती।

इंसान बनाओ!

(शिक्षा का दुष्परिणाम) - गुलाब कोठारी

शिक्षा रूपी भूत-पूर्व गुलामी का प्रेत पूरे देश पर मंडरा रहा है। एक अंग्रेजीदा समूह है इस देश में जिसका आज भी देश के साथ कोई जुड़ाव नहीं है। न खान-पान अथवा रीति-रिवाज से और न ही आम आदमी से। वे अपने बच्चों को भी बाहर ही रखने का प्रयास करते हैं। हमें कोई सरोकार नहीं कि वे कहाँ जीते हैं। हमें तो बात कचोटती है, वह यह कि वे शेष देश के बच्चों को भी 'भारतीय' नहीं बनने देना चाहते। हमारे लिए तो मैकाले जिन्दा भी है और रक्तबीज की तरह फैलता ही जा रहा है।

शिक्षा नीति बनाने वालों को पहले यह तय करना चाहिए कि हर बच्चा भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि बने। यह भी लिखित में तय होना चाहिए, कि क्या नहीं पढ़ाया जाएगा। हर बच्चे का सर्वांगीण विकास-शरीर-बुद्धि,मन और आत्मा-अनिवार्य होगा। दसवीं कक्षा तक देश का भूगोल, इतिहास, साहित्य,भाषा, संविधान, कृषि, पशुधन तथा राज्यों की अपनी विशेषताओं का ज्ञान कराया जाए। बिना किसी राजनीति के। छोटे बच्चों के लिए कहानियों की कक्षाएँ अनिवार्य हों। पुराण कथाएँ, लोक कथाएँ,जातक कथाएँ आदि देश-विदेश की कहानियों का समावेश किया जाना चाहिए। शिक्षा पहले अच्छे मानव तैयार करे। अंगेजी को उच्च शिक्षा के साथ जोड़ा जाए, किन्तु केवल भाषा की तरह। अंग्रेजी संस्कृति के साहित्य से शिक्षा को मुक्त रखा जाना चाहिए।

हमारा जीवन प्रकृति पर आधारित है। सूर्य हमारा पिता है। पाँचवे पड़ाव पर हम माता-पिता से स्थूल शरीर धारण करते हैं। बुद्धि सूर्य से, मन चन्द्रमा से, शरीर पंच महाभूतों से उत्पन्न होते हैं। अन्न से शरीर की सातों धातुएँ बनती हैं। मन बनता है। मन जीवन का मुख्य केन्द्र है। सारी इच्छाएँ, सुख-दुःख, अच्छा-बुरा, जीवन के सपने, रिश्ते-नाते, प्यार-घृणा,दया-करुणा आदि मन के ही विषय हैं। शिक्षा इन सबसे वंचित कर रही है। मन की, मानवता की चर्चा ही नहीं है। पेट भरने के अलावा भी जिन्दगी जीनी होती है, जिसके उतार-चढाव की, बदलते सामाजिक परिवेश की राष्ट्रवाद की सीख अनिवार्य होनी चाहिए। नीति-निर्माण कार्य अधिकारियों के हाथ में रहेगा तो बदलाव संभव ही नहीं है। शिक्षाविदों को ही नीति निर्माताओं के पदभार सौंपे

जाएँ। आज तो जो अधिकारी शिक्षा विभाग में आता है,वही शिक्षाविद् बन जाता है। वही आधुनिक मैकाले का रूप ले लेता है।

शिक्षा का निश्चित उद्देश्य एवं स्तर भी तय किया जाना चाहिए। किस स्तर के बालक में कितनी योग्यता होनी चाहिए। आज स्नातक भी अच्छा पत्र नहीं लिख सके, तो क्या यह सम्पूर्ण देश का अपमान नहीं है ? एक चपरासी की नौकरी के लिए एमबीए, इंजीनियर लाइन में लगें और किसी को भी शर्म नहीं आए! वाह, शिक्षा अधिकारियों को डूबकर मर जाना चाहिए। नकली शिक्षा के सहारे 90-95 प्रतिशत नम्बर प्राप्त करने होड़ और फिर भी निकम्मेपन का रेकॉर्ड छात्र का तो जीवन उजाड़ देता है। आज कॉलेज, स्कूलें, अधिकारी मिलकर किस प्रकार का 'शिक्षा उद्योग' चला रहे हैं, कौन नहीं जानता। नेता अंधे थोड़े ही हैं। कहीं छप्पर में स्कूलें, कहीं अध्यापक नहीं, कहीं राजनीति और तबादले हावी हैं तो अध्यापक पढ़ाई के अलावा दर्जनों तरह के दूसरे कार्यों में व्यस्त रहते हैं।

सत्तर वर्षों के शिक्षा के ह्रास का परिणाम हैं कि हर वर्ग अपने कर्म से च्युत हो गया। ब्रह्मण समाज को संस्कारवान् बनाने को तैयार नहीं है। क्षत्रिय समाज रक्षा का भार उठाने को तैयार नहीं है। चारों और माफिया-मादक द्रव्य, शराब, हथियार, भू-बजरी, मिलावट आदि फैल रहे हैं। किसी को 'विनाशाय च दुष्कृताम' याद ही नहीं है। वैश्य रूप कृषक आधुनिक चकाचौंध और फसल बढ़ाने की होड़ में जहर परोसकर प्रसन्न होना चाहता है। किसी स्नातक को शरीर का प्राकृतिक, पंच महाभूत का स्वरूप नहीं मालूम। अपने-अपने क्षेत्र का भूगोल नहीं मालूम, सौ वर्षों का इतिहास भी नहीं मालूम।

स्त्री-पुरुष का प्राकृतिक सिद्धान्त नहीं मालूम। केवल शरीर रूपी डिब्बे को नर-नारी कह रहे हैं। 'शक्ति-पौरुष-कर्मयोगी-पुरुषार्थ' जैसे शब्द विदेशी हो गए। कहने का तात्पर्य यह है कि हमें यह तो पता होना ही चाहिए कि हम क्या सिखाना चाहते हैं, क्या नहीं सिखाना चाहते।

यह चिन्तन इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि हमारे परिवर्तन की गति बहुत बढ़ गई है। मानवता पीछे छूटती जा रही है। स्वयं मां-बाप भी बच्चों की शिक्षा में भागीदार नहीं बनते। सच तो यह है कि आज के माता-पिता भी तो इसी शिक्षा पद्धति से निकले हैं। जीवन के बारे में, संघर्षों और द्वन्द्वों उके बारे में वे स्वयं भी तो अनभिज्ञ

ही हैं। सन्तान तो पैदा हो ही जाती है, उसको संस्कार देना, पेट में अभिमन्यु अथवा कोई संगीतकार बनाना आज किस मां को आता है। आज शरीर की जानकारी का अभाव ही देर से विवाह करने और आईवीएफ (कृत्रिम संतान उत्पत्ति) के थपेड़े खाने को मजबूर करता है। कोई बेटी मां के पास बैठकर भावी जीवन समझना ही नहीं चाहती। दादा-दादी कहानियाँ भूल गए।

ऐसी स्थिति में शिक्षा द्वारा समाज तथा देश के निर्माण की कल्पना कैसे की जाए। नेताओं और शिक्षकों की शैली से राष्ट्र प्रेम ही बाहर हो गया। समाज सुधारक लुप्त हो गए। बस, एनजीओ रह गए, जिनकी छवि व्यापारी जैसी अधिक हो गई। आदर्श पुरुष खो गए। शिक्षा नीति में अब छात्र के साथ-साथ अभिभावकों के बारे में भी स्थान होना चाहिए। सामाजिक कार्यक्रमों में भागीदारी बढ़नी चाहिए। बिना खेल के मैदानों के स्कूलों को स्वीकृति नहीं मिलनी चाहिए। शिक्षा इस बात की गारंटी तो बने कि व्यक्ति समाज का अंग बनकर जी सके। जो कुछ समाज से प्राप्त करता है, उसको लौटाने के लिए संकल्पवान् भी बना रहे। बच्चा माटी का लोंदा है, अध्यापक कुम्हार होता है। वही तय करे कि क्या बनाना है। कोरा विषय पढ़ाना ही ज्ञान की इतिश्री नहीं है। एक समय था जब स्कूल जाने वालों पर लोग हँसते थे। कहावत बन गई थी- 'पढ़ग्या बेटा फारसी, घरकान् जूता मारसी।' आज तो हम उधर ही जाते दिखाई पड़ रहे हैं। नई शिक्षा नीति भी पढ़ाई के स्थान पर प्रशासनिक बदलाव की ही बात कर रहा है। समाज में उपयोगिता को लेकर नई नीति भी मौन है।

सम्यग्दर्शन महान् है!

स्व (मैं) श्रद्धानादि से सम्यग्दर्शन

(मोक्षमार्ग का शुभारम्भ होता है सम्यग्दर्शन से)

(सम्यग्दर्शन बिन घोर तप-त्याग भी व्यर्थ)

(चालः- छिप गया कोई रे....)

सम्यग्दर्शन महान् है...अभव्य नहीं पाते/(मिथ्यात्वी न जानते)
राजा से ले चक्री देव से भी सुदृष्टि महान् होते।। (स्थायी)
सम्यग्दर्शन से ही मोक्षमार्ग प्रारंभ होता,
इसके बिन घोर तप त्याग से भी मोक्ष न मिलता।

सम्यग्दर्शन से ही कुज्ञान भी सुज्ञान ही होता।
दोनों से युक्त कुचारित्र भी सुचारित्र होता।।(1)

सम्यग्दर्शन बिन करोड़ों भव के तप होते व्यर्थ
सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र से एक मुहूर्त में मिले मोक्ष।
विशाल वृक्ष हेतु बीज यथा होता प्रमुख,
मोक्ष हेतु सम्यक्त्व तथा होता है प्रमुख।। (2)

हर जीव सुख चाहते तथाहि परम स्वतंत्रता
किन्तु सम्यग्दर्शन बिन न लक्ष्य ही बनता।
लक्ष्य बिन गमन से यथा न मिले लक्ष्य स्थल
तथाहि सम्यक्त्व बिन ज्ञानचारित्र से न मिले मोक्ष।(3)

ईकाई बिन शून्य से या शून्य के समूह से
न बनती है संख्या तथा ईकाई सम सम्यक्त्व है।
सम्यक्त्व है होती श्रद्धा देवशास्त्र गुरु की
सप्त तत्त्व आदि भी स्वप्रधान प्रमुख ही।। (4)

सुदृष्टि मानता स्वयं को मैं हूँ आत्मतत्त्व
द्रव्य भावनोकर्मरहित निश्चय से हूँ शुद्धबुद्ध।
शुद्धबुद्ध बनने हेतु करे ज्ञान की आराधना
रागद्वेष मोह क्षय हेतु करे चारित्र आराधना।। (5)

ख्याति पूजालाभ संकल्प विकल्प संक्लेश
अपेक्षा उपेक्षा प्रतीक्षा रिक्त आत्म विशुद्धि।
आर्त रौद्र ध्यान परे करे धर्म शुद्ध ध्यान
आत्म विशुद्धि से क्रमशः बनते शुद्ध-बुद्ध।। (6)

मोक्ष प्राप्ति हेतु प्रथम ईकाई सम्यक्त्व
अतः 'सूरी कनक' मोक्ष हेतु सेवन करे सम्यक्त्व। (7)
ग.पु. कॉलोनी, दि. 12.6.2019, पूर्वाह्न 9.36

सन्दर्भ :-

सुंप्रयुक्तैः स्वयं साक्षात्सम्यग्दृग्बोधसंयमैः।

त्रिभिरेवापवर्गश्रीर्घनाश्लेषं प्रयच्छति।। (1)।। ज्ञानार्णव

भले प्रकार प्रयुक्त किये हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र इन तीनों से अर्थात् तीनों की एकता होने से मोक्षरूपी लक्ष्मी उस रत्नत्रययुक्त आत्मा को स्वयं दृढालिंगन देती है।

तैरेव हि विशीर्यन्ते विचित्राणि बलीन्यपि।

दृग्बोधसंयमैः कर्मनिगडानि शरीरिणाम्।।(2)।।

इस सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र से ही जीवों की नाना प्रकार की बलवान् कर्मरूपी बेड़ियाँ झरती हैं (टूटती हैं)

त्रिशुद्धिपूर्वकं ध्यानमामनन्ति मनीषिणः।

व्यर्थं स्यात्तामनासाद्य तदेवात्र शरीरिणाम्।। (3)।।

विद्वानों ने दर्शनज्ञानचारित्र की शुद्धतापूर्वक ही ध्यान कहा है, ऐसी आम्नाय है। इस कारण इन तीनों की शुद्धता पाये बिना जीवों का ध्यान करना व्यर्थ है। क्योंकि वह ध्यान मोक्षफल के अर्थ नहीं है।

रत्नत्रयमनासाद्य यः साक्षाद्ध्यातुमिच्छति।

खपुष्पैः कुरुते मूढः स बन्ध्यासुतशेखरम्।। (4)।।

जो पुरुष साक्षात् रत्नत्रय को (सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यग्चारित्र को) प्राप्त न होकर ध्यान करना चाहता है, वह मूर्ख आकाश के फूलों से वन्ध्या के पुत्र के लिये सेहरा (मौर) बनाना चाहता है।

तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वं तत्त्वप्रख्यापकं भवेज्ज्ञानम्।

पापक्रियानिवृत्तिश्चरित्रमुक्तं जिनेन्द्रेण।। (5)।।

जिनेन्द्र भगवान् ने तत्त्वों की रुचि अर्थात श्रद्धाप्रतीति को सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन), तत्त्वों को प्रकर्षरूप कहने अर्थात जानने को सम्यग्ज्ञान और पापक्रियाओं से निवृत्त होने को सम्यग्चारित्र कहा है।

यज्जीवादिपदार्थानां श्रद्धानं तद्धि दर्शनम्।

निसर्गेणाधिगत्या वा तद्भव्यस्यैव जायते।।(6)।।

जो जीवादि पदार्थों का श्रद्धान करना है वही नियम से दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन निसर्ग से (स्वभाव से) अथवा अधिगम से (परोपदेश से) भव्य जीवों के ही उत्पन्न होता है, अभव्य के नहीं होता।

क्षीणप्रशान्तमिश्रासु मोहप्रकृतिषु क्रमात्।
तत् स्याद्द्रव्यादिसामग्रया पुंसां सद्दर्शनं त्रिधा।।(7)।।

यह सम्यग्दर्शन पुरुषों के द्रव्य,क्षेत्र, काल, भावरूप सामग्री से दर्शन मोह कर्म की तीन प्रकृतियों के क्षय, उपशम तथा क्षयोपशमरूप होने से क्रमशः तीन प्रकार का है-1 क्षायिक सम्यक्त्व, 2 उपशमसम्यक्त्व और 3 क्षयोपशमसम्यक्त्व।

''भव्यः पर्याप्तकः संज्ञी जीवः पञ्चेन्द्रियान्वितः।
काललब्ध्यादिना युक्तः सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते।। (1)।।
सम्यक्त्वमथ तत्त्वार्थश्रद्धानं परिकीर्त्तितं।
तस्यौपशमिको भेदः क्षायिको मिश्र इत्यपि।।(2)।। ग्रन्थान्तरे

जो भव्य हो, पर्याप्तक हो, मन सहित संज्ञी पंचेन्द्रिय हो और काललब्धि आदि सामग्री सहित हो, वही जीव सम्यक्त्व को प्राप्त होता है।।1।। सात तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहा गया है। उसके उपशम, क्षायिक और मिश्र अर्थात् क्षायोपशमिक से तीन भेद हैं।।

सप्ताना प्रशमात्सम्यक् क्षयादुभयतोऽपि च।
प्रकृतिनामिति प्राहुस्तत्त्रैविध्यं सुमेधसः।।(3)।।

मोह कर्म की मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व तथा अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया,लोभ, इन सात प्रकृतियों के उपशम, क्षय और क्षयोपशम से तीन प्रकार सम्यक्त्व होना सम्यग्ज्ञानी पंडितों ने कहा है।

भावार्थ-उपशम से उपशमसम्यक्त्व और क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व और कुछ क्षय तथा कुछ उपशम होने से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है।

एकं प्रशमसंवेगदयास्तिक्यादिलक्षणम्।
आत्मनः शुद्धिमात्रं स्यादितरच्च समन्ततः।।(4)।।

एक सम्यक्त्व तो प्रशम, संवेग, अनुकंपा और आस्तिक्य चिह्न से चिह्नित है, जिसे सरागसम्यक्त्व कहते हैं। और दूसरा समस्त प्रकारता से आत्मा की शुद्धि मात्र है, जिसे वीतरागसम्यक्त्व कहते हैं।।

द्रव्यादिकमथासाद्य तज्जीवैः प्राप्यते क्वचित्।

पञ्चविंशतिमुत्सृज्य दोषांस्तच्छक्तिघातकम्।। (8)।।

अथवा यह सम्यग्दर्शन द्रव्य, क्षेत्र, काल भावरूप सामग्री को प्राप्त होकर तथा सम्यग्दर्शन की शक्ति के घात करने वाले पच्चीस दोषों को छोड़ने से क्वचित् प्राप्त होता है।

''मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ तथाऽनायतनानि षट्।

अष्टौ शङ्कादयश्चेति दृग्दोषाः पञ्चविंशतिः।।(1)।। ग्रन्थान्तरे

तीन मूढता, आठ मद(गर्व), छः अनायतन और शंकादि आठ दोष इस प्रकार पच्चीस दोष सम्यग्दर्शन कहे गये हैं, इनका नाम स्वरूप आदि शास्त्रों में प्रसिद्ध है। यहाँ ग्रन्थविस्तार भय से नहीं लिखा गया है।''

जीवाजीवास्रवा बन्धः संवरो निर्जरा तथा।

मोक्षश्चैतानि सप्तैव तत्त्वान्यूचुर्मनीषिणः।।(9)।।

पंडितों ने जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात ही तत्त्व कहे हैं।

अनन्त सर्वदा सर्वो जीवराशिर्द्विधा स्थितः।

सिद्धेतरविकल्पेन त्रैलोक्यभुवनोदरे।।(10)।।

इस तीन लोकरूपी भुवन में जीवराशि सदाकाल सर्व (अनन्त) है, और वह दो भेदरूप है- 1.सिद्ध तथा 2.संसारी।

सिद्धस्त्वेकस्वभावःस्याद्दृग्बोधानन्दशक्तिमान्।

मत्यूत्पादादिजन्मोत्थक्लेशप्रचयविच्युतः।। (11)।।

उन दो भेदों में से जो सिद्ध है, सो तो दर्शन-ज्ञान-सुख-वीर्य सहित एक स्वभाव है, और मरण जन्म आदि सांसारिक क्लेशों से रहित है।।

चरस्थिरभवोद्भूतविकल्पैःकल्पिताःपृथक्।

भवन्त्यनेक भेदास्ते जीवाःसंसारवर्तिनः।। (12)।।

और संसारी जीव त्रस और स्थावररूप संसार से उत्पन्न हुए भेदों से भिन्न-भिन्न अनेक प्रकार के हैं।। 12।।

उपसंहारविस्तारधर्मा दृग्बोधलाञ्छनः।

कर्त्ता भोक्ता स्वयं जीवस्तनुमात्रोऽप्यमूर्त्तिमान्।। (17)।।

जीव संकोच विस्तार धर्म से युक्त और दर्शन ज्ञान लक्षण सहित है और स्वयं कर्त्ता, भोक्ता तथा शरीरप्रमाण होकर अमूर्तिमान् है।

''तत्र जीवत्यजीवच्च जीविष्यति सचेतनः।

यस्मात्तस्माब्दुधैः प्रोक्तो जीवस्तत्त्वविदां वरैः।।(1)।। ग्रन्थान्तरे

उक्त सात तत्त्वों में जिससे चेतना सहित 'जीता है,' 'जीता था' और 'जीवेगा' इसलिए तत्त्ववेताओं में जो श्रेष्ठ बुद्धिमान है उन्होंने 'जीव' कहा है।

भव्याभव्यविकल्पोऽयं जीवराशिर्निसजर्गजः।

मतःपूर्वोऽपवर्गाय जन्मपङ्काय चेतरः।।(19)।।

यह जीवराशि स्वभाव से भव्य और अभव्य भेद स्वरूप है। पहिला भव्य अपवर्ग अर्थात् मोक्ष के लिए और इतर अर्थात् दूसरा अभव्य संसार के लिए माना गया है, अर्थात् भव्य मोक्षगामी होता है और अभव्यको कभी मोक्ष नहीं होता।

सम्यग्ज्ञानदिरूपेण ये भविष्यन्ति जन्तवः।

प्राप्य द्रव्यादिसामग्रीं ते भव्या मुनिर्भिमताः।।(20)।।

जो जीव द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप सामग्री को पाकर सम्यग्दर्शनादिरूप परिणमेंगे, उन्हीं को आचार्यों ने 'भव्य' कहा है।

अन्धपाषाणकल्पं स्यादभव्यत्वं शरीरिणाम्।

यस्माज्जन्मशतेनापि नात्मतत्त्वं पृथग्भवेत्।। (21)।।

जीवों का अभव्यपन अन्धपाषाण के समान है, जिससे सैंकड़ों जन्मों में भी आत्मतत्त्व पृथक् नहीं होता।

अभव्यानां स्वभावेन सर्वदा जन्मसंक्रमः।

भव्यानां भाविनी मुक्तिर्निःशेषदुरितक्षयात्।। (22)।।

अभव्य जीवों का स्वभाव से संसार में सर्वदा ही जन्म, संक्रम अर्थात् भ्रमण होता है और भव्य जीवों को समस्त कर्मों के क्षय से मुक्ति होती ही है।

यथा धातोर्मलैः सार्द्धं सम्बन्धोऽनादिसंभवः।

तथा कर्ममलैर्ज्ञेयः सश्लेषोऽनादिदेहिनाम्।।(23)।।

जिस प्रकार सुवर्णादि धातुओं का मल के साथ अनादि संबंध है, उसी प्रकार जीवों का कर्ममल से अनादिकाल का संबंध है, ऐसा जानना चाहिए।

द्वयोरनादिसंसारःसान्तः पर्यन्तवर्जितः।

वस्तुस्वभावतोज्ञेयो भव्याङ्गिनोःक्रमात्।।(24)।।

अर्थ-भव्य अभव्य दोनों को ही संसार आदि रहित है; परन्तु भव्य का संसार तो अन्तसहित है(क्योंकि इसको मूक्ति होती है) और अभव्य का अन्त रहित है, (क्योंकि इसको मुक्ति नहीं होती) ऐसा वस्तुस्वभाव से ही जानना चाहिए। इसमें कोई अन्य हेतु नहीं है।

चतुर्दशसमासेषु मार्गणासु गुणेषु च।

ज्ञात्वा संसारिणो जीवाःश्रद्धेयाःशुद्धदृष्टिभिः।। (25)।।

संसारी जीवों को चौदह जीव समास, चौदह मार्गणा और चौदह गुणस्थानों में जान करके सम्यग्दृष्टियों को श्रद्धान करना चाहिए।

धर्माधर्मनभःकालाःपुद्गलैःसह योगिभिः।

द्रव्याणि षट् प्रणीतानि जीवापूर्वाण्यनुक्रमात्।। (26)।।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, योगीश्वरों ने ये छह द्रव्य अनुक्रम से कहे हैं।

तत्र जीवादयः पञ्च प्रदेशप्रचयात्मकाः।

कायाः कालं विना ज्ञेया भिन्नप्रकृतयोऽप्यमी।। (27)।।

अर्थ-उन छह द्रव्यों में एक काल को छोड़कर जीवादिक पाँच द्रव्य अनेक प्रदेशात्मक होने के कारण 'काय' कहे जाते है। कालाणु एक ही प्रदेशस्वरूप है, अतः उसे 'काय' नहीं कहा। इन सब द्रव्यों को भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले जानना चाहिए।

अचिद्रूपा विना जीवममूर्त्ताः पुद्गलं विना।

पदार्था वस्तुतः सर्वे स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकाः।। (28)।।

इन छह द्रव्यों में से जीव के बिना अन्य पाँच अचिद्रूप हैं अर्थात् चेतना रहित अजीव द्रव्य हैं। और पुद्गल द्रव्य के बिना अन्य पाँच अमूर्त्त हैं। स्पर्श,रस,गन्ध,वर्ण, गुण इनमें नहीं है। पुद्गल इन गुणों सहित मूर्त है। तथा इन द्रव्यों को पदार्थ भी कहते हैं, क्योंकि ये उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सहित है। पदार्थ का स्वरूप द्रव्यपर्यायात्मक कहा गया है, इस कारण जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप होता है, वही पर्याय रूप भी होता है।

अणुस्कन्धविभेदेन भिन्नाःस्युःपुद्गलाद्विधा।

मूर्ता वर्णरसस्पर्शगुणोपेताश्च रूपिणः।। (29)।।

अणुस्कन्ध भेद से यहाँ पुद्गल दो प्रकार का है और वर्ण, रस,स्पर्श, गुणसहित होने से रूपी (मूर्त) है।

किन्त्वेकं पुद्गलद्रव्यं षड्विकल्पं बुधैर्मतम्।
स्थूलस्थूलादिभेदेन सूक्ष्मसूक्ष्मेण च क्रमात्।। (30)।।

किन्तु एक-एक पुद्गल द्रव्य को विद्वानों ने स्थूलस्थूल और सूक्ष्मसूक्ष्मादि भेदों के क्रम से छह प्रकार कहा है। यथा-**स्थूलस्थूल**-तो पृथ्वी पर्वतादिक हैं। **स्थूल**-जल दुग्धादिक तरल पदार्थ हैं। **स्थूलसूक्ष्म**-छाया आतपादि नेत्रइन्द्रियगोचर हैं। **सूक्ष्मस्थूल**-नेत्र के विना अन्य चार इन्द्रियों से ग्रहण में आने वाले गन्धादिक हैं। सूक्ष्म-कर्मवर्गणा हैं। और सूक्ष्मसूक्ष्म परमाणु हैं। इस प्रकार पुद्गल के छह भेद हैं।

प्रत्येकमेकद्रव्याणि धर्मादीनि यथायथम्।
आकाशान्तान्यमूर्तानि निष्क्रियाणि स्थिराणि च।। (31)।।

धर्म, अधर्म, आकाश ये तीन द्रव्य भिन्न-भिन्न एक एक द्रव्य हैं और तीनों ही अमूर्तिक, निष्क्रिय और स्थिर हैं।

स लोकगगनव्यापी धर्मः स्याद्गतिलक्षणः।
तावन्मात्रोऽप्यधर्मोऽयं स्थितिलक्ष्मःप्रकीर्तितः।। (32)।।

धर्मद्रव्य लोकाकाश में व्यापक है और गति में सहकारी होना उसका लक्षण वा स्वभाव है। और अधर्म द्रव्य भी लोकाकाशव्यापी है तथा स्थिति-सहकारी उसका स्वभाव है।

स्वयं गन्तुं प्रवृत्तेषु जीवाजीवेषु सर्वदा।
धर्मोऽयं सहकारी स्याज्जलं यादोऽङ्गिनामिव।। (33)।।

यह धर्मद्रव्य जीवपुद्गल का प्रेरक सहकारी नहीं है, किन्तु जीव पुद्गल स्वयं गमन करने में प्रवर्त्ते तो यह सर्वकाल सहकारी (सहायक) है। जैसे जल में रहने वाले मत्स्यादि को जल सहकारी है। जल प्रेरणा करके मत्स्यादिक जलचरों को नहीं चलाता, किन्तु वे चलते हैं तो उनका सहायक होता है।

दत्ते स्थितिं प्रपन्नानां जीवादीनामायं स्थितिम्।
अधर्मःसहकारित्वाद्यथा छायाऽध्ववर्त्तिनाम्।। (34)।।

अधर्मद्रव्य स्थिति को प्राप्त हुए जीव पुद्गलों की स्थिति कराने में सहकारी है। जैसे मार्गमें चलते हुए पथिकों को बैठने के लिए छाया सहकारी है, उसी प्रकार

अधर्मद्रव्य भी जीवों के ठहराने में सहकारी है, प्रेरक नहीं है।

अवकाशप्रदं व्योम सर्वगं स्वप्रतिष्ठितम्।
लोकालोकविकल्पेन तस्य लक्ष्म प्रकीर्त्तितम्।। (35)।।

आकाश द्रव्य अन्य पाँच द्रव्यों को अवकाश देने वाला और सर्वव्यापी है तथा स्वप्रतिष्ठित है। अर्थात अपने आपके ही आधार है, अन्य कोई आधार (आश्रय) नहीं है। यह लोक अलोक के भेद से दो प्रकार का है।

लोकाकाशप्रदेशेषु ये भिन्ना अणवःस्थिताः।
परिवर्त्ताय भावानां मुख्यकालः स वर्णितः।। (36)।।

लोकाकाश के प्रदेशों में जो काल के भिन्न-भिन्न अणु द्रव्यों का परिवर्तन करने के लिए स्थित हैं उन्हें मुख्य काल अर्थात् निश्चयकाल कहते हैं।

समयादिकृतं यस्य मानं ज्योतिर्गणाश्रितम्।
व्यवहारभिधः कालः स कालज्ञेःप्रपञ्चितः।। (37)।।

जिस काल का परिमाण ज्योतिषी देवों के समूह के गमनागमन के आश्रय से समय आदि भेदरूप किया गया है, उसे काल के जानने वाले विद्वानों ने व्यवहारकाल कहा है।

यदमी परिवर्तन्ते पदार्था विश्ववर्तिनः।
नवजीर्णादिरूपेण तत्कालस्यैव चेष्टितम्।। (38)।।

लोक में रहनेवाले ये समस्त पदार्थ जो नये से पुरानी अवस्था को धारण करते हैं, सो सब काल की चेष्टा से ही करते हैं। अर्थात् समस्त द्रव्यों के परिणमने को काल की वर्तना ही निमित्त है।

भाविनो वर्तमानत्वं वर्तमानस्तवतीतताम्।
पदार्थाः प्रतिपद्यन्ते कालकेलिकदर्थिताः।। (39)।।

पदार्थ काल की ही लीला (वर्तना) से एक अवस्था से अन्य अवस्था को प्राप्त होते हैं। अर्थात् जो आगामी अवस्था होने वाली है वह तो वर्तमानता को प्राप्त होती है और वर्तमान है वह अतीतपन को प्राप्त होती है। इस प्रकार समय समय अवस्था पलटती रहती हे।

धर्माधर्मनभःकाला अर्थपर्यायगोचराः।
व्यञ्जनाख्यस्य सम्बन्धौ द्वावन्यौ जीवपुद्गलौ।। (40)।।

धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चार पदार्थ तो अर्थपर्यायगोचर हैं, और अन्य दो अर्थात् जीव तथा पुद्गल व्यञ्जन पर्याय के संबंधरूप हैं।

धर्मादिक चार द्रव्यों के आकार पलटते नहीं, इस कारण हानिवृद्धि के परिणमन रूप अर्थपर्याय ही इनके मुख्य कहे हैं और जीव तथा पुद्गलों के आकार पलटते रहते हैं इस कारण इनके व्यञ्जनपर्याय मुख्य कहे गये हैं।।

भावाःपञ्चैव जीवस्य द्वावन्त्यौ पुद्गलस्य च।
धर्मादीनां तु शेषाणां स्याद्भावः परिणामिकः।।(41)।।

जीव के औदयिकादि पाँचों ही भाव हैं और पुद्गल के अंतिम दो अर्थात् सूत्रपाठ की अपेक्षा अंतिम औदयिक और पारिणामिक हैं तथा शेष धर्मादिक चार द्रव्यों के एक पारिणामिक भाव ही हैं।

अन्योन्यसंक्रमोत्पन्नो भावः स्यात्सान्निपातिकः।
षड्विंशद्भेदभिन्नात्मा स षष्ठो मुनिभिर्मतः।। (42)।।

जीव के इन पाँच भावों के परस्पर संयोग से उत्पन्न हुआ सान्निपातिक नाम का एक छठा भाव भी आचार्यों ने माना है। वह छब्बीस प्रभेदों से भेदरूप है तथा छत्तीस भेदरूप और इकतालीस भेदरूप भी कहा है। **'तत्त्वार्थवार्तिक'** नामा तत्त्वार्थसूत्र की टीका में भावों का अच्छा विस्तार किया है।

यहाँ यदि कोई प्रश्न करे कि जीव के पाँच व छह आदि भाव क्यों किये ? क्योंकि जीव का यथार्थ भाव एक परिणामिक ही है। औदयिक आदिक भाव तो कर्मजन्य हैं,टीका में उन्हें जीव के भाव कैसे कहते हो ?

उत्तर–ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि ये भाव यद्यपि कर्मजनित हैं, तथापि जीव ही इन भावों के रूप में परिणमता है। अनादि कर्मबन्ध के निमित्त से जीव की ऐसी ही सामर्थ्य है कि जब जैसे कर्मका उदयादिक निमित्त हो, वैसा ही यह भावरूप परिणमता है। यदि ऐसा नहीं माना जायगा, तो जीव सांख्यमती तथा वेदांतमलावलम्बियों के समान नित्य कूटस्थ ठहरेगा और उसके संसार का होना भी नहीं ठहरेगा और जब संसार अवस्था ही नहीं होगी तब फिर मोक्ष का अभाव मानना पड़ेगा तथा मोक्ष का अभाव मानने से बड़ा दोष आवेगा। इस कारण जैनमत में जीव के कर्म का बन्ध होना तथा कर्म के नाश होने पर मोक्ष होना कहा गया है और मोक्ष होने का उपाय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र सहित ध्यान करना कहा है। स्याद्वाद न्याय से सब संभवित

होता हे। वस्तु स्वरूप अनन्तधर्मी है, ऐसा प्रमाणसिद्ध है। इस कारण जैनियों का कहना सर्वथा निराबाध है और सर्वथा एकान्तीका कहना सर्वथा बाधासहित है। ऐसाः निःसंदेह जानकर श्रद्धान करना उचित है।

धर्माधर्मैकजीवानां प्रदेशा गणनातिगाः।

कियन्तोऽपि न कालस्य व्योम्नःपर्यन्तवर्जिताः।। (43)।।

धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य और एक जीव द्रव्य के प्रदेश गणना से अतीत अर्थात् असंख्यात हैं,और कालद्रव्य के एक ही अणु मात्र प्रदेश है। इस कारण काल के कितने प्रदेश हैं, ऐसी कथनी ही नहीं है और आकाश के अनवर्जित अनन्त प्रदेश हैं।

एकादयःप्रदेशाःस्यु पुद्गलानां यथायथम्।

संख्यातीताश्च संख्येया अनन्ता योगिकल्पिताः।। (44)।।

योगीश्वरों ने पुद्गल द्रव्य के एक प्रदेश को आदि ले जैसे हैं तैसे संख्यात असंख्यात और अनन्त कहे हैं। **भावार्थ**-पुदगल द्रव्य एक परमाणु है वह मिलकर दो परमाणु से लेकर संख्यात परमाणु तक का स्कन्ध होता है तथा असंख्यात परमाणु मिलकर असंख्यात परमाणु का स्कन्ध होता है और अनन्त परमाणुओं का स्कन्ध भी होता है। इस कारण पुद्गलस्कन्ध के संख्यात असंख्यात या अनन्त प्रदेश कहे हैं।

मूर्त्तो व्यञ्जनपर्यायो वाग्गम्योऽनश्वरः स्थिरः।

सूक्ष्मः प्रतिक्षणध्वंसो पर्यायश्चार्थसंज्ञिकः।। (45)।।

व्यञ्जनपर्याय मूर्तिक है, वचन के गोचर है, अनश्वर है, स्थिर है और अर्थ पर्याय सूक्ष्म है तथा क्षणविध्वंसी है।।

प्रकृत्यादिविकल्पेन ज्ञेयो बन्धश्चतुर्विधः।

ज्ञानावृत्यादिभेदेन सोऽष्टधा प्रथमः स्मृतः।। (46)।।

प्रकृत्यादि भेद से बन्ध चार प्रकार का है। उनमें से प्रथम प्रकृति बन्ध है, जो कि ज्ञानावरण दर्शनावरणादि भेद से आठ प्रकार का है।

मिथ्यात्वाविरती योगःकषायाश्च यथाक्रमात्।

प्रमादैः सह पञ्चैते विज्ञेया बन्धहेतवः।। (47)।।

मिथ्यात्व, अविरति, योग, कषाय और प्रमाद यथाक्रम से पाँच बन्ध के हेतु अर्थात् कारण जानने चाहिये। अतत्त्वश्रद्धान को **मिथ्यात्व**, अत्यागरूप परिणामों को **अविरति,** निश्चय व्यवहार चारित्र में असावधानरूप परिणामों को **प्रमाद,** क्रोध मान

माया लोभ रूप परिणामों को **कषाय** और मनवचनकाय के निमित्त से आत्मा के चंचलरूप होने को **योग** कहते हैं। इस प्रकार बन्ध के हेतु कहे हैं।

उत्कर्षेणापकर्षेण स्थितिर्या कर्मणां मता।

स्थितिबन्धःस विज्ञेय इतरस्तत्फलोदयः।।(48)।।

जो उत्कृष्ट, जघन्य तथा मध्य के भेदों रूप बढ़ती घटती कर्मों की स्थिति (कालकी मर्यादा) कही गई है, उसे **स्थितिबंध** और कर्म के फल के उदय होने को इतर अर्थात् **अनुभागबंध** जानना चाहिये।

परस्परप्रदेशानुप्रवेशो जीवकर्मणोः

यःसंश्लेषः स निर्दिष्टो बन्धो विध्वस्तबन्धनैः।।(49)।।

जो जीव और कर्म इन दोनों प्रदेशों का परस्पर अनुप्रवेश कहिये एक क्षेत्रागवाह होने से संबंध होता है, उसे बंधरहित सर्वज्ञ देव ने **प्रदेश बंध** कहा है। इस प्रकार बंध तत्त्व का वर्णन किया।

प्रागेव भावनातन्त्रे निर्जरास्रवसंवराः।

कथिताः कीर्त्तयिष्यामि मोक्षमार्गं सहेतुकम्।। (50)।।

निर्जरा, आस्रव और संवर का वर्णन पहले द्वादश भावना के प्रकरण में कर आये हैं, इस कारण नहीं किया। आगे मोक्ष तत्त्व का वर्णन हेतु सहित करते हैं।।

एवं द्रव्याणि तत्त्वानि पदार्थान् कायसंयुतान्।

यःश्रद्धते स्वसिद्धान्तात्स स्यान्मुक्तेः स्वयंवरः।। (51)।।

अर्थ– इस प्रकार छह द्रव्य, सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, वा पंचास्तिकायका अपने सिद्धांत से जो आत्मा श्रद्धान करता है, वह मुक्ति का स्वयं वर होता है अर्थात् मुक्तिरूपी कन्या उसे स्वयं वरण करती है। तात्पर्य यह है कि उसे मुक्ति प्राप्त होती है।

सद्दर्शनमहारत्नं विश्वलौकेकीभूषणम्।

मुक्ति पर्यन्तकल्याणदानदक्षं प्रकीर्तितम्।। (53)।।

यह सम्यग्दर्शन महारत्न समस्त लोक का आभूषण है और मोक्ष होने पर्यन्त आत्मा को कल्याण देने वालों में चतुर है।

चरणज्ञानयोर्बीजं यमप्रशमजीवितम्।

तपःश्रुताद्यधिष्ठानं सद्भिः सद्दर्शनं मतम्।। (45)।।

इस सम्यग्दर्शन को सत्पुरुषों ने चारित्र और ज्ञान का बीज अर्थात् उत्पन्न करने

का कारण माना है। क्योंकि इसके बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होता ही नहीं, तथा यम (महाव्रतादि) और प्रशम (विशुद्धभाव) का यह जीवनरूप है। इस सम्यग्दर्शन के बिना यम व प्रशम निर्जीव के समान हैं। इसी प्रकार यह तप और स्वाध्याय का आश्रय है। इसके बिना ये निराश्रय हैं। इस प्रकार जितने शमदमबोधव्रत तपादि कहे हैं, उनको यह सफल करता है। इसके बिना वे मोक्ष फल के दाता नहीं हो सकते।

अप्येकं दर्शनं श्लाघ्यं चरणज्ञानविच्युतम्।
न पुनः संयमज्ञाने मिथ्यात्वविषदूषिते।। (55)।।

यह सम्यग्दर्शन चारित्रज्ञान के न होने पर भी प्रशंसनीय कहलाता है और इसके बिना संयम (चारित्र) और ज्ञान मिथ्यात्व रूपी विष से दूषित होते हैं अर्थात् सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बिना ज्ञान मिथ्याज्ञान और चारित्र कुचारित्र कहाता है।

अत्यल्पमपि सूत्रज्ञैर्दृष्टिपूर्वं यमादिकम्।
प्रणीतं भवसम्भूतक्लेशप्राग्भारभेषजम्।। (56)।।

सम्यग्दर्शन सहित यम नियम तपादिक थोड़े भी हों तो उनहें सूत्र के ज्ञाता आचार्यों ने संसार से उत्पन्न हुए क्लेश दुःखों के बड़े भार को औषधि के समान कहा है। **भावार्थ**-सम्यग्दर्शन होते हुए व्रतादिक अल्प होवें, तो भी वे संसारजिनत दुःखरूपी रोगों को नष्ट करने के लिए औषध के समान है।

मन्ये मुक्तः स पुण्यात्मा 'विशुद्धं यस्य दर्शनं।
यतस्तदेव मुक्तयङ्गमग्रिमं परिकीर्तितम्।। (57)।।

अर्थ- आचार्य कहते हैं कि जिसके निर्मल अतिचार रहित सम्यग्दर्शन है, वही पुण्यात्मा वा महाभाग्य मुक्त है, ऐसा में मानता हूँ। क्योंकि सम्यग्दर्शन ही मोक्ष का मुख्य अंग कहा गया है। मोक्षमार्ग के प्रकरण में सम्यग्दर्शन ही मुख्य कहा गया है।

प्राप्नुवन्ति शिवं श्श्वच्चरणज्ञानविश्रुताः।
अपि जीवा जगत्यस्मिन्न पुनर्दर्शनं विना।। (58)।।

इस जगत् में जो जीव चारित्र और ज्ञान के कारण सदा जगत् में प्रसिद्ध हैं, वे भी सम्यग्दर्शन के बिना मोक्ष को नहीं पाते।

अतुलसुखनिधानं सर्वकल्याणबीजं
जननजलधिपोतं भव्यसत्त्वैकपात्रम्।

दुरिततरुकुठारं पुण्यतीर्थप्रधानं
पिबत चितविपक्षं दर्शनाख्यं सुधाम्बुम्।। (59)।।

अर्थ- आचार्य कहते हैं कि हे भव्य जीवों! तुम सम्यग्दर्शन नामक अमृत का पान करो। क्योंकि यह सम्यग्दर्शन अतुल्य सुख का निधान (खजाना) है, समस्त कल्याणों का बीज अर्थात् कारण है, संसार रूपी समुद्र से तारने के लिए जहाज है, तथा इसको धारण करने वाले एक मात्र पात्र भव्य जीव ही हैं। अभव्य जीव इसके पात्र कदापि नहीं हो सकते। और यह सम्यग्दर्शन पाप रूपी वृक्ष को काटने के लिये कुठार (कुल्हाडे) के समान है, तथा पवित्र तीर्थों में यही प्रधान है, अर्थात् मुख्य है। और जीत लिया है अपने विपक्ष अर्थात् मिथ्यात्वरूपी शत्रु को जिसने ऐसा यह सम्यग्दर्शन है। अतः भव्य जीवों को सबसे पहिले इसे ही अंगीकार करना चाहिए।

करणानुयोग व द्रव्यानुयोग की प्रमुखता से चारों अनुयोग के आधार पर बनी शोधपूर्ण कविता...

(सुदृष्टि में अनन्त श्रद्धाशक्ति!)

(आत्मविशुद्धि से जीव बनते सुदृष्टि, केवल रूढ़ि-परम्परा से नहीं)

(चाल : 1. गंगा तेरा पानी...2. क्या मिलिए....

सुदृष्टि! तेरा अनन्त श्रद्धा...सर्वज्ञ ही पूर्ण जाने...
अनन्त ज्ञेय/(सत्य) श्रद्धायोग्य...तुझमें सम्यक्त्व जो होय...(स्थायी)...
आत्मा में तीन प्रमुख गुण है...सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आचरण...
और भी अनन्तानन्त गुण होते...सभी के श्रद्धान योग्य तेरा गुण...
और भी षटद्व्य सप्ततत्त्व सह...नव पदार्थ को भी करो श्रद्धान...
हर द्रव्य में अनन्तान्त गुण है...पर्याय भी होती अनन्तानन्त...(1)

ऐसे अनन्तानन्त गुण पर्यायों का...श्रद्धान करने योग्य तुझमें शक्ति...
अतः हे! सम्यग्दृष्टि तेरी महिमा...न जान पाते मिथ्यादृष्टि...
अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ...इनसे (भी) अनन्त गुणी शक्ति सह मिथ्यात्व...
इनके उपशम क्षयोपशम क्षय से जात...सम्यक्त्व अतः तुझमें शक्ति अनन्त...(2)...

अतः तुझमें अष्टगुण व अंग होते...पच्चीस मल दोषों से भी रहित...
सोलह प्रकृतियों का अबन्ध...तुझे न होती गति नरक तिर्यञ्च...
सप्त व्यसन अष्ट मदों से भी रिक्त...संवेग वैराग्य उपशम आस्तिक्य सह
देवशाास्त्र गुरु विनय भक्ति युक्त...संसार शरीर भोगों में अनासक्त...(3)

कमल सम निर्लिप्त चित्त हो...स्वयं को मानते हो चैतन्य द्रव्य...
द्रव्य भाव नो कर्मों से भी रहित...निश्चय से शुद्ध बुद्ध व आनन्द...
अतः आप हो सनम्र सत्यग्राही...सङ्कीर्ण कट्टर अनुदार से हीन...
व्यापक समन्वय अनेकान्तयुक्त...स्याद्वादमय कथन सहित...(4)...

स्वयं को ही स्वयं का कर्त्ता भोक्ता मानो...अन्य को न मानो स्व का कर्त्ता भोक्ता
वस्तु स्वतन्त्रता के अनुसार आप...स्व को न मानो अन्य का कर्त्ता भोक्ता
अतएव स्व उद्धार के लिए...करते हो ''उत्तम स्वात्म चिन्ता'' सदा...
''अधमाधमा परचिन्ता'' न करो...मैत्री प्रमोद करुणा माध्यस्थ भाव...(5)...

राग द्वेष मोह पक्षपात युक्त...कभी न करो संकल्पी हिंसा...
गुणग्राही गुणकथक आप हो...दोष कथन में रहो सदा मौन...
चारित्र मोहोदय से न बने व्रती...तथापि भावना व्रती बनने की...
अतएव धार्मिक प्रति आदरभाव...धर्म धर्मी प्रति हो अनुमोदक...(6)

अतएव आप होते हो सुज्ञानी...हिताहित ज्ञानी रूपी भेदविज्ञानी...
ज्ञान वैराग्य व मोक्ष लक्ष्य युक्त...भरत सम घर में वैरागी चित्त...
अनन्त अविभाग शक्ति सह श्रद्धान...उससे युक्त हो आप सुदृष्टि...
अतः आप में अनन्त श्रद्धान शक्ति...देव से भी श्रेष्ठ कर्त्ता सुदृष्टि...(7)

आप पाओगे अवश्य परिनिर्वाण...बनकर वीतरागी निस्पृह श्रमण...
आत्मविशुद्धि से ये सभी सम्भव...आत्म में होते अनन्तानन्त गुण/(शक्ति)...
अन्यथा केवल बाह्य रूढ़ि परम्परा से...उक्त सभी उपलब्धियाँ न सम्भव...
धर्म आत्मा का शुद्ध स्वभाव है...'सूरी कनक' का लक्ष्य आत्म स्वभाव...(8)...

ग.पु. कॉलोनी, दि. 11.6.2019, रात्रि 9.52
(यह कविता विजयलक्ष्मी व स्वाध्याय मण्डल के कारण बनी।)

मोक्षमार्ग में सम्यक्त्व की प्रथम भूमिका का वर्णन करते हुए कहते हैं-

संदर्भ

तत्रादौ सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयमलिखलयत्नेन।
तस्मिन्सत्येव यतो भवति ज्ञानं चारित्रं च।। (21)।।

रत्नत्रय रूपी मोक्षमार्ग में सर्व प्रथम सम्यग्दर्शन को अखिल प्रयत्न पूर्वक आश्रय लेना चाहिए, क्योंकि सम्यग्दर्शन के होने पर ही ज्ञान एवं चारित्र सम्यक् बनते हैं जिससे मोक्षमार्ग बनता है।

मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन की प्राथमिकता एवं प्राथमिक भूमिका का प्रतिपादन करते हुए भगवद् कुन्द-कुन्द आचार्य देव निम्न प्रकार बताते हैं-

''दंसण मूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं।। (2)।।''

अनंत ज्ञानी अनंत जिनेन्द्र ने अपने शिष्यों को बताया है कि धर्म रूप वृक्ष का मूल सम्यग्दर्शन है।

जे दंसणेसु भट्ठा णाणे भट्ठा चरित्त भट्ठा य।
एदे भट्ठ वि भट्ठा सेसं पि जणं विणासंति।। (8)।।

जो सम्यग्दर्शन से रहित है वह ज्ञान से भी एवं चरित्र से भी रहित है। दर्शन भ्रष्ट महाभ्रष्ट है। जो स्वयं भ्रष्ट है वह दूसरे को भी भ्रष्ट करते हैं। जो स्वयं मिथ्यादृष्टि है वह दूसरों को भी मिथ्यादर्शन के उपदेश की प्रेरणा देते हैं जिससे अन्य लोग भी मिथ्यादर्शन का अनुसरण करके भ्रष्ट होते हैं।

जह मूलम्मि विणट्ठे दुमस्स परिवार णत्थिपरवट्ठी।
तह जिणदंसणभट्ठामूलविणट्ठा ण सिज्झंति।। (10)।।

जैसे वृक्ष की मूल नष्ट हो जाने से वृक्ष की शाखा-प्रशाखा की वृद्धि नहीं हो सकती है उसी प्रकार सम्यग्दर्शन नष्ट होने से रत्नत्रय स्वरूपी वृक्ष भी नष्ट हो जाता है जिससे मोक्ष रूपी फल की प्राप्ति नहीं होती अर्थात् मोक्ष नहीं मिलता।

सम्यग्दर्शन रहित ज्ञान तथा चरित्र मोक्ष के लिए कारण न होने से वे दोनों जीव के लिये भार स्वरूप है। यथा-

शमबोधवृत्त तपसां पाषाणस्यैव गौरवं पुसः।
पूज्यं महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तम्।। 15।।

पुरुष के सम्यक्त्व से रहित शान्ति, ज्ञान, चरित्र और तप इनका महत्व पत्थर

के भारीपन के समान व्यर्थ है। परन्तु वही उनका महत्व यदि सम्यक्त्व से सहित है तो वह मूल्यवान मणि के महत्त्व के समान पूजनीय है।

इसलिए भगवती आराधना में सम्यग्दर्शन की उपलब्धि विश्व की सम्पूर्ण उपलब्धि से भी श्रेष्ठ बताया है।

''समद्दंसण लंभो वरं खु तेलोक्क लंभादो।''

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तीन लोक के ऐश्वर्य से भी श्रेष्ठ है।

नादंसणिस्य नाणं। नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा।
अगुणिस्स णत्थि मोक्खो। णत्थि अमोक्खस्सणिवाणी।।
(उत्तराध्ययन)

सम्यग्दर्शन के अभाव में ज्ञान प्राप्त नहीं होता, ज्ञान के अभाव में चारित्र के गुण नहीं होते, गुणों के अभाव में मोक्ष नहीं होता और मोक्ष के अभाव में निर्वाण (शाश्वत-आत्मानंद) प्राप्त नहीं होता।

''णत्थि चरित्तं सम्मत्तं विहूणं''

सम्यक्त्व (सत्य दृष्टि) के अभाव में चरित्र नहीं हो सकता।

एवं जिण पण्णत्तं दंसण रयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढ़म मोक्खस्स।। (21) (दं. पाहुड)

इसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्रतिपादित सम्यग्दर्शन रूपी अलौकिक अमूल्य रत्न को भाव सहित धारण करता है। वह सार भूत रत्नत्रय के प्रथम सोपान में अपना पैर रखता है जो कि मोक्ष के लिए प्रथम एवं प्रधान सोपान स्वरूप है।

सम्यग्दर्शन प्रथम एवं प्रधान सोपान होने पर भी यह अन्तिम सोपान नहीं है परन्तु बिना प्रथम सोपान के अन्तिम सोपान की प्राप्ति नहीं हो सकती है परन्तु प्रथम सोपान को ही अन्तिम सोपान मानना महती भूल है। इन सोपान को प्रथम एवं अन्तिम मानने वाला आगे के लिए लक्ष्य विहीन होने से वह आगे प्रयाण नहीं कर सकता है जिससे यथार्थ अन्तिम सोपान को प्राप्त नहीं कर सकता है।

मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्र।
सम्यक्ता न लहे, सो दर्शन, धारौ भव्य पवित्र।।

ज्ञान विश्व के समस्त रहस्यों को प्रकाशित करने वाला है। ज्ञान से ही मनुष्य को कर्त्तव्य का बोध होता है।

''सुयस्स आराहणपाए णं अन्नाणं खवेई वदे।'' उत्तराध्ययन

ज्ञान की आराधना करने से आत्मा अज्ञान का नाश करता है।

विन्नावेणं समागम्य धम्मसाहणमिच्छउं। उत्तराध्ययन

विज्ञान के द्वार धर्म के साधनों का उचित निर्णय करना चाहिए।

पढमं नाणं तओ दया एवं चिट्ठई सव्वसंजए।

अज्जन्नाणी किं काही किंवा वाहिइ छेय पावठँ।। दशवैकालिक

पहले सम्यग्ज्ञान होना चाहिए उसके उपरांत सम्यग्ज्ञान के अनुसार दया पालन करना चाहिए अर्थात् सम्यक्चारित्र पालन करना चाहिए। इसी प्रकार चारित्र सम्पूर्ण संयमियों को आचरण करने योग्य है। अज्ञानी कभी इस प्रकार श्रेय(आचरणीय), पापात्मक अश्रेय को जान सकता है अर्थात् बिना ज्ञान करणीय-अकरणीय का विवेक नहीं होने से अज्ञानी यथार्थ चारित्र पालन नहीं कर सकता है।

''बिना जानते दोष गुणन को कैसे तजिये गहिये।''

सम्यग्ज्ञान की महानता का वर्णन करते हुए अमृत कलश में बताते हैं कि-

भेद विज्ञानतःसिद्धाःसिद्धा ये किल केचन।

तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन।। 7।।

जो अनन्तानंत सिद्ध हुए हैं वे सब भेद विज्ञान से सिद्ध हुए हैं। जो बंधे हुए हैं वे भेद विज्ञान के अभाव के कारण बंधे हुए हैं।

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण।

इह परमामृत जन्म जरा मृत्यु रोग निवारण।। चतुर्थढाल

आत्म हित के लिए सम्यग्ज्ञान की उपासना

इत्याश्रित-सम्यक्त्वैः सम्यग्ज्ञानं निरूप्य यत्नेन।

आम्नाय युक्ति-योगैः समुपास्यं नित्यमात्महितैः।। (31)

सम्यक्त्व का ज्ञान करके यहाँ पर ज्ञान स्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। पुनः आत्मा के हित के लिए आत्महितकांक्षियों को सदैव सम्यक्ज्ञान का सम्यक् रूप से सेवन करना चाहिए। प्रयत्न रूप से अष्टांग लक्षण सहित सम्यक्त्व से युक्त होकर आत्महित के लिए आम्नाय अर्थात् सर्वज्ञ के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की परम्परा तथा युक्ति से सहित होकर सम्यक्ज्ञान की सेवा अर्थात् प्राप्ति करनी चाहिए।

न्याय ग्रन्थ के रचयिता आचार्य श्री माणिक्य नंदी ने इसी सत्य को ज्ञान रूप से

उजागर किया है।

हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थ हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्।

जिससे हित की प्राप्ति, अहित का परिहार होता है वह प्रमाण है जो कि सम्यग्ज्ञान स्वरूप है।

''अज्ञान निवृत्तिनोपादानोपेक्षाश्च फलम्''

अज्ञानी की निवृत्ति, अहित का त्याग, हित की प्राप्ति, वीतराग स्वरूप निरपेक्षरूप समता भाव यह सम्यग्ज्ञान का फल है।

दर्शन और ज्ञान में भेद

पृथगाराधनमिष्टं दर्शन-सहभाविनोऽपि बोधस्य।

लक्षण-भेदेन यतो, नानात्वं संभावत्यनयोः।। (32)।।

सम्यक्दर्शन सहभावि अर्थात् सह-उत्पादन ज्ञान होते हुए भी ज्ञान की आराधना अर्थात् सेवन पृथक् से करना इष्ट है। जब सम्यक्दर्शन होता है तभी सम्यक्ज्ञान होता है। अतः व्यवहार अपेक्षा से लक्षण भेद से दोनों सम्यक्दर्शन तथा सम्यक्ज्ञान में भिन्नत्व संभव होता है, सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान के लक्षण में भिन्नता पाई जाती है। इसलिए सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान दोनों भिन्न है।

दोनों में कार्य-कारण का भाव

सम्यग्ज्ञानं कार्यं, सम्यक्त्वकारणं वदन्ति जिनाः।

ज्ञानाराधनमिष्टं सम्यक्त्वानन्तरं तस्मात्।। 33।।

सर्वज्ञ भगवान् ने बताया है कि सम्यक्त्व कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है क्योंकि पूर्वभावि कारण है पश्चात् भावि कार्य है। इसलिए सम्यक्दर्शन को कारण कहा गया है तथा सम्यक् ज्ञान को कार्य कहा गया है। अतएव सम्यक्त्व के बाद ज्ञान की आराधना वांछनीय है। इस रहस्य को प्रकट करने के लिये यहाँ पर कार्य कारण सिद्धान्त का कथन किया गया है।

समकाल में होने वाले कार्य-कारण का दृष्टान्त

कारण-कार्य-विधानं, समकालं जायमानयोरपि हि।

दीप प्रकाशयोरिव सम्यक्त्व ज्ञानयोःसुघटम्।। (34)।।

निश्चय से एक ही काल में एक साथ उत्पन्न होने पर भी सम्यक्दर्शन एवं

सम्यक्ज्ञान परस्पर कार्य कारण रूप में उत्पन्न होते हैं। उसी को ही दृष्टांत के द्वारा दृढ़ करते हैं। जिस प्रकार दीपक को प्रज्ज्वलित करते ही प्रकाश फैलता है एवं अन्धकार दूर होता है। प्रकाश होना एवं अन्धकार दूर होना, एक साथ होते हुए भी प्रकाश कारण है एवं अन्धकार दूर होना कार्य है, उसी प्रकार सम्यक्दर्शन के कारण ज्ञान सम्यक्ज्ञान होता है। इसलिए सम्यक्दर्शन कारण है एवं सम्यग्ज्ञान कार्य है।

सम्यग्ज्ञान का स्वरूप

कर्त्तव्योऽध्यवसायः सदनेकन्तात्मकेषु तत्त्वेषु।
संशय-विपर्ययानध्यवसाय विवित्तमात्मरूपं तत्।। (35)।।

सम्यक्दृष्टि भव्यों के द्वारा जीवादि तत्त्वों या पदार्थ में अध्यवसाय करना चाहिए। अर्थात् जीवादि पदार्थों का परिज्ञान करना चाहिए। यह परिणाम प्रसिद्ध आत्मा का स्वभाव है। अनेकान्तात्मक अर्थात् अनित्य, नित्य आदि विरोधात्मक अनन्त गुण से युक्त (वस्तु का) परिज्ञान करना चाहिए। इस वस्तु तत्त्व की कथन प्रणाली सप्तभंगी है। आत्म स्वरूप संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय से रहित है। यह खम्भा है या मनुष्य है इस प्रकार का दुरात्मक ज्ञान संशय है। पदार्थ को विपरीत जानना विपर्यय है। जैसे -सीप को चाँदी रूप में जानना। सम्यक् विचार से रहित अनध्यवसाय ज्ञान है। जैसे चलते हुए पथिक के पैर में कुछ स्पर्श हुआ। उसे निश्चित ज्ञान नहीं हुआ कि यह स्पर्श घास का हुआ या पत्थर का। इस ज्ञान को अनध्यवसाय ज्ञान कहते हैं। इन तीनों ज्ञान से रहित अनेकान्तात्मक यथार्थ ज्ञान को सम्यक् ज्ञान कहते हैं।

सम्यग्ज्ञान के आठ अंग

ग्रन्थार्थोभय-पूर्ण काले विनयेन सोपधान च।
बहुमानेन समन्वितमनिह्नव-ज्ञानमाराध्यम्।। (36)।।

जिसका मिथ्यात्व गलित हो गया है, ऐसे भव्य के द्वारा अनिह्नव से युक्त तथा संशय आदि से रहित होकर के सत्य रूप से ज्ञान की आराधना करनी चाहिए। ज्ञान की आराधना अर्थात् प्राप्ति ग्रन्थ अर्थ, ग्रन्थ सहित अर्थ, काल विनय, उपधान, बहुमान से युक्त होकर करनी चाहिए। धर्म प्रश्नोत्तर ग्रन्थ में कहा भी है- शुद्ध, शुभ उच्चारण से युक्त होकर शास्त्रों का अध्ययन करना व्यंजनाचार है। शास्त्र का अध्ययन शुद्ध उच्चारण युक्त करते हुए उसके अर्थ को समग्रता से सही-सही समझना अर्थाचार है। शब्द के साथ-साथ अर्थ और दोनों की शुद्धि पूर्वक अंगादि सिद्धान्त शास्त्रों का

अध्ययन करना शब्दार्थोभयाचार है। त्रिसंध्या आदि अकाल को छोड़कर योग्य समय में विनयशील युक्त होकर अध्ययन करना कालाचार है। श्रुतभक्ति आदि पूर्वक स्तुति, अवनति, नम्रता आदि से युक्त होकर शास्त्रों का पठन करना विनयाचार है। सिद्धान्त अध्ययन समय में सज्जनों के द्वारा रस, वस्तु आदि का त्याग किया जाता है, उसे उपधान कहते हैं। गुरु शास्त्र के सदुण आदि का प्रकाशन करना, उनका गुणगान करना, उनकी पूजा करना आदि अनिह्नव है। ज्ञानाभ्यास में जिससे ज्ञान प्राप्त करते हैं उनकी पूजा, उनको प्रणाम करना तथा उच्च आसन आदि देना बहुमान है। इसी प्रकार अष्ट गुण से युक्त होकर ज्ञान आराधना करनी चाहिए।

समीक्षा-आचार्य श्री ने इस श्लोक में ज्ञान प्राप्ति के लिए अनिवार्य बाह्य कुछ कारकों का/उपायों का दिग्दर्शन किया है। ज्ञानार्थी में जब तक पात्रता नहीं आती है तब तक वह ज्ञान को प्राप्त करने में असमर्थ रहता है।

जो विनयादि गुण से युक्त होकर शास्त्र अध्ययन करता है वह तो ज्ञानार्जन कर पाता है उसके साथ-साथ उसका ज्ञान सम्यक्ज्ञान तथा गुणकारी ज्ञान होता है। ऐसा ज्ञान ही परम्परा से मोक्ष के लिए कारण बनता है। कहा भी है-

विणएण सुदमधीदं जदिवि पमादेण होदि विस्सरिदं।
तमुवट्ठादि परभवे केवलणाणं च आवहदि।। (286)।।

विनय से पढ़ा गया शास्त्र यद्यपि प्रमाद से विस्मृत भी हो जाता है तो भी वह परभव में उपलब्ध हो जाता है और केवलज्ञान को प्राप्त करा देता है।

दुर्गति का पात्र कौन ?

णहि दाणं णहि पूया णहि सीलं णहि गुणं ण चारित्तं।
जे जइणा भणिया ते णेरइया हुंति कुमाणुसा तिरिया।। (39) रयण.
पद्य- जो न देते दान नहीं पूजा नहीं शील नहीं गुण न चारित्र।
वह मानव कुमानव होता है तथाहि नारकी या तिर्यंच।। (1)

हेयोपादेय विचार से रहित जीव मिथ्यादृष्टि है!

ण वि जाणइ कज्जमकज्जं सेयमसेयं च पुण्ण पावं हि।
तच्चमतच्चं धम्ममधम्मं सो सम्मुउम्मुक्को।। (40) रयण.

अन्वयार्थ- (कज्जमकज्जं) जो कार्य-अकार्य (सेयमसेयं) श्रेय-अश्रेय अर्थात्

हितकारी अहितकारी (पुण्णं पावं) पुण्य और पाप (धम्ममधम्मं) धर्म और अधर्म (तच्चमतच्चं) तत्त्व और अतत्त्व (ण वि जाणइ) नहीं जानता है (सम्मउम्मुक्को) वह मनुष्य सम्यक्त्व से रहित है, अर्थात् मिथ्यादृष्टि है।

पद्य - जो न जानता है कार्य-अकार्य, श्रेय-अश्रेय व पुण्य-पाप ही।
तत्त्व-अतत्त्व व धर्म-अधर्म वह होता सम्यक्त्व मुक्त।। (1)

हेपोयपादेय विचार रहित जीव के सम्यक्त्व कहाँ ?

ण वि जाणइ जाग्गमजोग्गं णिच्चमणिच्चं हेयमुवादेयं।
सच्चमसच्चं भव्वमभव्वं सो सम्मउम्मुक्को।। (41) रयण.

अन्वयार्थ- (जोग्गमजोग्गं) योग्य व अयोग्य (णिच्चमणिच्चं) नित्य व अनित्य (हेयमुवादेयं) त्यजनीय व ग्रहणीय(सच्चमसच्चं) सत्य व असत्य (भव्वमभव्वं) भव्य व अभव्य (ण वि जाणइ) नहीं जानता (सो) वह मनुष्य (सम्मउम्मुक्को) सम्यक्त्व से विमुख है।

पद्य - जो न जानता है योग्य-अयोग्य, नित्य-अनित्य व हेय-उपादेय
सत्य व असत्य, भव्य-अभव्य वह होता सम्यक्त्व रहित।।(1)

संदर्भ :-

निजशुद्धात्म श्रद्धान बिन समस्त धर्म कार्य व्यर्थ संसारवर्द्धक

(चाल: छिप गया कोई रे....)

सम्यग्दृष्टि महान् है...आत्मश्रद्धानी होते,
स्व-पर भेद ज्ञान से...सम्यग्ज्ञानी होते।
श्रद्धा-प्रज्ञा सहित वे...सदाचारी होते,
सातिशय पुण्यशाली...मोक्षमार्ग होते।। (1)
देव-शास्त्र-गुरु भक्ति...सहित वे होते,
तत्त्वार्थ-श्रद्धान युक्त...तत्त्वज्ञानी होते।
इसी से युक्त वे श्रावक-साधु बनते,
आत्मसाधना से वे अर्हन् सिद्ध बनते।। (2)
आत्मश्रद्धा से व स्व को जीव द्रव्य मानते,
निश्चय से शुद्ध-बुद्ध-आनन्दमय मानते।

अनादि कर्म बन्ध से स्व को अशुद्ध मानते,
आत्मसाधना से शुद्ध/(सिद्ध) बनूँ यह लक्ष्य धरते।। (3)
आत्मश्रद्धान बिन सभी धर्म कार्य व्यर्थ,
आत्मश्रद्धान बिन सभी ज्ञान है कुज्ञान।
आत्मश्रद्धान बिना (सभी) आचरण मिथ्याचार,
मिथ्या श्रद्धा-ज्ञान आचरण संसार कारण।। (4)
बीजबिन यथा न होता है वृक्ष,
इकाई बिन यथा शून्य का मूल्य शून्य।
आत्मा बिना यथा शरीर होता है शव,
आत्मश्रद्धान बिन सभी धर्म है अधर्म।। (5)
आत्मश्रद्धान बिन लक्ष्य न होता मोक्ष,
आत्मश्रद्धान बिन तप होता है कुतप।
आत्मश्रद्धान बिन त्याग होता भोग/(संसार, दुःख) हेतु,
धर्म कार्य होते सभी ख्याति-पूजा-वर्चस्व हेतु।। (6)
आत्मश्रद्धा-प्रज्ञा-चर्या बिन न होता मोक्षमार्ग,
रत्नत्रय बिन न होते राग-द्वेष-मोह क्षय।
समता-शान्ति-शुचिता न होती संभव,
निस्पृह-वीतरागता न होते संभव।। (7)
सातिशय पुण्य बन्ध भी न होता संभव,
संवर-निर्जरा-मोक्ष भी न होते संभव।
अतः आत्मश्रद्धान ही प्रथम/(प्रधान) करणीय,
सर्वज्ञ कथित सत्य यह 'कनक' को मान्य।। (8)

लौकिक जनों की संगति योग्य नहीं

लोइय जणसंगादो होइ मइमुहर कुडिल दुब्भावो।
लोइय संग तम्हा जोइ वि तिविहेण मुंचा हो।। रयण.
सुजणो वि होई लहुओ दुज्जणसंमेलणाए दोसेण।
माला वि मोल्लगरुया होदि लहू मडयसंसिट्ठा।। (347)

दुर्जनों की गोष्ठी के दोष से सज्जन भी अपना बड़प्पन खो देता है। फूलों की

कीमती माला भी मुर्दे पर डालने से अपना मूल्य खो देती है।

दुज्जणसंसग्गीए संकिज्जदि संजदो वि दोसेण।
णाणागारे दुद्धं पियंतओ बंभणो चेव।।(348)

दुर्जन के संसर्ग से लोग संयमी के भी सदोष होने की शंका करते हैं। जैसे मद्यालय में बैठकर दूध पीने वाले ब्राह्मण के भी मद्यपायी होनी की शंका करते हैं

परदोसगहणलिच्छो परिवादरदो जणो खु उस्सुणं।
दोसत्थाणसं परिहरह परिवादरदो जणो खु उस्सूणं।
दोसत्थाणं परिहरह तेण जणजंपणोगोसं।। (349)

लोग दूसरों के दोषों को पकड़ने के इच्छुक होते हैं और परोक्ष में दूसरों के दोषों को कहने में रस लेते हैं। इसलिए जो दोषों का स्थान है उनसे अत्यन्त दूर रहो क्योंकि ऐसा न करने से लोगों को अपवाद करने का अवसर मिल जाता है।

अदिसंजदो विदुज्जणकरएण दोसेण पाउणइ दोसं।
जह घूगकए नोसे हंसो या हओ अपावो वि।। (350)

महान् संयमी भी दुर्जन के द्वारा किए गए दोष से अनर्थ का भागी होता है। जैसे उल्लू के द्वारा किए गए दोष के लिए निर्दोष हंस भी मारा गया।

दुज्जण संसग्गीए वि भविदो सुयणमज्झयारम्मि।
ण रगदि रगदि य दुज्जणमज्झे वेरग्गमवहाय।। (351)

दुर्जनों की संगति से प्रभावित मनुष्यों को सज्जनों का सत्संग रुचिकर नहीं लगता। यह वैराग्य को त्यागकर दुर्जनों में ही रमता है। मन की पवित्रता और कर्मों की पवित्रता आदमी की संगति की पवित्रता पर निर्भर है। पवित्र हृदय वाले पुरुष की संगति उत्तम होगी और जिसकी संगति अच्छी है वो हर प्रकार का गौरव प्रदान करती है।

धर्म मनुष्यों को स्वर्ग ले जाता है और सत्पुरुषों की संगति उसको धर्माचरण में रत करती है।

सम्यक्त्व रहित जीव का लक्षण

उग्गो तिव्वो दुट्ठो दुब्भावो दुस्सुदो दुरालावो।
दुम्मदरदो विरूद्धी सो जीवो सम्मउम्मुक्को।। 43 रयण.

अन्वयार्थ :- (उग्गो) उग्र (तिव्वो) तीव्र (दुट्ठो) दुष्ट (य) और (दुब्भावो)

दुर्भावना वाला (दुरस्सुदो) दुश्रुत (दुरालावो) दुर्भाषण-मिथ्या भाषण (दुम्मदरदो) मिथ्यामद में अनुरक्त(विरुद्धो) विरोध वाले (सो) वह (जीवो) जीव (सम्मउम्मुक्को) सम्यक्त्व गुण से विमुक्त है।

पद्य - उग्र तीव्र-दुष्ट-दुर्भाव-दुश्रुत, दुर्भाषण, दुर्मदरत (जीव)।
होता है सम्यक्त्व रहित जो विरोध से सहित।। (1)

क्षुद्र स्वभावी व दुर्भावना युक्त जीव सम्यक्त्व हीन हैं

खुद्दो रद्दो रुट्ठो अणिट्ठपिसुणा सग्गत्थि असूयो।
गायण जायण भंडण दुस्सुणसीलो दु सम्मउम्मुक्को।। 44 रयण.

अन्वयार्थः- (खुद्दो) क्षुद्र (रुद्दो) रौद्र (रूट्ठो) रुष्ट (अणिट्ठ) अनिष्ठ (पिसुणा) चुगलखोर (सग्गत्थि) अभिमानी (असूयो) ईर्ष्यावाला (गायंण) गाना गाने वाला (जायण) याचक (भण्डण) झगड़ा करने वाला (दु) और (दुस्सुणसीलो) अनेक दूषण युक्त (सम्मउम्मुक्को) ऐसे परिणाम वाला मनुष्य प्राणी सम्यक्त्व गुण रहित होता है।

पद्य- क्षुद्र, रौद्र, रूष्ट-अनिष्ठ-पैशुन्य, अहंकारी-ईर्ष्या युक्त।
गायक, याचक, कलह युक्त, दूषण युक्त वह सम्यक्त्व मुक्त।।(1)

जिन धर्म विनाशक जीवों के स्वभाव

वाणर गद्दह साण गय वग्घ वराह कराह।
पक्खि जलूय सहाणवर जिणवरधम्म विणासु।। 45 रयण.

अन्वयार्थ :- (वाणर) बंदर (गद्दह) गर्दभ (साण) कुत्ता (गय) हाथी (वग्घ) व्याघ्र (वराह) शूकर (कराह) ऊँट (पक्खि) पक्षी (जलूय) जलोक (सहाणवर) स्वभाव वाले मानव (जिणवरधम्म विणासु) श्रेष्ठवर जिनेन्द्र भगवान् के कहे हुए धर्म का विनाश करने वाले होते हैं।

पद्य - वानर, गर्दभ, कुत्ता, हाथी, व्याघ्र, शूकर, ऊँट, पक्षी।
जोंक स्वभाव वाले मानव होते हैं जिनेन्द्र धर्म ध्वंशी।। (1)

सम्यक्त्व की हानि का कारण

कुतव कुलिंग कुणाणी कुवय कुसीले कुदंसण कुसत्थो।
कुणिमित्ते संथुय थुइ पसंसणं सम्महाणि होइ णियमं।। 46 रयण.

अन्वयार्थ :-(कुतव) कुतप(कुलिंग) निर्ग्रंथ दिगंबरत्व को छोड़कर अन्य अन्य प्रकार के भेष को धारण करने वाले (कुणाणी) कुज्ञानी अर्थात् आत्ममुक्ति का सच्चा ज्ञान नहीं है (कुवय) कुव्रत अर्थात् जिस व्रतों में कर्म निर्जरा पाप नाश आदि नहीं है, जिसमें शुद्ध चारित्र नहीं है (कुशील) शील भ्रष्ट (कुसत्थो) कुशास्त्र अर्थात् मनोवांछित तथा मनोकल्पित शास्त्र समझकर रचना करना अर्थात् जिसमें केवली भगवान् सर्वज्ञ देव का उपदेश नहीं है ऐसे (कुनिमित्त संथुई थुइ पसंसण) कुदेव कुशास्त्र कुगुरु कुधर्म की स्तुति प्रशंसा करने से (णियम सम्म हाणि होदि) नियम से सम्यक्त्व की हानि होती है।

पद्य- कुतप, कुलिंग, कुज्ञानी, कुव्रत, कुशील, कुदर्शन, कुशास्त्र।
कुनिमित्त से स्तुति, प्रशंसा करे जो, सो सम्क्यत्व करे विनाश।।

आगम एवं आध्यात्मिक दृष्टि से

लौकिक व्यवहार सम्यग्दृष्टि तथा निश्चय सम्यग्दृष्टि (व्यवहार से धार्मिक तथा निश्चय से धार्मिक)

(चाल : छोटी-छोटी गैया....)

आत्म-स्वभाव है सम्यग्दर्शन, जो सत्य प्रतीति/(श्रद्धान) मय होता है।
आत्मविश्वास सह सुज्ञान होता, जिससे होता सम्यक्चारित्र है।। (1)

अनन्तानुबन्धी व मिथ्यात्व कर्म के, उपशम क्षयोपशम क्षय सहित है।
अष्टमद व तीन मूढ़ता रहित, अष्टगुण-अष्टअंग सहित है।। (2)

इसी से होता है तत्त्वार्थ श्रद्धान, जो षट् द्रव्य सप्त तत्त्व मय है।
नव पदार्थ का भी होता है श्रद्धान, देवशास्त्र गुरु श्रद्धान भी है।। (3)

यह है आगम करणानुयोग वर्णित, निश्चय-व्यवहार सम्यग्दर्शन है।
चतुर्थ गुणस्थान से प्रारम्भ होकर, होता है पंचपरमेष्ठी तक में है।। (4)

नारकी देव भी हो सकते सुदृष्टि, नहीं हो सकते वे पंचपरमेष्ठी।
संज्ञी पंचेन्द्रिय पशु-पक्षी भी, हो सकते हैं सुदृष्टि-देशव्रती।। (5)

अनेक देव भी होते हैं कुदृष्टि, किन्तु न होते द्रव्य मिथ्यादृष्टि।
पूजते विमान स्थित जिनचैत्य को, कुलदेव मानकर (अतः) वे कुदृष्टि।।(6)

ऐसा ही जो मानव करते हैं, देव शास्त्र गुरु की भी आराधना।
मिथ्यात्व-अनन्तानुबन्धी उदय में, न होती उनकी सच्ची आराधना।। (7)

लोक व्यवहार से भले वे, नहीं सेवते हैं द्रव्य मिथ्यात्व।
अंन्तरंग मिथ्यात्व उदय से, नहीं होता है उन्हें सम्यक्त्व।। (8)

अतः उन्हें होता है अष्टमद, सत्ता सम्पत्ति प्रसिद्धि का मद।
न होते संवेग 'निर्वेद' उपशम[3] पश्चात्ताप[4] व दोष[5] शोधन।। (9)

भक्ति[6] वात्सल्य[7] अनुकम्पा[8] से रिक्त होते हैं अष्टअंग से रहित।
न जानते आत्म परमात्म स्वरूप, न जानते आत्म-अनात्म रूप।। (10)

भले होते कुछ मन्दकषायी जीव, यथा भोग भूमिज कुदृष्टि जीव।
तथापि न वे होते सुदृष्टि जीव, उदय से मोह मिथ्यात्व भाव।। (11)

सच्चा सम्यग्दृष्टि स्वयं को मानते, निश्चय से शुद्ध बुद्ध रूप।
द्रव्य-भाव-नोकर्मों से रहित, अनन्त चतुष्टय सहित रूप।। (12)

स्वयं को न मानते दीन व हीन, नहीं करते हैं वे अभिमान।
सत्ता सम्पत्ति प्रसिद्धि बुद्धि से, स्वयं को मानते हैं पूर्ण भिन्न।।(13)

पंच अणुव्रतधारी व निर्व्यसनी, होते हैं जो वे देशव्रती।
पंच महाव्रतों को धारण करते, होते हैं जो वे महाव्रती।। (14)

अमूर्तिक गुण है सम्यग्दर्शन, जो आत्मविशुद्धि से है उत्पन्न।
केवली ज्ञानगम्य है यह गुण,उक्त गुणों से होती बाह्य पहचान।। (15)

ज्ञानावरणीय कर्म तीव्र उदय से, भले न बने कोई महाज्ञानी।
तो भी सुदृष्टि होता है भेदज्ञानी/(सुज्ञानी), 'कनक' बनना चाहे सर्वज्ञानी।।(16)

रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन की मुख्यता

सम्मविणा सण्णाणं सच्चारित्तं ण होइ णियमेण।
तो रयणत्तयमज्झे सम्मगुणक्किट्ठमिदि जिणुद्दिट्ठं।। 47 रयण.

अन्वयार्थ :- (सम्मविणा) सम्यक्त्व के अभाव में (सण्णाणं) सम्यग्ज्ञान(सच्चारितं) सम्यक्चारित्र (णनियमेण होई) निश्चय से नहीं होता है। (तो

रयणत्तय मज्झे) इसलिए रत्नत्रय में (सम्मगुणक्किट्ठमिदि) यह सम्यक्त्व गुण उत्कृष्ट है ऐसा(जिणुद्दिट्ठं) जिनेन्द्र भगवान् का उपदेश है।

पद्यभावानुवाद-

सम्यक्त्व बिन न होता सुज्ञान, सुज्ञान बिन न सदाचरण।
अतएव ही सम्यग्दर्शन रत्नत्रय मध्य में होता प्रधान।।

आत्मविश्वास युक्त ज्ञान सुज्ञान अन्यथा मिथ्याज्ञान

(चालः तेरे प्यार का आसरा....,एकान्त मौन....) - आचार्य कनकनन्दी

सम्यग्ज्ञान होता है आत्मविश्वास युक्त मिथ्याज्ञान होता है आत्मविश्वास मुक्त।
श्रद्धा प्रज्ञा युक्त होता है सुज्ञान, श्रद्धा प्रज्ञा मुक्त होता है कुज्ञान।। (1)

इन्द्रिय मन से जो ज्ञान होता, श्रद्धायुक्त सो सुमतिज्ञान होता।
श्रद्धामुक्त से कुमतिज्ञान होता, श्रद्धा का नामान्तर आत्मविश्वास होता।। (2)

मतिज्ञान पुरस्सर होता श्रुतज्ञान, श्रवण अध्ययन से होता यह ज्ञान।
आत्म अभिमुख होता यह ज्ञान, आत्मानुभव रूप होता श्रुतज्ञान।। (3)

केवल सुनना या श्रुत/(ग्रंथ) पढ़ने से, होता है मतिज्ञान अनुभव-शून्य से।
श्रद्धा रहित यदि होता श्रुतज्ञान का भी होता ज्ञान,यह आगम वर्णन।।(4)

अवग्रह ईहा आवाय व धारणा, मति स्मृति संज्ञा चिंता अभिनिबोध।

जो ज्ञान होते इन्द्रिय मन से, वे सब मतिज्ञान जानो आगम से।।(5)

अनुभवपूर्ण श्रुतज्ञान से ही, होता है तथा ज्ञात आत्मा परमात्मा भी।

मूर्तिक अमूर्तिक का भी होता ज्ञान,आंशिक रूप से ही परोक्ष ज्ञान।। (6)

अन्यथा मतिज्ञान या कुश्रुतज्ञान से, न होता यह ज्ञान अनुभव शून्य से।
अवधिज्ञान भी होता सु या कुज्ञान, श्रद्धा सहित सु अन्यथा कुज्ञान।। (7)

मनःपर्यय होता अवश्य सुज्ञान, अन्य के मनगत जानता यह ज्ञान।
केवलज्ञान तो अनंत सम्यग्ज्ञान, लोकालोकज्ञाता होता है यह ज्ञान।। (8)
संपूर्ण घातीकर्म क्षय होने से, संपूर्ण ज्ञानगुण प्रगट होने से।
युगपत् यह ज्ञान जानता सभी को, 'कनकनन्दी' चाहे केवलज्ञान को।।(9)

आध्यात्मिक गीत

अन्तरात्मा के द्वारा मन को सम्बोधन

मन रेऽऽ तू काहे न धीर धरेऽऽ
चञ्चल यथा तेरा स्वभावऽऽऽ लोग भी...वैसा करेऽऽऽ मन रेऽऽ...(ध्रुवपद)...
मोही रागी द्वेषी स्वार्थी (जन) से ऽऽकाहे तू नेह करेऽऽऽ
निस्पृह बन तू शांति पायेगाऽऽ स्थिरता तुझे वरेऽऽऽ
समता/(धैर्य) भाव धरेऽऽऽमन रेऽऽ(1)

मोही जन तो स्वयं (ही) अस्थिरऽऽ संतोष नहीं धरेऽऽऽ
अतः तुझे क्या संतोष देंगेऽऽ शिला से क्या/(न) जल झरेऽऽऽ
आत्मा से शांति झरेऽऽऽ मन रेऽऽ(2)

कृतघ्न दगाबाज लोभी जनो से ऽऽ क्यों तू अपेक्षा करेऽऽऽ
विवेक जगाओ स्व को समझाओऽऽ ऐसा ही आदेश तोरेऽऽऽ
निष्पक्ष भाव धर रेऽऽ मन रेऽऽऽ(3)

बहिरातमपन त्यागकर तूऽऽ अंतर आतम तू बनोऽऽऽ
अंतर से परमातम बननेऽऽ हेतु तू (मेरा)सहयोगी बनोऽऽऽ
अंतर आतम बन रेऽऽ मन रेऽऽ(4)

अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा रहितऽऽ मुझमें रमण करोऽऽऽ
मैं ही अनंत सुख आगारऽऽ मुझसे सुख को वरोऽऽऽ
अनन्त सुख वरो...(5)

''जो पुणु परदव्यरओ मिच्छाइट्ठी हवई सो साहू।
मिच्छत्तपरिणदो उण बज्झदि दुट्ठट्ठकम्मेहिं।।'' प.प्र.
''जे पज्जऐसु णिरदा जीवा परसमइग त्ति णिद्दिट्ठा।
आदसहावम्मि ठिदा ते सगसमया मुणेयव्वा।।''
अत्र स्वसंवित्तिरुपाद्वीतरागसम्यक्त्व प्रतिपक्षभूतं मिथ्यात्वं हेयमिति भावार्थः।

गाथार्थ- शरीर आदि पर्याय में लीन हुआ तो अज्ञानी है, वह मिथ्यादृष्टि होता

है, और फिर वह अनेक प्रकार के कर्मों को बांधता है, जिनसे कि संसार भ्रमण करता है।

टीकार्थ- परमात्मा की अनुभूतिरूप श्रद्धा से विमुख जो आठ मद आठ मल छह अनायतन, तीन मूढ़ता, इन पच्चीस दोषों कर सहित अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्व परिणाम जिसके हैं, वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है। वह मिथ्यादृष्टि नर नारकादि विभावपर्यायों में लीन रहता है। उस मिथ्यात्व परिणाम से शुद्धात्मा के अनुभव से पराङ मुख अनेक तरह के कर्मों को बांधता है, जिनसे कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव रूपी पांच प्रकार के संसार में भटकता है ऐसा कोई शरीर नहीं जो इसने न धारण किया हो, ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, कि जहां न उपजा हो और मरण न किया हो, ऐसा कोई काल नहीं है, कि जिसमें इसने जन्म-मरण न किये हो ऐसा कोई भव नहीं जो इसने पाया न हो, और ऐसे अशुद्ध भाव नहीं है, जो इसके न हुए हो। इस तरह अनन्त परावर्तन इसने किये हैं। ऐसा ही कथन मोक्ष पाहुड में निश्चय मिथ्यादृष्टि के लक्षण में श्री कुंदकुंदाचार्य ने कहा है-'जे पुण' इत्यादि। इसका अर्थ यह है कि जो अज्ञानी जीव द्रव्यकर्म, भावकर्म नोकर्म रूप परद्रव्य में लीन हो रहे हैं वे साधु के व्रत धारण करने पर भी मिथ्यादृष्टि ही है, सम्यग्दृष्टि नहीं और मिथ्यात्वकर परिणमते दुःख देने वाले आठ कर्मों को बांधते है। फिर भी आचार्य ने ही मोक्ष पाहुड में कहा है ''जे पज्जयेसु'' इत्यादि उसका अर्थ यह है, कि जो नर नारकादि पर्यायों में मग्न हो रहे हैं, वे जीव पर्याय में रत मिथ्यादृष्टि है, ऐसा भगवान् ने कहा है, और जो उपयोग लक्षणरूप निजभाव में तिष्ठ रहे हैं, वे स्वसमयरूप सम्यग्दृष्टि है, ऐसा जानो। सारांश यह है, कि जो परपर्याय में रत है, वे तो पर समय (मिथ्यादृष्टि) है और जो आत्म-स्वभाव में लगे हुए हैं, वे स्वसमय (सम्यग्दृष्टि) है, मिथ्यादृष्टि नहीं हैं।

जिउ मिच्छत्ते परिणमिउ विवरिअ तच्च मुणेइ।
कम्म-विणिम्मिय भावडा ते अप्पाणु भणेइ।(79) पृ.77

यह जीव अतत्त्वश्रद्धानरूप परिणत हुआ, आत्मा को आदि लेकर तत्त्वों के स्वरूप को अन्य का अन्य श्रद्धान करता है, यथार्थ नहीं जानता। वस्तु का स्वरूप तो जैसा है वैसा ही है, तो भी वह मिथ्यात्वी जीव वस्तु के स्वरूप को विपरीत जानता है, अपना जो शुद्ध ज्ञानादि सहित स्वरूप है, उसको मिथ्यात्व रागादिरूप जानता है। उससे क्या करता है ? कर्मों कर रचे गये जो शरीरादि परभाव है उनको अपने कहता

है, अर्थात् भेदविज्ञान के अभाव से गोरा, श्याम, स्थूल, कृश इत्यादि कर्मजनित देह के स्वरूप को अपना जानता है, इसी से संसार में भ्रमण करता है।

हउं गोरउ हउं सामलउ हउं जि विभिण्णउ वण्णु।

हउं तणु-अंगऊ थूलु हउं एहउं मूढ़उ मण्णु(80)

मैं गोरा हूँ, मैं काला हूँ, मैं ही अनेक वर्णमाला हूँ, मैं कृश शरीर वाला हूँ, मैं मोटा हूँ इस प्रकार मिथ्यात्व परिणामकर परिणत मिथ्यादृष्टि जीव को तू मूढ मान।

हउं वरु वंभणु वइसु हउं हउं खत्तिउ हउं सेसु।

पुरिसु णउंसर इत्थि हउं भण्णइ मूढु विसेसु। (81)

मिथ्यादृष्टि अपने को ऐसा विशेष मानता है, कि मैं सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मण हूँ, मैं वाणिक हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मैं इनके सिवाय शुद्र हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं पुरुष हूँ, और स्त्री हूँ। इस प्रकार शरीर के भावों को मूर्ख अपने मानता है। सो ये सब शरीर के हैं, आत्मा के नहीं है।

तरुणउ बूढउ रुयडउ सूरउ पंडिउ दिव्वु।

खवणउ वंदउ सेवडा मूढउ मण्णइ सव्वु। (82)

मैं जवान हूँ, बूड्ढा हूँ रूपवान हूँ, शूरवीर हूँ, पंडित हूँ सबसे श्रेष्ठ हूँ, दिगंबर हूँ, बौद्धमत का आचार्य हूँ, और मैं श्वेताम्बर हूँ, इत्यादि सब शरीर के भेदों को मूर्ख अपने मानता है। ये भेद जीव के नहीं है।

जणणी जणणु वि कंत घरु पत्तु वि मित्तु वि दव्वु।

माया जालु वि अप्पणउ मूढउ मण्णइ सव्वु। (83)

माता, पिता और स्त्री, घर, बेटा, मित्र वगैरह सब कुटुम्बीजन बहिन भानजी, नाना, मामा, भाई, बन्धु और रत्नमाणिक मोती सुवर्ण चांदी धन-धान्य, द्विपदादी धाय-नौकर चौपाये गाय बैल घोड़ी ऊंट हाथी रथ पालकी वहली, ये सर्व असत्य हैं, कर्म जनित है,तो भी अज्ञानी जीव अपने मानता है।

दुक्खहं कारणि जे विसय ते सुह-हेउ रमेइ।

मिच्छाइट्ठिउ जीवडउ इत्थु ण काइं करे। (84)

दुःख के कारण जो पांच इन्द्रियों के विषय है, उनको सुख के कारण जानकर रमण करता है, वह मिथ्यादृष्टि जीव इस संसार में क्या पाप नहीं करता ? सभी पाप

करता है, अर्थात् जीवों की हिंसा करता है।

झूठ बोलता है, दूसरे का धन हरता है, दूसरे की स्त्री सेवन करता है, अति तृष्णा करता है, बहुत आरंभ करता है, खेती करता है, खोटे-खोटे व्यसन सेवता है, जो न करने के काम हैं, उनको भी करता है।

जीवादि प्रयोजन भूत तत्त्व सरधै तिनमांहि विपर्ययत्व।
चेतनको है उपयोगरूप, विन मूरति चिनमूरति अनूप।।
पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल।
ताकों न जान विपरीत मान, करि करे देह में निज पिछान।।
मैं सुखी दुखी मैं रंक राव,मेरो धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीण।।
तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट जे दुःख दैन, तिनही को सवेत गिनत चैन।।छ.ढा.

मिथ्यात्व की शक्ति- मिथ्यात्व कर्म की शक्ति (अनुभाग) तथा स्थिति सम्पूर्ण मूल प्रकृति एवं उत्तर प्रकृति से अधिक है। इसलिए तो मिथ्यात्व को अनंत संसार का कारण होने से अनंत कहा है। यथा ''अनंत संसार कारणत्वात् अनन्त मिथ्यात्वं।''

जय धवला में वीरसेन स्वामी ने कहा भी है-

सव्वतिव्वाणुभागा मिच्छतस्स उक्कस्साणु भागुदीरणा अणंता -
णुबंधीणमण्णदरा उक्कस्साणु माणुदीरण तुल्ला अणंत गुण हीणा।।

सबसे मिथ्यात्व की उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा तीव्र अनुभाग वाली है। अर्थात् सबसे तीव्र शक्ति से संयुक्त है। उससे अनंतानुबंधियों की अन्यतर (कोई एक) उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा परस्पर समान हो कर मिथ्यात्व की उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा से अनंत गुणी हीन है।

शंका-मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अनुभाग सबसे तीव्र क्यों है ?

समाधान-''सव्वदव्वं विसय सद्दहण गुण पडिबंधित्तादा(ज.ध.)

सर्व द्रव्य विषय श्रद्धान गुण का प्रतिबंधन मिथ्यात्व कर्म करता है।

मिच्छत्तपच्चयो खलु बंधो उवसाम यस्स बोधव्वो।
उवसंते सासणे तेण परं होदि भयणिज्जो। (धवला)

मिथ्यात्व का उपशांत अवस्था में और सासादन गुणस्थान में मिथ्यात्व निमित्तक बंध नहीं होता है अन्य स्थान भी भजनीय है। अर्थात् मिथ्यात्व को प्राप्त मिथ्यादृष्टि जीव को मिथ्यात्व सम्बंधी बंध होता है परन्तु अन्य गुणस्थानवर्ती को नहीं होता है। केवल मिथ्यात्व कर्म की शक्ति अनन्तानुबन्धी आदि कषाय से या कर्म से अधिक नहीं किन्तु स्थिति भी सब कर्म से अधिक है। चारित्र मोहनीय, (राग द्वेष) की स्थिति 40 कोटा कोटि सागर है परन्तु मिथ्यात्व की स्थिति 70 कोटा कोटि सागर है। **गोम्मटसार कर्मकाण्ड** में मिथ्यात्व प्रकृति को सर्वघाती एवं ध्रुवोदयी बताया गया है अर्थात् यह प्रकृति जब तक व्युच्छिति नहीं होती है तब तक उदय में रहती है इसलिये ध्रुवोदयी है और यह जीव के अनुजीवी गुणों को अर्थात् सम्यक्त्व गुणों को पूर्णरूप से घातती है इसलिये इसे सर्वघाती कहते हैं।

केवलणाणावरणं दंसणछक्कं कसायबारसयं।
मिच्छं च सव्वघादी सम्मामिच्छं अबंधम्मि। (39)

घाती कर्म, सर्वघाती और देशघाती होते हैं। इनमें से सर्वघाती कहते हैं- केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, स्त्यानगृद्धि आदि पांच, अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, क्रोध-मान-माया-लोभ, मिथ्यात्वकर्म ये बीस सर्वघाती हैं। सम्यग्मिथ्यात्व बन्धप्रकृति नहीं है। अतः उदय और सत्व में ही जात्यान्तर सर्वघाती है।

इस गाथा (83) में कुंद-कुंद देव ने मुख्यतः मोहनीय कर्म के 3 भेद बताये हैं। परन्तु विशेष रूप से इसके 28 भेद भी हैं। यथा-

त्रयः सम्यक्त्वमिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व भेदतः।
क्रोधो मानस्तथा माया लोभोऽनन्तानुबन्धिनः(27)

तथा च एव चाप्रत्याख्यानावरणसंज्ञिकाः।
प्रत्याख्यान रुधश्चैव तथा संज्वलनाभिधाः(28)

हास्यं रत्यरती शोको भयं सह जुगुप्सया।
नारीपुंषण्ढवेदाश्चय मोह प्रकृतयः स्मृताः (29) त.सा.

मोहनीय कर्म की मूल में दो प्रकृतियां है- (1) दर्शन मोहनीय (2)चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय के 3 भेद है-1, मिथ्यात्व प्रकृति 2, सम्यक्त्व प्रकृति 3, सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति चारित्र मोहनीय के भी कषाय वेदनीय और नो कषाय वेदनीय

की अपेक्षा दो भेद हैं। कषाय वेदनीय के अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अत्याख्यानावरण क्रोध मान-माया-लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ के भेद से सोलह भेद हैं और नो कषाय के हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुसंक वेद की अपेक्षा नौ भेद हैं। सब मिलाकर मोहनीय कर्म के अट्ठाईस भेद होते हैं।

दिगम्बर जैन परम्परा का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ धवला सिद्धान्त में आचार्य वीरसेन स्वामी ने इसका सविस्तार वर्णन निम्न प्रकार किया हैं- वह मोहनीय कर्म दो प्रकार का है-ं दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय।।

जो मोहित करता है वह मोहनीय नामक द्रव्यकर्म है। आप्त, आगम और पदार्थों में जो प्रत्यय, रुचि, श्रद्धा, और दर्शन होता है उसका नाम दर्शन है। उसको मोहित करने वाला अर्थात् उससे विपरीत भाव को उत्पन्न करने वाला कर्म दर्शन मोहनीय कहलाता है। राग का न होना चारित्र है। उसे मोहीत करने वाला अर्थात् उससे विपरीत भाव को, उत्पन्न करने वाला कर्म चारित्र मोहनीय कहलाता है।

जो दर्शन मोहनीय कर्म है वह बन्ध की अपेक्षा एक प्रकार का है (92)

क्योंकि, उसके बन्ध के कारण बहुत नहीं है। कारण के भेद से ही कार्य में भेद होता है, अन्यथा नहीं होता। इसीलिए दर्शन-मोहनीय कर्म बन्ध की अपेक्षा एक प्रकार का ही है, यह सिद्ध है।

किन्तु उसका सत्कर्म तीन प्रकार का है-मिथ्यात्व, सम्यक्त्व मिथ्यात्व सम्यक्त्व प्रकृति।

शंका–जो मोहनीय कर्म बन्ध काल में एक प्रकार का है वह सत्व अवस्था में तीन प्रकार का कैसे हो जाता है ?

समाधान–यह कोई दोष नहीं हैं क्योंकि दला जाने वाला एक ही प्रकार का द्रव्य एक काल में एक क्रिया विशेष के द्वारा चावल आधे चावल और कोदो, इन तीनों अवस्थाओं को प्राप्त होता है। उसी प्रकार प्रकृत में भी जानना चाहिए।

शंका–यहां क्रिया युक्त जाते (एक प्रकार की चक्की) के सम्बन्ध से उस प्रकार का परिणमन भले ही हो जावे, किन्तु यहां वैसा नहीं हो सकता ?

मम शुद्धात्मा ध्यान

(मम विश्वरूप चिंतन)

(उत्तम स्वात्मचिंतास्यात् परचिंता अधमाधमा)

(चाल-क्या मिलिए....) - आचार्य कनकनंदी जी

मेरे गुणधर्म मुझ में स्थित, अन्य सभी बाह्य निमित्त।
वृक्ष हेतु यथा बीज प्रमुख, मृदा जलवायु आदि निमित्त।। 1।।

मैं हूँ जीवद्रव्य अतः मैं सत्य सत्य होने से मैं शाश्वत।
शाश्वत होने से अनादिअनंत, उत्पाद व्यय ध्रौव्य संयुक्त।।2।।

सत्य होने से स्वयंभू स्वतंत्र, अस्तित्त्व वस्तुत्व गुणयुक्त।
जीव होने से मैं चैतन्य स्वरूप, सच्चिदानंद मम स्वरूप।।3।।

अगुरुलघुगुण युक्त होने से, मम गुणधर्म मुझ से न होते रिक्त।
आत्मविश्वास ज्ञानचारित्र युक्त, अनंतज्ञान दर्शन सुखवीर्य युक्त।।4।।

मेरा स्वभाव है अहिंसामय, अन्य से कुछ न लेना अचौर्यमय।
मम स्वरूप में रमण ब्रह्मचर्यमय स्वयं में पूर्ण हूँ मैं अपरिग्रहमय।।5।।

मोहक्षोभ रहित हूँ मैं क्षमामय, तथाहि मार्दव आर्जव शौचमय।
संयमतपत्याग समतामय, प्रभुत्व विभुत्व व ऐश्वर्यमय।।6।।

अतः मेरा कर्त्ता धर्त्ता विधाता, भोक्ता से ले उपास्य उपासककर्ता।
ध्यान ध्येय व ज्ञाता व ज्ञेय, साध्य साधक पूज्य पूजनकर्ता।।7।।

मेरे तत्त्व पदार्थ मैं ही हूँ, प्राप्य व प्राप्तकर्ता मैं ही हूँ।
स्वर्ग से मोक्ष तक मैं ही हूँ, मेरे विश्व रूप में मैं ही हूँ।।8।।

ख्याति पूजालाभ प्रसिद्धि मैं हूँ, ग्रहणत्याग उपादेय हेय भी हूँ।
प्रमाणनय निक्षेपमय भी हूँ अनेकांतमय वस्तु स्वरूप हूँ।।9।।

यह है मम निजशुद्ध स्वरूप, संकल्प विकल्प संक्लेश मुक्त।
अपेक्षा उपेक्षा प्रतीक्षा मुक्त, परावलंबन परतंत्रता मुक्त।।10।।

ऐसे निजस्वरूप श्रद्धा प्रज्ञा से स्वयं में स्थिरता आती साम्यभाव से।
पर प्रतिरागद्वेष मोहादि न होते, ईर्ष्या घृणा वैर विरोध न होते।।11।।

स्वतंत्र मौलिक भाव-व्यवहार होते, परनिंदा अपमान चिंता न होते।
आत्म-संतुष्टि तृप्ति शांति मिलती, आत्म विशुद्धि आत्म उन्नति होती।।12।।

इससे संवर से ले मोक्ष मिलते, अक्षय अनंत वैभव प्राप्त होते।
अजर अमर अमृत पद मिलता, अतएव 'कनक' शुद्धात्मा ध्यान करता।।13।।

ग.पु.कॉ. दिनांक :- 08.06.2019, प्रातः 07:13

सन्दर्भ

केवलीभगवान् के जब मोहनीय कर्म के साथ ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय इन चार दुर्द्धर्ष घातिया कर्मों का नाश हो जाता है तब अवशेष चार अघातिकर्म व्यक्तिरूप से रहते हैं।

कर्मो रहित और केवलज्ञानरूपी सूर्य से पदार्थों को प्रकाश करने वाले ऐसे वे सर्वज्ञ जब अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाण आयु बाकी रह जाती है तब तीसरे सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाति शुक्लध्यान के योग्य होते हैं।

जो जिनदेव उत्कृष्ट छः महीने की आयु अवशेष रहते हुए केवली हुए हैं वे अवश्य ही समुद्घात करते हैं और शेष अर्थात् जो छः महीने से अधिक आयु रहते हुए केवली हुए हैं वे समुद्घात में विकल्प रूप हैं।

भावार्थ-उनका कोई नियम नहीं है, समुद्घात करे और न भी करे।जब अरहंत परमेष्ठी के आयु कर्म अन्तर्मुहूर्त्त का अवशेष रह जाता है और अन्य तीनों कर्मों की स्थिति अधिक होती है तब समुद्घात की विधि साक्षात् प्रथम ही आरम्भ करते हैं।

अनन्त वीर्य के द्वारा जिनका प्रभाव फैला हुआ है ऐसे वे केवली भगवान् क्रम से दण्ड, कपाट, प्रतर, इन तीन क्रियाओं को तीन समय में करके चौथे समय में इस समस्त लोक को पूरण करते हैं। **भावार्थ**-आत्मा के प्रदेश पहले समय में दण्डरूप लम्बे, द्वितीय समय में कपाटरूप चौडे, तीसरे समय में प्रतररूप मोटे होते हैं और चौथे समय में इसके प्रदेश समस्त लोक में भर जाते हैं, इसी को लोकपूरण कहते हैं। ये सब क्रिया चार समय में होती है।

तदा स सर्वगः सार्वः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः।
विश्वव्यापी विभुर्भर्त्ता विश्वमूर्त्तिमहेश्वरः।। 45।। ज्ञानार्णव

केवली भगवान् जिस समय लोकपूर्ण होते हैं, उस समय उनके सर्वगत, सार्व,सर्वज्ञ,सर्वतोमुख, विश्वव्यापी,विभु,भर्त्ता, विश्वमूर्ति और महेश्वर ये नाम यथार्थ (सार्थक) होते हैं।

केवली भगवान् लोकपूरण प्रदेशों को पाकर, ध्यान के बल से वेदनीय, नाम और गोत्र इन तीनों अघाति कर्मों की स्थिति घटाकर, अर्थात् भोग में लाकर, आयुकर्म के समान स्थित करते हैं। **भावार्थ**-यदि वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मों की स्थिति आयु कर्म से अधिक हो तो लोकपूरण अवस्था में उनकी स्थिति आयु कर्म की स्थिति के समान कर लेते हैं।

सिद्धात्मा देवाधिदेव का जो अत्यन्त, बाधारहित, अतीन्द्रिय और अपने स्वभाव से ही उत्पन्न सुख है, उसका वर्णन कौन कर सकता है ?

आचार्य कहते हैं कि जिनके समस्त प्रयोजन सम्पन्न हो चुके हैं और सुख के घातक ऐसे समस्त द्वन्द्वों से जो रहित हैं ऐसे सिद्ध भगवान् के सुख को यद्यपि कोई नहीं कर सकता; मैं नाम मात्र से किञ्चित कहता हूँ।

ये देवमनुजाः सर्वे सौख्यमक्षार्थसम्भवम्।
निर्विशान्ति निराबाधं सर्वक्षप्रीणनक्षमम्।। 66।।
सर्वेणातीतकालेन यच्च भुक्तं महार्द्धिकम्।
भाविनो यच्च भोक्ष्यन्ति स्वादिष्टं स्वान्तरञ्जकम्।। 67।।
अनन्तगुणितं तस्मादत्यक्षं स्वस्वभावजम्।
एकस्मिन् समये भुङ्क्ते तत्सुखं परमेश्वरः।। 68।।

जो समस्त देव और मनुष्य इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न और इन्द्रियों के तृप्त करने में समर्थ ऐसे निराबाध सुख को वर्तमान काल में भोगते हैं तथा सबने अतीत काल में जो सुख भोगे हैं और जो सुख महाऋद्धियों से उत्पन्न हुए हैं तथा स्वादिष्ट और मन को प्रसन्न करने वाले जो सुख आगामी काल में भोगे जायेंगे उन समस्त सुखों से अनन्त गुणे अतीन्द्रिय और अपने स्वभाव से उत्पन्न होने वाले सुख को श्रीसिद्ध भगवान् परमेश्वर एक ही समय में भोगते हैं।

त्रिकालविषयाशेषद्रव्यपर्यायसंकुलम्

जगत्स्फुरति बोधार्के युगपद्योगिनां पतेः।। 69।।

योगीश्वरों के पति श्री सिद्ध भगवान् के ज्ञानरूपी सूर्य में भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनों काल सम्बन्धी समस्त द्रव्य पर्यायों से व्याप्त जो यह जगत् है सो एक ही समय में स्पष्ट प्रत्यक्ष प्रतिभासित होता है। **भावार्थ**-इन्द्रियज्ञान तुच्छ है, उससे उत्पन्न हुआ सुख कितना हो सकता है? सिद्ध भगवान् के एक ही समय में समस्त पदार्थों का ज्ञान होता है, इसलिये उनके सुख की क्या महिमा ? सुख का कारण ज्ञान है। जहाँ पूर्ण ज्ञान है, वहाँ पूर्ण सुख भी है।

सर्वतोऽनन्तमाकाशं लोकेतरविकल्पितम्।

तस्मिन्नपि घनीभूय यस्य ज्ञानं व्यवस्थितम्।। 70।।

यह आकाश सर्वतः अनन्त हैं और उसके लोक और अलोक ऐसे दो भेद हैं, उस समस्त आकाश में सिद्ध परमेष्ठी का ज्ञान घनीभूत होकर भरा हुआ है।

निद्रातन्द्राभयभ्रान्तिरागद्वेषार्त्तिसंशयैः।

शोकमोहजराजन्ममरणाद्यैश्च विच्युतः।। 71

श्री सिद्ध भगवान् निद्रा, तन्द्रा, भय, भ्रांति, राग, द्वेष, पीड़ा और संशय से रहित हैं तथा शोक, मोह, जरा, जन्म और मरण इत्यादिक से रहित है।

क्षत्तृट्श्रममदोन्मादमूर्च्छामात्सर्यवर्जितः।

वृद्धिह्रासव्यतीतात्मा कल्पनातीतवैभवः।।72।।

और क्षुधा, तृषा, खेद, मद, उन्माद, मूर्च्छा और मत्सर भावों से रहित हैं और न इनके आत्मा में वृद्धि ह्रास (घटना बढ़ना) है और इनका विभव कल्पनातीत है।

निष्कलः करणातीतो निर्विकल्पो निरञ्जनः।

अनन्तवीर्यतापन्नो नित्यानन्दभिनन्दितः।।73।।

सिद्ध भगवान् शरीर रहित हैं, इन्द्रित रहित हैं, मन के विकल्पों से रहित हैं, निरंजन है अर्थात् उनके नये कर्मों का बंध नहीं है, अनन्तवीर्यता को प्राप्त हुए हैं अर्थात् अपने स्वभाव से कभी च्युत नहीं होते और नित्य आनन्द से आनन्दरूप हैं अर्थात् उनके सुख कभी विच्छेद नहीं होता।

परमेष्ठी परंज्योतिः परिपूर्णः सनातनः।

संसारसागरोत्तीर्णः कृतकृत्योऽचलस्थितिः।।74।।

तथा परमेष्ठी (परम पद में विराजमान), परंज्योति (ज्ञानप्रकाशरूप), परिपूर्ण, सनातन (नित्य), संसार रूपी समुद्र से उत्तीर्ण अर्थात् संसार संबन्धी चेष्टाओं से रहित, कृतकृत्य (जिनको करना कुछ शेष नहीं है), अचलस्थिति (प्रदेशों की क्रियाओं से रहित) ऐसे सिद्ध भगवान् हैं।

पुनः सिद्ध भगवान् संतृप्त है, तृष्णा रहित हैं, तीन लोक के शिखर पर सदा विराजमान हैं अर्थात् गमन रहित हैं। इस संसार में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है, जिसकी उपमा परमेष्ठी के सुख को दी जाय अर्थात् उनका सुख निरुपमेय है।

चरस्थिरार्थसम्पूर्णे मृग्यणं जगत्त्रये।
उपमानोपमेयत्वं मन्ये स्वस्यैव स स्वयम्।।76।।

आचार्य कहते हैं कि यदि चर और स्थिर पदार्थों से भरे हुए इन तीनों जगतों में उपमेय और उपमान ढूँढा जाय तो मैं ऐसा मानता हूँ कि वे स्वयं ही उपमान-उपमेयरूप है। **भावार्थ**-सिद्ध भगवान् का उपमान सिद्ध ही है और किसी कि साथ उनको उपमा नहीं दी जा सकती।

यतोऽनन्तगुणानां स्यादनन्तांशोऽपि कस्यचित्।
ततो न शक्यतं कर्तुं तेन साम्यं जगत्त्रये।।77।।

क्योंकि तीनों जगत् में उन सिद्ध परमेष्ठी के अनन्त गुणों का अनन्तवाँ अंश भी किसी पदार्थ में नहीं है, इसलिये उनकी समानता किसी के साथ नहीं कर सकते। **भावार्थ**- इसीलिये उनका उपमान उपमेय भाव अपना अपने ही साथ हैं।

शक्यते न यथा ज्ञातुं पर्यन्तं व्योमकालयोः।
तथा स्वभावजातानां गुणानां परमेष्ठिनः।।78।।

जैसे कोई आकाश और काल का अंत नहीं जान सकता, उसी तरह स्वभाव से उत्पन्न हुए परमेष्ठी के गुणों का अन्त भी कोई नहीं जान सकता।

आकाश, मेघ, सूर्य, सर्पों का इन्द्र, चन्द्रमा, मेरु, पृथ्वी, अग्नि, वायु, समुद्र और कल्पवृक्षों के गुणों का समस्त समूह भी चिन्तवन किया जाय तो भी उनकी उपमा परम गुरु श्रीसिद्ध परमेष्ठी के गुणों के साथ नहीं हो सकती।

भावार्थ-संसार के उत्तमोत्तम पदार्थों के गुण विचार करने से भी ऐसा कोई पदार्थ नहीं दीख पड़ता कि जिसके गुणों की उपमा सिद्ध परमेष्ठी के गुणों के साथ दी जाय।

नासत्पूर्वाश्च पूर्वा नो निर्विशेषविकारजाः।
स्वाभाविकविशेषा ह्यभूतपूर्वाश्च तद्गुणाः।। 80।।

अर्थ-सिद्ध परमेष्ठी के गुण पूर्व में नहीं थे ऐसे नहीं है अर्थात् '-पूर्व में भी शक्तिरूप से विद्यमान ही थे, क्योंकि असत्का प्रादुर्भाव नहीं होता यह नियम है। यदि असत् का भी प्रादुर्भाव माना जाय तो शशशृङ्गका भी प्रादुर्भाव होना चाहिये, किन्तु होता नहीं है। यही इस नियम में प्रमाण है।'' और पूर्व में व्यक्त नहीं थे तथा विशेष विकार से उत्पन्न नहीं, किन्तु स्वाभाविक है। इस प्रकार पूर्वार्द्ध द्वारा निषेधमुख कथन करके, इसी विषय को पुनः उत्तरार्द्ध द्वारा विधिमुख वाक्य से कहते हैं कि सिद्ध परमेष्ठी के गुण स्वाभाविक विशेष अर्थात् पूर्व में भी शक्ति की अपेक्षा स्वभाव में ही विद्यमान और अभूतपूर्व अर्थात् पूर्व में व्यक्त नहीं हुए ऐसे हैं।

भावार्थ-आत्मा के जो स्वाभाविक गुण पूर्वावस्था में अव्यक्त रहते हैं, वे ही सिद्धावस्था में व्यक्त हो जाते हैं। इसी से, शक्ति की अपेक्षा पूर्व भी विद्यमान होने के कारण उन गुणों को 'पूर्व में नहीं थे' ऐसा नहीं कह सकते; और पूर्व में व्यक्त नहीं थे इससे 'पूर्व में थे' ऐसा भी नहीं कह सकते; और स्वाभाविक होने के कारण उनको विकारज भी नहीं कह सकते किन्तु वे गुण शक्ति की अपेक्षा स्वाभाविक और व्यक्ति की अपेक्षा अभूतपूर्व ही कहे जाते हैं।

वाक्पथातीतमहात्म्यमनन्तज्ञानवैभवम्।
सिद्धात्मनां गुणग्रामं सर्वज्ञज्ञानगोचरम्।। 81।।

जिसका माहात्म्य वचनों से कहने योग्य नहीं है और जिसके अनन्त ज्ञान का विभव है, ऐसे सिद्ध परमेष्ठी के गुणों का समूह सर्वज्ञ के ज्ञान के गोचर है।

स स्वयं यदि सर्वज्ञः सम्यग्ब्रूते समाहितः।
तथाप्येति न पर्यन्तं गुणानां परमेष्ठिनः।। 82।।

सर्वज्ञदेव परमेष्ठी के गुणों को जानते हैं, परन्तु यदि वे उन गुणों को समाधान सहित अच्छी तरह कहें तो वे भी उनका पार नहीं पा सकेंगे। **भावार्थ**- वचन की संख्या अल्प है और गुण अनन्त हैं इसलिये वे वचनों से नहीं कहे जा सकते।

त्रैलोक्यतिलकीभूतं निःशेषविषयच्युतम्।
निर्द्वन्द्वं नित्यमत्यक्षं स्वादिष्टं स्वस्वभावजम्।।83।।
निरौपम्यमविच्छिन्नं स देवः परमेश्वरः।

तत्रैवास्ते स्थिरीभूतः पिबन् ज्ञानसुखामृतम्।। 84।।

श्रीसिद्ध परमेष्ठी परमेश्वर देव समस्त त्रैलोक्य का तिलकस्वरूप, समस्त विषयों से रहित, निर्द्वन्द्व अर्थात् प्रतिपक्षी रहित, अविनाशी, अतीन्द्रिय, स्वादस्वरूप, अपने स्वभाव से ही उत्पन्न, उपमा रहित और विच्छेदरहित ज्ञान और सुखरूपी अमृत को पीते हुए स्थिरीभूत तीन लोक के शिखर पर विराजमान रहते हैं।

देवः सोऽनन्तवीर्यो दृगवगमसुखानर्घ्यरत्नावकीर्णः।
श्रीमान्स्त्रैलोक्यमूर्ध्नि प्रतिवसति भवध्वान्तविध्वंसभानुः।।
स्वात्मोत्थानन्तनित्यप्रवरशिवसुधाम्भोधिमग्नः स देवः।
सिद्धात्मा निर्विकल्पोऽप्रतिहतमहिमा शश्वदानन्दधामा।।85।।

जिनके अनन्त वीर्य है अर्थात् प्राप्त स्वभाव से कभी च्युत नहीं होते, जो दर्शन ज्ञान और सुखरूप अमूल्य रत्नों सहित है, जो संसाररूप अन्धकार को दूर कर सूर्य के समान विराजमान है, जो अपने आत्मा से ही उत्पन्न ऐसे अनन्त नित्य उत्कृष्ट शिवसुखरूपी अमृत के समुद्र में सदा मग्न है, विकल्प रहित है, जिसकी महिमा अप्रतिहत (जो किसी आहत न होवे) और जो निरन्तर आनन्द के निवास स्थान हैं ऐसे श्रीसिद्ध परमेष्ठी देव शोभायमान जो तीनों लोकों का मस्तक (शिखर) हैं उसमें सदा निवास करते हैं।

चिदानन्दैकसद्भावं परमात्मानमव्ययम्।
प्रणमामि सदा शान्तं शान्तये सर्वकर्मणाम्।।1।।-श्री पद्म.पं.

चैतन्यस्वरूप आनन्दस्वरूप अविनाशी और शान्त ऐसे परमात्मा को सर्व कार्मों की शान्ति के लिये मैं नमस्कार करता हूं।

भावार्थ-जो परमात्मा चैतन्यस्वरूप है तथा आनन्दस्वरूप है और नित्य, शाश्वत तथा समस्त क्रोधादिक कर्मों से रहित ऐसा परमात्मा मुझे इस एकत्वनामक अधिकार के वर्णन करने में शांति प्रदान करें।।1।।

खादिपञ्चकनिर्मुक्तं कर्माष्टकविवर्जितम्।
चिदात्मकं परंज्योतिर्वन्दे देवेन्द्रपूजितम्।। 2।।

जो चैतन्यस्वरूपतेज पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश काल से सर्वथा भिन्न है तथा ज्ञानावरणादिक कर्मों से रहित है और जिसका बड़े-2 देव तथा इन्द्र आदिक सदा पूजन करते हैं ऐसा वह चैतन्यस्वरूप 'उत्कृष्ट तेज' मेरी रक्षा करे अर्थात् उस

चैतन्यस्वरूपतेज को मस्तकनवाकर मैं नमस्कार करता हूँ।

यदव्यक्तमबोधानां व्यक्तं सद्बोधचक्षुषाम्।
सारं यत्सर्ववस्तूनां नमस्तस्मै चिदात्मने।।3।।

जिस चैतन्य स्वरूप आत्मा को ज्ञान रहित अज्ञानी पुरुष अनुभव नहीं कर सकते हैं तथा अखंड ज्ञान के धारक ज्ञानी जिसका सदा अनुभव करते हैं और समस्त पदार्थों में जो सारभूत है ऐसे उस चैतन्य स्वरूप आत्मा के लिये मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

चित्तत्वं तत्प्रतिप्राणिदेह एव व्यवस्थितम्।
तमश्छन्ना न जानन्ति भ्रमन्ति च बहिर्बहिः।।4।।

यद्यपि प्रत्येक प्राणी की देह में यह निर्मल चैतन्यरूपीतत्त्व विराजमान है तो भी जिन मनुष्यों को आत्मा अज्ञानान्धकार से ढकी हुई है वे इसको कुछ भी नहीं जानते हैं तथा चैतन्य से भिन्न बाह्य पदार्थों में ही चैतन्य के भ्रम से भ्रान्त होते हैं।

भ्रमतोऽपि सदा शास्त्रजाले महति केचन।
न विदन्ति परं तत्त्वं दारुणीव हुताशनम्।।5।।

कई एक मनुष्य अनेक शास्त्रों का स्वाध्याय भी करते हैं तो भी तीव्र मोहनीय कर्म के उदय से भ्रान्त होकर लकड़ी में जिस प्रकार अग्नि नहीं मालूम होती उसी प्रकार चैतन्यस्वरूप आत्मा को अंशमात्र भी नहीं जानते।

केचित् केन्येपि कारुण्यात्कथ्यमानमपि स्फुटम्।
न मन्यन्ते न शृण्वन्ति महामोहमलीमसाः।।6।।

प्रबल मोहनीय कर्म से अज्ञानी हुवे अनेक मनुष्य उत्तम पुरुषोंकर बताये हुवे भी आत्म तत्त्व को न तो मानते ही हैं तथा न सुनते ही हैं।

धुरि धर्मात्मकं तत्त्वं दुःश्रुतेर्मन्दबुद्धयः।
जात्यन्धहस्तिरूपेण ज्ञात्वा नश्यन्ति केचन।। 7।।

यद्यपि वस्तु का स्वरूप अनेकान्तस्वरूप है तो भी अनेक जड़ बुद्धि मनुष्य, जन्मांध जिस प्रकार हाथी के एक एक भाग को ही समझ लेते हैं तथा नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार एकान्त स्वरूप मानक रही नष्ट होते हैं।

यद्यपि वस्तु का स्वरूप अनेकान्त है तो भी बहुत से दुर्बुद्धि एकधर्म अथवा दो ही धर्म को वस्तु मानकर समग्र वस्तु का स्वरूप समझकर अपने को सर्वज्ञ बनने

का दावा रखते हैं किन्तु उनका उस प्रकार का अभिप्राय खोटा ही अभिप्राय समझा जाता है क्योंकि वस्तु अनेक धर्मस्वरूप है हाँ यदि वे वस्तु में एक ही धर्म अथवा दो ही धर्म हैं ऐसा एकान्त न पकड़े तो किसी रीति से उनका उस प्रकार का कहना निर्वाध समझ जा सकता है क्योंकि वे धर्म वस्तु से जुदे नहीं हैं उन धर्मस्वरूप ही वस्तु है इसलिये उन धर्मो के कहने से वस्तु का स्वरूप कथंचित् सच भी माना जा सकता है इसलिये यह बात भलीभांति सिद्ध हो चुकी है कि वस्तु एकान्तात्मक नहीं है किन्तु अनेकान्तात्मक ही है किन्तु जो एकान्तात्मक मानते हैं, वे दुर्बुद्धी हैं।

केचित्किञ्चित्परिज्ञाय कुतश्चिद् गर्विताशयाः।
जगन्मन्दं प्रपश्यन्तो नाश्रयान्ति मनीषिणः।। 8।।

कई एक मनुष्य कहीं से कुछ थोड़ी सी बात जानकर अपने को बड़ा विद्वान मान लेते हैं तथा अपने सामने जगत् भर के विद्वानों को मूर्ख समझते हैं अतएव अहंकार से वे विद्वानों की संगति भी नहीं कर करना चाहते।

जन्तुमद्धरते धर्मः पतन्तं जनमशङ्कटे।
अन्यथा स कृतो भ्रान्तया लोकेर्ग्राह्यः परीक्षितः।।9।।

संसार संकट में फँसे हुवे प्राणियों का उद्धार करने वाला धर्म है किन्तु स्वार्थी दुष्टों ने उसको विपरीत ही कर दिया है अर्थात् उनका माना हुवा धर्म का स्वरूप संसार में केवल डुबाने वाला ही है इसलिये भव्य जीवों को चाहिये कि वे भलीभांति परीक्षा कर धर्म को ग्रहण करें।

सर्वविद्वीतरागोक्तो धर्मः सूनृततां व्रजेत्।
प्रामाण्यतो यतःपुन्सो वाचः प्रामाण्यमिष्यते।। 10।।

समस्त लोकालोक के पदार्थों के जानने वाले तथा वीतरागी मनुष्य का कहा हुवा ही धर्म प्रामाणिक होता है क्योंकि मनुष्य के प्रामाण्य से ही वचनों की प्रमाणता समझी जाती है इसलिये जब वीतराग तथा सर्वज्ञ प्रामाणिक पुरुष हैं तब उनका कहा हुवा धर्म भी प्रामाणिक ही है ऐसा समझना चाहिये।

बहिर्विषयसंबन्धः सर्वः सर्वस्य सर्वदा।
अतस्तद्भिन्नचैतन्यबोधयोगौ तु दुर्लभौ।।11

समस्त बाह्य विषयों को संबंध तो सब जीवों के सदाहकाल ही रहता है किन्तु बाह्य पदार्थों के संबंध से जुदा जो ज्ञानानन्द स्वरूप चैतन्य का ज्ञान तथा संबंध है वह

अत्यंत दुर्लभ है।

लब्धिपञ्चकसामिग्रीविशेषात्पात्रतां गतः।
भव्यःसम्यग्दृगादीनां यः सः मुक्तिपथे स्थितः।।12।।

सत्य उपदेश का नाम तो देशना है तथा पंचेन्द्रियपना सैनीपना गर्भजपना मनुष्यपना ऊँचा कुल यह प्रायोग्य नामक लब्धि है तथा सर्वघातीप्रकृतियों का तो उदयाभावीक्षय तथा देशघाती प्रकृतियों का उपशम यह क्षयोपशमलब्धि है तथा परिणामों की विशुद्धता का नाम विशुद्धिलब्धि है और अधःकरण अपूर्वकरण अनिवृतिकरण यह करणलब्धि है इन पांच प्रकार की लब्धियों के विशेष से जो रत्नत्रयधारी है वही भव्य पुरुष शीघ्र मुक्ति को जाता है।

सम्यग्दृग्बोधचारित्रं त्रितयं मुक्तिकारणम्।
मुक्तावेव सुखं तेन तत्र यत्नो विधीयताम्।। 13।।

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र इन तीनों का समुदाय ही मुक्ति का कारण है और वास्तविक सुख की प्राप्ति मोक्ष में ही है इसलिये भव्य जीवों को उसी के लिये प्रयत्न करना चाहिये।

दर्शनं निश्चयः पुंसि बोधस्तद्बोध इष्यते।
स्थितिरत्रैव चारित्रमितियोगः शिवाश्रयः।।14।।

आत्मा निश्चय से सम्यग्दर्शन है तथा आत्म का ज्ञान सम्यग्ज्ञान है और आत्मा में निश्चल रीति से रहना सम्यक्चारित्र है तथा इन तीनों की जो एकता वही मोक्ष का कारण है।

एकमेव हि चैतन्यं शुद्धनिश्चयतोऽथवा।
कोऽवकाशो विकल्पानां तत्राखण्डैकवस्तुनि।।15।।

अथवा शुद्धनिश्चयनय से एक चैतन्य ही मोक्ष का मार्ग है क्योंकि आत्मा एक अखंड पदार्थ है इसलिये उसमें सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र आदि भेदों का अवकाश नहीं है अर्थात् अखंड तथा एक आत्मा के सम्यग्दर्शन आदि टुकड़े नहीं हो सकते।

प्रमाणनयनिक्षेपा अर्वाचीने पदे स्थिताः।
केवले च पुनस्तस्मिंस्तदेकः प्रतिभासते।।16।।

जब तक आत्मा शुद्धात्मा नहीं हुआ है तभी तक इसमें प्रमाण तथा नय और

निक्षेप भिन्न-2 हैं ऐसे मालूम पड़ते हैं किन्तु जिस समय यह आत्मा शुद्धात्मा हो जाता है उस समय इसमें केवल चैतन्यस्वरूप आत्मा ही प्रतिभासता है।

निश्चयैकदृशा नित्यं तदेवेकं चिदात्मकम्।

प्रपश्यामि गतभ्रान्तिर्व्यवहारदृशा परम्।।17।।

शुद्ध निश्चयनय से यह आत्मा एक है नित्य है तथा चैतन्य स्वरूप है ऐसा मैं अनुभव करने वाला अनुभव करता हूँ किन्तु व्यवहारनय से प्रमाणस्वरूप तथा नय और निक्षेपस्वरूप भी मैं इस आत्मा को भलीभांति देखता हूँ।

शुद्धनिश्चयनय की दृष्टि में यह आत्मा एक, नित्य, तथा चैतन्यस्वरूप है किन्तु व्यवहार नय की अपेक्षा से इसमें प्रमाण तथा नय और निक्षेप आदि भेद दीखते हैं।

अजमेकं परं शान्तं सर्वोपाधिविवर्जितम्।

आत्मानमात्मना ज्ञात्वा तिष्ठेदात्मनि यःस्थिरः।।18।।

स एवामृतमार्गस्य सएवामृतम श्नुते।

सएवार्हन् जगन्नाथः सएवप्रभुरीश्वरः।।19।।

जो पुरुष जन्मरहित और एक तथा शान्तिस्वरूप और समस्त कर्मों कर रहित अपने को अपने से ही जानकर अपने में ही निश्चल रीति से ठहरता है वही पुरुष मोक्ष को जानने वाला है तथा वही मनुष्य मोक्ष सुख को प्राप्त होता है और वही अर्हन्त तथा जगन्नाथ और प्रभु तथा ईश्वर कहलाता है इसलिये भव्य जीवों को अपनी आत्मा में अवश्य निश्चलरीति से ठहरना चाहिये।

केवलज्ञानदृक्सौख्यस्वभावं तत्परं महः।

तत्र ज्ञातेन किं ज्ञातं दृष्टे दृष्टं श्रुते श्रुतम्।।20।।

जो उत्कृष्ट आत्मस्वरूप तेज है वह केवलदर्शन, तथा केवलज्ञान और अनंत सुख स्वरूप ही है इसलिये जिसने इस तेज को जान लिया उसने सब कुछ जान लिया और जिसने इस तेज को देख लिया उसने सब कुछ देख लिया तथा जिसने इस तेज को सुन लिया उसने सब कुछ सुन लिया ऐसा समझना चाहिये।

इति ज्ञेयं तदेवैकं श्रवणीयं तदेव हि।

दृष्टव्यञ्च तदैवैकं नान्यन्निश्चतो बुधैः।।21

इसलिये भव्य जीवों को निश्चय से एक चैतन्यस्वरूप ही जानने योग्य है तथा वही एक सुनने योग्य है और वही देखने योग्य है किन्तु उससे भिन्न कोई भी वस्तु न

तो जानने योग्य है तथा न सुनने योग्य है और न देखने ही योग्य है ऐसा समझना चाहिये।

गुरूपदेशतोऽभ्यासाद्वैराग्यादुपलभ्य यत्।

कृतकृत्यो भवेद्योगी तदेवैकं नचापरम्।।22।।

गुरु के उपदेश से तथा शास्त्र के अभ्यास से और वैराग्य से जिसको पाकर योगीश्वर कृतकृत्य हो जाते हैं वह यही चैतन्यस्वरूपतेज है और कोई नहीं है।।

तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता।

निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनम्।।23।।

जिस मनुष्य ने प्रसन्न चित्त से इस चैतन्यस्वरूप आत्मा की बात भी सुन ली है वह भव्यपुरुष होने वाली मुक्ति का निश्चय से पात्र होता है अर्थात् वह नियम से मोक्ष को जाता है इसलिये मोक्षाभिलाषियों को अवश्य ही इस चैतन्यस्वरूप आत्मा का अनुभव करना चाहिये।

जानीते यः परं ब्रह्म कर्मणः पृथगेकताम्।

गतं तद्गतबोधात्मा तत्स्वरूपं स गच्छति।।24।।

जो मनुष्य शुद्धात्मा में लीन होकर कर्मों से भिन्न तथा एक ऐसे परब्रह्म परमात्मा को जानता है वह पुरुष परब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है इसलिये भव्य जीवों को परमात्मा का अवश्य ध्यान करना चाहिये।

केनापि परेण स्यात्संबन्धो बंधकारणम्।

परैकत्वपदे शान्ते मुक्तये स्थितिरात्मनः।। 25।।

अन्य पदार्थों के साथ जो आत्मा का संबंध होना है उससे केवल बंध ही होता है तथा उसी आत्मा का जो उत्कृष्ट शान्त और एकतारूप स्थान में ठहरना है उससे मोक्ष ही होता है इसलिये मोक्षाभिलाषियों को पर पदार्थों से ममत्व छोड़कर स्वस्वरूप में ही लीन होना चाहिए।

विकलपोर्मिभरत्यक्तःशान्तः केवल्यमाश्रितः।

कर्माभावे भवेदात्मा वाताभावे समुद्रवत्।।26।।

पवन के थभ जाने पर जिस प्रकार समुद्र लहरियों से रहित तथा क्षोभ रहित शांत हो जाता है उसी प्रकार जब इस आत्मा से सर्वथा कर्मों का संबंध छूट जाता है उस समय यह आत्मा भी समस्त प्रकार के विकल्पोंकर रहित तथा केवलज्ञानकर

सहित-शान्त हो जाता है।

संयोगेन यदा यातं मत्तस्तत्सकलं परम्।

तत्परित्यागयोगेने मुक्तोऽहमिति में मतिः।। 27।।

सम्यग्दृष्टि इस प्रकार का चिंतवन करता रहता है कि जो वस्तु संयोग से उत्पन्न हुई हैं वे सब मुझसे जुदी हैं तथा मुझे इस बात का ज्ञान है कि उन संयोग से पैदा हुई समस्त वस्तुओं के त्याग से मैं मुक्त हूँ मेरी आत्मा में किसी प्रकार के कर्म का संबंध नहीं है।

किं मे करिष्यतः क्रूरौ शुभाशुभनिशाचरौ।

रागद्वेषपरित्यागमोहमन्त्रेण कीलितौ।।28।।

रागद्वेष रूपी प्रबलमंत्र से कीलित हुवे तथा क्रूर ऐसे शुभ तथा अशुभ कर्मरूपी राक्षस मेरा क्या करेंगे ? कुछ भी नहीं कर सकते।

रागद्वेष के होने से ही शुभ तथा अशुभ कर्मों का बंध होता है यदि राग द्वेष का ही संबंध मेरे आत्मा के साथ न रहेगा तो मेरा शुभ तथा अशुभकर्म कुछ भी नहीं कर सकते ऐसा सम्यग्दृष्टि विचार करता रहता है।

संबन्धेऽपि सति त्याज्यौ रागद्वेषौ महात्मभिः।

विना तेनापि ये कुर्युस्ते कुर्युः किं न वातुलाः।।29।।

सज्जनों को चाहिये कि राग द्वेष के संबंध होने पर भी वे राग द्वेष का त्याग कर देवें किन्तु जो लोग संबंध के न होने पर भी राग द्वेष को करते हैं वे मनुष्य समस्त अनिष्टों को पैदा करते हैं।

रागद्वेष के होते संते अनेक प्रकार के अनिष्ट होते हैं इसलिये सज्जनों को कदापि रागी तथा द्वेषी नहीं बनना चाहिये।

मनोवाक्कायचेष्टाभिस्तद्विधं कर्म जृम्भते।

उपास्यते तदेवैकं तेभ्योभिन्नं मुमुक्षुभिः।।30।।

मन वचन कार्य की चेष्टा से चेष्टानुसार कर्म वृद्धि को प्राप्त होता है इसलिये मोक्षाभिलाषी भव्य पुरुष, मन,वचन, काय से भिन्न एक चैतन्यमात्र आत्मा की ही उपासना करते हैं।।

द्वैततोद्वैतमद्वैतादद्वैतं खलु जायते।

लोहाल्लोहमयं पात्रं हेम्नोहेममयं यथा।।31

जिस प्रकार लोह से लोहमय ही पात्र की उत्पत्ति होती है तथा सुवर्ण से सुवर्णमय ही पात्र की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार द्वैत से निश्चय से द्वैत ही होता है तथा अद्वैत से अद्वैत ही होता है।

कर्म तथा आत्मा के मिलाप का नामद्वैत है अतः जब तक कर्म तथा आत्मा का मिलाप रहेगा तब तो संसारी ही रहेगा किन्तु जिस समय कर्म तथा आत्मा का मिलाप छूट जावेगा तब मुक्त हो जावेगा।

निश्चयेन तदेकत्वमद्वैतममृतं परम्।
द्वितीयेन कृतं द्वैतं संसृतिर्व्यवहारतः।।32।।

निश्चयनय से तो एकतारूप जो अद्वैत है वही मोक्ष है और व्यवहार नय से कर्मोंकर किया हुआ जो द्वैत है वह संसार है।

जब तक कर्मों का संबंध रहता है तब तक तो संसार है किन्तु जिस समय कर्मों का संबंध छूट जाता है उस समय मोक्ष है।

बंधमोक्षौ रतिद्वेषौ कर्मात्मनौ शुभाशुभै।
इति द्वैताश्रिता बुद्धिरसिद्धिरभिधीयते।।33।।

बंध और मोक्ष राग और द्वेष कर्म और आत्मा शुभ और अशुभ इसी प्रकार द्वैतकर सहित जो बुद्धि है वह असिद्धि है अर्थात् निजानन्द शुद्ध अद्वैतस्वरूप को रोकने वाली है।

उदयोदीरणासत्ता प्रबन्धःखलु कर्मणः।
बोधात्मधाम सर्वेभ्यस्तदेवैकं परं परम्।।34।।

उदय उदीरणा तथा सत्ता इत्यादि समस्त कर्मों की ही रचना है किन्तु आत्मा इस समस्त रचना से भिन्न है उत्कृष्ट है तथा केवल ज्ञान का धारी है।

क्रोधादिकर्मयोगेऽपि निर्विकारं परं महः।
विकारकारिभिर्भेद्यैर्न विकारि नभोभवेत्।। 35।।

काले पीले नीले घोड़ा के आकार हाथी के आकार इत्यादि अनेक विकार सहित बादलों से जिस प्रकार अमूर्तिक आकाश विकृत नहीं होता उसी प्रकार यद्यपि आत्मा के साथ क्रोध आदि कर्मों का संबंध है तो भी आत्मा विकार रहित ही है।

नामापिहि परं तस्मान्निश्चयात्तदनामकम्।
जन्ममृत्यादिचाशेषं वपुर्धर्मं विदुर्बुधाः।।36।।

निश्चय नय से आत्मा का कोई नाम नहीं है वह नाम रहित ही है और जो ये जन्म-मरण आदि धर्म हैं वे शरीर के ही धर्म हैं ऐसा बड़े 2 विद्वान् कहते हैं।

बोधेनापि युतिस्तस्य चैतन्यस्यतु कल्पना।

सच तच्च तयौरैक्यं निश्चयेन विभाव्यते।।37।।

आत्मा ज्ञानकर सहित है यह तो चैतन्यस्वरूप आत्मा में कल्पना ही है क्योंकि शुद्ध निश्चयनय से आत्मा और ज्ञान एक ही पदार्थ हैं ऐसा अनुभव गोचर है।

क्रियाकारकसंबन्धप्रबन्धोज्झित मूर्तियत्।

एवं ज्योतिस्तदेवैकं शरण्यं मोक्षमांक्षिणाम्।।38।।

जो चैतन्यरूपी तेज क्रिया और कारक के संबंध की रचना रहित है वही एक मोक्षाभिलाषी भव्य जीवों का परमशरण है।

क्रिया कारक के संबंध का रहित तथा एक ऐसे चैतन्यस्वरूप तेज की जो भव्य जीव उपासना करते हैं उनको मोक्ष मिलता है इसलिये भव्य जीवों को ऐसे चैतन्य की ही सदा उपासना करनी चाहिये।

तदेकं परमं ज्ञानं तदेकं शुचि दर्शनम्।

चारित्रं च तदेकं स्यात् तदेकं निर्मलं तपः।।39।।

वह चैतन्यस्वरूप शुद्ध आत्मा ही तो ज्ञान है तथा वही दर्शन है और वही चारित्र है तथा वही तप है किन्तु उस शुद्धात्मा से भिन्न न कोई ज्ञान है तथा न कोई दर्शन है और न कोई चारित्र है तथा न कोई तप ही इसलिये भव्य जीवों को आत्मा का ही ज्ञान श्रद्धान आचरण आदि करना चाहिये।

नमस्यञ्च तदेवैकं तदेवैकञ्च मंगलम्।

उत्तमञ्च तदेवैकं तदेव शरणं सताम्।।40।।

वही एक चैतन्यस्वरूप आत्मा नमस्कार करने योग्य है तथा वही मंगलस्वरूप है और वही सर्व पदार्थों में श्रेष्ठ है तथा वही भव्य जीवों का शरण है।

आचारश्च तदेवैकं तदेवावश्यकक्रिया।

स्वाध्यायस्तु तदेवैकमप्रमत्तस्य योगिनः।।41

प्रमादरहित योगीश्वरों का जो चिदानन्दस्वरूप आत्मा का ध्यान है वही तो आचार है तथा वही आवश्यक क्रिया है तथा वही स्वाध्याय है किन्तु उससे भिन्न आचार आदि कोई वस्तु नहीं है।

गुणशीलानि सर्वाणि धर्मश्चात्यन्तनिर्मलः।

सम्भाव्यते परं ज्योतिस्तदेकमनुतिष्ठतः।।42।।

जो पुरुष उस चैतन्यस्वरूप आत्मा का ध्यान करने वाला है वही पुरुष चौरासी लाख उत्तरगुणों का धारी है तथा वही अठारह हजार शीलव्रतों का धारी है और उसी पुरुष के निर्मल धर्म हैं ऐसा निश्चय है।

तदेवैकं परं रत्नं सर्वशास्त्रमहोदधेः।

रमणीयेषु सर्वेषु तदेकं पुरतः स्थितम्।।43।।

समस्त शास्त्र रूपी विस्तार्ण समुद्र का उत्कृष्ट रत्न यह चैतन्यस्वरूप आत्मा ही है अर्थात् इसी रत्न की प्राप्ति के लिये शास्त्रों का अध्ययन किया जाता है तथा संसार में जितने भर मनोहर पदार्थ हैं उन सब पदार्थों में मनोहर तथा उत्कृष्ट पदार्थ यह चैतन्यस्वरूप आत्म ही है इसलिये भव्य जीवों को इस चैतन्यस्वरूप आत्मा का ही अच्छी तरह से ध्यान करना चाहिये।

तदेवैकं परं तत्त्वं तदेवैकं परं पदम्।

भव्याराध्यं तदेवैकं तदेवैकं परं महः।।44।।

वह चैतन्य स्वरूप आत्मा ही एक उत्तम तत्त्व है तथा वही एक उत्कृष्ट स्थान है और वही एक भव्य जीवों के आराधन करने योग्य है तथा वही एक अद्वितीय उत्तम तेज है।

शस्त्रं जन्मतरुच्छेदि तदेवैकं सतां मतम्।

योगिनां योगिनिष्ठानां तदेवैकं प्रयोजनम्।।45।।

और वही चैतन्य स्वरूपी आत्मा जन्म रूपी वृक्ष के नाश करने के लिये शस्त्र के समान है अर्थात् चैतन्यस्वरूप आत्मा के भलीभांति ध्यान करने से सर्व जन्म मरण आदि नष्ट हो जाते हैं तथा वही आत्मा रूपी तेज भव्य जीवों को मान्य है और वही ध्यान युक्त योगियों का प्रयोजन है अर्थात् उसी की प्राप्ति के लिये योगिगण सदा प्रयत्न करते रहते हैं।

मुमुक्षूणां तदेवैकं मुक्तेःपन्था न चापरः।

आनन्दोऽपि न चान्यत्र तद्विहाय विभाव्यते।।46।।

मोक्षाभिलाषियों के लिये चैतन्य स्वरूप आत्मा ही मोक्ष का मार्ग है आत्मा से अन्य कोई भी मोक्ष मार्ग नहीं है तथा आनंद भी आत्मा में ही है किन्तु उसके सिवाय

और कहीं पर भी आनन्द प्रतीत नहीं होता इसलिये भव्य जीवों को इसी का ध्यान करना चाहिये।

संसारघोरघर्मेण सदा तप्तस्य देहिनः।

यन्त्रधारागृहं शान्तं तदेव हिमशीतलम्।।47।।

संसार रूपी प्रबलताप से निरंतर संतप्त प्राणियों को वह चैतन्य स्वरूप आत्मा ही शांत तथा बरफ के समान ठंडा, फवारा सहित मकान है अर्थात् जिस प्रकार धूप से संतप्त मनुष्यों को फवारा सहित शीतल मकान में आराम मिलता है उसी प्रकार संसार के संताप से खिन्न जीवों को उस शांत आत्मा में लीन होने से ही आराम मिलता है इसलिये भव्य जीवों को सदा चैतन्य स्वरूप आतमा का ही अनुभव करना चाहिये।

तदेवैकं परं दुर्गमगम्यं कर्मविद्विषाम्।

तदेवैतत्तिरस्कारकारि सारं निजं बलम्।। 48।।

तथा वही चैतन्यस्वरूप आत्मा एक ऐसा किला है कि जिसमें कर्मरूप वैरी कदापि प्रवेश नहीं कर सकते और उन कर्म रूपी शत्रुओं का अपमान करने वाला वही चैतन्य स्वरूप आत्मा एक उत्कृष्ट बल है।

जो मनुष्य चैतन्यस्वरूप आत्मा का ध्यान करते हैं उनका कर्मरूप वैरी कुछ नहीं कर सकते इसलिये भव्य जीवों को शुद्धात्मा का ही ध्यान करना चाहिये।

तदेव महती विद्या स्फुरन्मन्त्रस्तदेव हि।

औषधं तदपि श्रेष्ठं जन्मव्याधिविनाशनम्।। 49।।

और वही चैतन्यस्वरूप तेज प्रबल विद्या है तथा वही स्फुरायमान मंत्र है और समस्त जन्म जरा आदि को नाश करने वाली वही एक परम औषधि है।

अक्षयस्याक्षयानन्दमहाफलभरश्रियः।

तदेवैकं परं बीजं निःश्रेयसलसत्तरोः।। 50।।

और उसी शुद्धात्मा रूपी तेज से अविनाशी तथा अक्षय सुखरूपी उत्तमफल के देने वाले मोक्षरूपी मनोहर वृक्ष की उत्पत्ति होती है।

जो पुरुष उस शुद्धात्मा का अनुभव मनन, ध्यान करते हैं उनको अक्षय सुख को देने वाली मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति होती है इसलिये भव्य जीवों को सदा उस आत्मा का ही चिंतवन करते रहना चाहिये।

तदेवैकं परं विद्धि त्रैलोक्यगृहनायकम्।

येनैकेन विना शङ्के वसदप्येतदुद्वसम।।51

आचार्य कहते हैं कि हे भव्यजीवों! तीन लोकरूपी घर का स्वामी उसी चैतन्यस्वरूप तेज को तुम समझो क्योंकि मैं ऐसा शंका करता हूँ कि इस एक चेतन्यस्वरूप तेज के बिना यह तीन लोक रूपी घर भी वन के समान है।

यद्यपि यह लोक जीवाजीवादि छै द्रव्यों से भरा हुवा है तो भी इसमें जानने वाला एक आत्मा ही है और इसके सिवाय समस्त लोक जड़ ही है इसलिए यह आत्मा ही तीन लोकों का राजा है अतः उत्तम फल के चाहने वाले भव्य जीवों को इसी में लीन रहना चाहिए।

शुद्धं यदेव चैतन्यं तदेवाहं न संशयः।

कल्पनयानयाप्येतद्धीनमानन्दमन्दिरम्।।52।।

जो निराकार, निरंजन, शुद्ध, चिद्रूप है सो मैं ही हूँ इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है इस प्रकार की कल्पना से भी आनन्दस्वरूप शुद्धात्मा रहित है।

जो शुद्ध चैतन्य स्वरूप है वह मैं ही हूँ इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं, इस प्रकार की भी कल्पना उस शुद्धात्मा में नहीं है इसलिये शुद्धात्मा समस्त प्रकार की कल्पनाओं से रहित ही है।

स्पृहा मोक्षेऽपि मोहोत्था तन्निषेधाय जायते।

अन्यस्मै तत्कथं शान्ता स्पृहयन्ति मुमुक्षवः।।53।।

मोह के होते सन्ते ही इच्छा होती है इसलिये आचार्य-उपदेश देते हैं कि यदि मोक्ष के लिये भी मोह से पैदा हुई इच्छा हो जावे तो वही जब मोक्ष के रोकने वाली हो जाती है तब शान्त तथा मोक्षाभिलाषी मनुष्य अन्य पदार्थों के लिये कैसे इच्छा कर सकते हैं।

अहं चैतन्यमेवैकं नान्यत्किमपि जातुचित्।

सम्बन्धोऽपि न केनापि दृढपक्षो ममेदृशः।।54।।

मैं एक चैतन्यस्वरूप ही हूँ चैतन्य से भिन्न नहीं हूँ और मेरा निश्चयनय से किसी दूसरे पदार्थ के साथ संबंध भी नहीं है यह मेरा प्रबल सिद्धान्त है।

शरीरादिवहिश्चिन्ताचक्रसम्पर्कवर्जितम्।

विशुद्धात्मस्थितं चित्तं कुर्वन्नास्तेनिरन्तम्।।55।।

बाह्य शरीर आदि पदार्थों की चिन्ता छोड़कर रागद्वेष आदि मलों से रहित तथा निर्मल अपनी आत्मा में ही चित्त को लगते हैं।

एवं सति यदेवास्ति तदस्तु किमिहापरैः।
आसाद्यात्मन्निदं तत्त्वं शान्तो भव सुखी भव।।56।।

इस प्रकार पूर्वोक्त रीति से आत्मा के चिंतवन से जो होता है सो हो दूसरे 2 विचारों से क्या प्रयोजन है इस प्रकार के वास्तविक स्वरूप को प्राप्त होकर अरे आत्मा! तू शान्त हो तथा सुखी हो इस प्रकार ज्ञान अपनी आत्मा को शिक्षा देता रहता है।

अपारजन्मसन्तानपथभ्रान्तिकृतश्रमम्।
तत्त्वामृतमिदं पीत्वा नाशयन्तु मनीषिणः।।47।।

आचार्य उपदेश देते हैं कि हे भव्य पुरुषों! इस कहे हुवे चैतन्यामृत का पान करो तथा इस अपार संसार में अनन्त तिर्यंच नरक आदि पर्यायों में भ्रमण करने से जो खेद हुवा है उसको शान्त करो।

अतिसूक्ष्ममतिस्थूलमेकं चानेकमेव तत्।
स्वंसवेद्यमेवद्यञ्च यदक्षरमनक्षरम्।।58।।
अनौपम्यमनिर्देश्यमप्रेयमनाकुलम्।
शून्यं पूर्णं च यन्नित्यमनित्यं च प्रचक्ष्यते।।59।।
निश्शरीरं निरावलम्बं निश्शब्दं निरुपाधि यत्।
चिदात्मकं परंज्योतिरवाङ्मानसगोचरम्।।60।।
इत्यत्र गहनेऽत्यन्तदुर्लक्ष्ये परमात्मनि।
उच्यते यत्तदाकाशं प्रत्यालेख्यं विलिख्यते।।61।।

आचार्य कहते हैं कि चैतन्यरूपी तेज अत्यन्त सूक्ष्म भी है और अत्यन्त स्थूल भी है, और एक भी है अनेक भी है, स्वसंवेद्य भी है अवेद्य भी है, अक्षर भी है, अनक्षर भी है, तथा उपमारहित है, अवक्तव्य है, अप्रमेय है, आकुलता रहित है, और शून्य भी है। पूर्ण भी है, नित्य भी है, अनित्य भी है, और शरीर सहित है, आश्रय रहित है शब्द रहित है, उपाधि रहित है, तथा चैतन्यस्वरूप परम तेज का धारी है, और न उसको वचन से ही कह सकते हैं तथा न उसका मन से चिंतवन कर सकते हैं, इस प्रकार यह परमात्मा अगम्य तथा दृष्टि के अगोचर है इसलिये जिस प्रकार अमूर्तिक

आकाश पर चित्र लिखना कठिन है उसी प्रकार परमात्मा का वर्णन करना भी अत्यंत कठिन है।

भावार्थ-इस अमूर्तिक परमात्मा को इन्द्रियों से नहीं देख सकते इसलिये तो वह सूक्ष्म है और केवल दर्शन तथा केवलज्ञान से देखा और जाना जा सकता है इसलिये वह स्थूल भी है तथा सदा अपने स्वरूप में विद्यमान रहता है और पर पदार्थो से भिन्न है इसलिये शुद्ध निश्चयनय से यह एक भी है और पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से इसकी अनेक ज्ञान दर्शन आदि पर्याय मौजूद हैं इसलिये यह अनेक भी है, तथा अहम् 2 इत्याकारक स्वसंवेदन प्रत्यक्ष के गोचर है अर्थात् अपने से जाना जाता है इसलिये तो स्वसंवेद्य है और इन्द्रियों से यह नहीं जाना जा सकता इसलिये यह अवेद्य भी है तथा व्यवहार नय से वचन से कुछ कहा जाता है इसलिये तो यहअक्षर है किन्तु शुद्ध निश्चय नय से इसको कुछ भी नहीं कह सकते इसलिये यह अनक्षर भी है अथवा''जिस का नाश न होवे वह अक्षर है'' यदि ऐसा अक्षर शब्द का अर्थ करेंगे तो भी शुद्ध निश्चयनय से तो यह अक्षर ही है क्योंकि शुद्ध निश्चयनय से इसका कुछ भी नाश नहीं होता तथा व्यवहारनय से यह अनक्षर (विनाशिक) भी है क्योंकि प्रतिसमय इसकी पर्याय पलटती रहती हैं और इसकी समानता को धारण करने वाला कोई पदार्थ नहीं है इसलिये यह उपमा रहित भी है तथा इसके वास्तविक स्वरूप को कुछ भी कह नहीं सकते इसलिये यह अवक्तव्य भी है और इसके 'केवलज्ञानरूपी, गुणों का किसी क्षेत्र आदिके द्वारा परिमाण नहीं किया जा सकता अर्थात् वह समस्त लोक तथा अलोक का प्रकाश करने वाला है इसलिये यह अप्रमेय भी है और यह अचिंत्य सुख का भण्डार है इसलिये आकुलता रहित भी है तथा यह परद्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा से रहित है इसलिये शून्य भी है और समस्त ज्ञान, दर्शन, सुख आदि गुणों से भरा हुवा है इसलिये यह पूर्ण भी है और द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा इसका विनाश नहीं होता इसलिये यह नित्य भी है तथा पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा इसका प्रतिसमय विनाश होता रहता है इसलिये वह अनित्य भी है और इसका कोई शरीर नहीं इसलिये यह शरीर रहित है और इसका कोई आश्रय (आधार) नहीं इसलिये यह आश्रय रहित भी है और यह तो चेतन है तथा शब्द पुद्गल है इसलिये यह शब्द रहित और यह चैतन्यस्वरूप ज्योति है और इसको वचन से कह नहीं सकते तथा मन से विचार नहीं सकते इसलिये यह वाणी तथा मन का अगोचर भी है

इसलिये इस प्रकार के शुद्धात्मा का वर्णन करना अल्पज्ञानियों के लिये कठिन है।

अस्तां तत्र स्थितो यस्तु चिंतामात्रपरिग्रहः।
तस्यात्र जीवितं श्लाघ्यं देवैरपि स पूज्यते।।62।।

जो पुरुष उस शुद्धात्मा में तिष्ठने वाला है वह तो दूर रहा किंतु जो पुरुष इस शुद्धात्मा का चिंतवन करने वाला है उसका भी जीवन इस संसार में अत्यंत प्रशंसनीय है तथा उसकी बड़े-2 देव आकार पूजा सेवा आदि करते हैं इसलिये भव्य जीवों को सदा शुद्धात्मा का ही ध्यान करना चाहिये।

सर्वविद्भिरसंसारै सम्यग्ज्ञानविलोचनैः।
एतस्योपासनोपायः साम्यमेकमुदाहृतम्।।63।।

समस्त पदार्थों के जानने वाले तथा कर्मो रहित तथा केवल ज्ञान रूपी नेत्र के धारी केवली भगवान् इस शुद्धात्मा की उपासना करने का उपाय समता ही है ऐसा कहते हैं।

समस्त पदार्थों में समता रखने से ही इस आत्मा की भलीभाँति आराधना हो सकती है इसलिये आत्मा की उपासना करने वाले भव्य जीवों को समस्त पदार्थों में अवश्य समता रखनी चाहिये।

साम्यं स्वस्थ्यं समाधिश्च योगश्चेतोनिरोधनम्।
शुद्धोपयोग इत्येते भवन्त्येकार्थवाचकाः।।64।।

साम्य, स्वास्थ्य, समाधि, योग, चित्त, निरोध, शुद्धोपयोग, ये सर्वशब्द एक ही अर्थ के कहने वाले हैं अर्थात् इन शब्दों के नाम जुदे-2 हैं किन्तु अर्थ एक ही है।

साम्य के स्वरूप का वर्णन

नाकृतिर्नाक्षरं वर्णो नो विकल्पश्च कश्चन्।
शुद्धचैतन्यमेवैकं यत्र तत्साम्यमुच्यते।।65।।

जिसमें न कोई आकार है और न कोई अक्षर है और न कोई नीला आदि वर्ण है और न जिसमें कोई विकल्प है किन्तु केवल एक चैतन्य ही है वही साम्य है।

साम्यमेकं परं कार्यं साम्यं तत्त्वं परं स्मृतम्।
साम्यं सर्वोपदेशामुपदेशो विमुक्तये।।66।।

साम्य ही एक उत्कृष्ट कार्य है और साम्य ही एक उत्तम है तथा साम्य ही मुक्ति के लिये समस्त उत्तम उपदेशों में से उपदेश है।

साम्यं सद्बोधनिर्माणं शश्वदानन्दमन्दिरम्।

साम्यं शुद्धात्मनोरूपं द्वारं मोक्षैकसद्मनः।।67।।

इस साम्य से ही भव्य जीवों को सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है तथा इस साम्य से ही अविनाशी सुख मिलता है और यह साम्य ही शुद्धात्मा का स्वरूप है तथा यह साम्य ही मोक्ष रूपी मकान का द्वार है।

साम्यं निश्शेषशास्त्राणां सारमाहुर्विपश्चितः।

साम्यं कर्ममहादावदाहे दावानलायते।।68।।

समस्त शास्त्रों का सारभूत यह साम्य ही है और यही साम्य समस्त कर्मरूपी वन के जलाने में दावानल के समान है ऐसा गणधर आदि देव कहते हैं।

शास्त्र के अध्ययन करने से समता की प्राप्ति होती है तथा समता के होने पर समस्त कर्मों का नाश हो जाता है इसलिये भव्य जीवों को साम्य की और अवश्य ऋजु होना चाहिये।

साम्यं शरणमित्याहुर्योगिनां योगगोचरम्।

उपाधिरचिताशेषं दोषक्षपणकारणम्।।69।।

और यह साम्य ही समस्त दुःखों को दूर करने में समर्थ है तथा ध्यानी पुरुष ही इसका ध्यान करते हैं और वह साम्य ही आत्मा और कर्मों के संबंध से उत्पन्न हुवे जो रागादि दोष उनको सर्वथा नष्ट करने वाला है इसलिये भव्य जीवों को सदा साम्य का ही मनन करना चाहिये।

निस्पृहायाणिमाद्यब्जखण्डे साम्यसरोजुषे।

हंसाय शुचये मुक्तिहंसीदत्तदृशे नमः।।70।।

अणिमा महिमा आदि रूप जो कमलखण्ड उसकी जिसको अंश मात्र भी इच्छा नहीं है तथा जो समता रूपी सरोवर में सदा प्रीतिपूर्वक रमण करने वाला है और जिसकी दृष्टि मोक्ष रूपी हंसिनी में लगी हुई है और जो अत्यंत पवित्र है ऐसे परमहंस उस शुद्धात्मा के लिये मेरा नमस्कार है।

ज्ञानिनोमृतसंगाय मृत्युस्तापकरोऽपि सन्।

आमकुम्भस्य लोकेस्मिन् भवेत् पाकविधिर्यथा।।71

जिस प्रकार मिट्टी के कच्चे घड़े के लिये पकाने की विधि एक प्रकार से ताप को ही उपजाने वाली है तो भी वह पाक विधि घड़े को अमृत (जल) के संगम कराने

वाली होती है अर्थात् पक जाने पर ही घड़ा पानी के भरने के योग्य होता है उसी प्रकार यद्यपि बहिरात्माओं को मृत्यु, दुःख के देने वाली है तो भी ज्ञानियों के लिये वह अमृत (मोक्ष) के समागम के ही लिये होती है अर्थात् ज्ञानी पुरुष सदा मृत्यु के नाश के लिये ही प्रयत्न करते रहते हैं तथा चैतन्य स्वरूप से भिन्न ही मृत्यु को मानते हैं इसलिये मृत्यु के होने पर भी उनको दुःख नहीं होता।

मानुष्यं सत्कुले जन्म लक्ष्मीर्बुद्धिः कृतज्ञता।
विवेकेन विना सर्वं सदप्येतन्न किञ्चन।।72।।

जो मनुष्य विवेकी नहीं है उसका मनुष्यपना, उत्तमकुल में जन्म, धन,ज्ञान और कृतज्ञपना, होकर भी निष्फल ही है इसलिये मनुष्यों को विवेकी अवश्य होना चाहिये। जिस प्रकार उत्तम जल से भरी हुई नदी के भीतर स्थित पदार्थ का भयंकर ज्वाला को धारण करने वाली भयंकर सी अग्नि कुछ भी नहीं कर सकती उसी प्रकार जिस अनंत चतुष्टय स्वरूपी नदी के मध्य में प्रविष्ट आत्मा का जरा आदि दुस्सह ज्वालाओं को धारण करने वाली भी भयंकर जन्मरूपी अग्नि कुछ भी नहीं कर सकती अर्थात् जिस स्वस्थता को (आत्मस्वरूप के अनुभवपने की) प्राप्ति से आत्मा जन्म मरण आदिकर रहित हो जाता है और जो शुद्ध, एक चैतन्यस्वरूप को धारण करने वाली है तथा परमात्मा से स्नेह कराने वाली तथा कृतकृत्य है ऐसी उस स्वस्थता को मैं नमस्कार करता हूँ।

एकत्वस्थितये मतिर्यदनिशं संजायते मे तयाप्यानंदःपरमात्मसंन्निधगतः किञ्चित्समुन्मीलति।
कंचित्कालमवाप्य सैव सकलैः शीलैर्गुणैराश्रिता तामानंदकलां विशालविलसद्बोधां करिष्यत्यसौ।।3।।

जो निरन्तर मेरी बुद्धि एकत्व स्थिति की ओर जाती है उससे भी मुझे परमात्मा संबंधी कुछ-2 आनंद उत्पन्न होता है यदि वही बुद्धि कुछ काल तक समस्त शील आदि उत्तम गुणों से सहित होकर रहेगी तो अवश्य ही विशाल तथा देदीप्यमान है ज्ञान जिसमें ऐसी उस आनंद की कला को प्राप्त करेगी।

जब मुझे एकत्व स्थिति की ओर बुद्धि के जाने से ही परमात्मा संबंधी कुछ ज्ञान होता है तब यदि मेरी बुद्धि कुछ काल तक शील आदि गुणों से विशिष्ट रहेगी तो अवश्य ही परमात्मा के आनंद को प्राप्त होगी इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं।

केनाप्यस्ति न कार्यमाश्रितवता मित्रेण चान्येन वा प्रेमाङ्गेपि न मेस्ति सम्प्रति सुखी तिष्ठाम्यहं केवलः।
संयोगेन यदत्र कष्टमभवत्संसार चक्रे चिरं निर्विण्णः खलु तेन तेन नितरामेकाकिता रोचते।।4।।

मेरे आश्रित जो मित्र हैं न तो मुझे उनसे काम है और न मुझे दूसरे से भी काम है और मुझे अपने शरीर में भी प्रेम नहीं इस समय मैं अकेला ही सुखी हूं क्योंकि मुझे संसार रूपी चक्र से मित्र आदि के संयोग से कष्ट हुवा था इसलिये मैं निश्चय से उदासीन हूँ और मुझे अब एकान्त स्थान ही प्रिय है।

जब तक मेरा मित्र स्त्री पुत्र आदि पर पदार्थों से संबंध रहा तब तक मुझे नाना प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ा इसलिये अब मुझे उन मित्र तथा स्त्री पुत्र आदि पदार्थों से कुछ भी काम नहीं है किंतु मैं अब सर्वथा उदासीन हूं और मुझे एकांत ही अच्छा लगता है।

यो जानाति स एवं पश्यति सदा चिद्रूपतां न त्यजेत् सोहं नापरमस्ति किंचिदपि मे तत्त्वं सदेतत् परम्।
यच्चान्यत्तदशेषकर्मजनितं क्रोधादिकायादि वा श्रुत्वा शास्त्रशतानि सम्प्रति मनस्येतच्छ्रुतंवर्तते।।5।।

जो जानता है वही सदा देखता है और जो चैतन्य स्वरूप को नहीं छोड़ता है वह मैं ही हूँ तथा अन्य पदार्थ मेरा कुछ भी नहीं है और यही समीचीन तत्त्व है। अन्य जो क्रोधादिक तथा शरीर आदिक हैं वे समस्त कर्मों से उत्पन्न हुवे हैं इसलिये सैंकड़ों शास्त्रों को सुनकर मन में यही सिद्धांत स्थित है।

मैंने सैंकड़ों शास्त्रों का अवलोकन किया है इसलिये मेरे मन में वह सिद्धांत स्थिर हो गया है कि जो जानता है वही देखता है और चैतन्यस्वरूप को नहीं छोड़ता है वह मैं ही हूँ और संसार में दूसरा कोई भी पदार्थ मेरा नहीं है और ये जो क्रोध आदि तथा शरीर आदिक कार्य हैं वे समस्त कर्मों से पैदा हुवे हैं।

हीनं संहननं परीषहसहं नाभूदिदं साम्प्रतं काले दुःखमसंज्ञकेऽत्र यदपि प्रायो न तीव्रं तपः।
कश्चिन्नातिशयस्तथापि यदसावार्तं हि दुष्कर्मणामतः
शुद्धचिदात्मगुप्तमनसः सर्वं परं तेन किम्।।6।।

दुःखम है नाम जिसका ऐसे इस पंचमकाल में संहनन हीन होता है इसीलिये इस समय वह संहनन परीषहों का सहने वाला भी नहीं होता है और प्रायः करके तीव्र तप भी नहीं हो सकता है तथा किसी प्रकार का अतिशय भी नहीं होता तो भी मैं दुष्कर्मों से पीड़ित हूँ इसलिये अंतरंग में शुद्ध जो चैतन्यस्वरूप उससे गुप्त मन के धारी मुझसे समस्त पदार्थ पर हैं मुझे उन पर पदार्थों से क्या प्रयोजन है ?

सदृग्बोधमयं विहाय परमानंदस्वरूपं परं ज्योतिर्वान्यदहं
विचित्रविलसत्कर्मैकतायामपि।
काष्ण्यें कृष्णपदार्थसन्निधिवशाज्जाते मणौ स्फटिके यत्तस्मात्प्रथगेव
स द्वयकृतो लोके विकारो भवते।।

नाना प्रकार के विद्यमान जो कर्म उनकी एकता होने पर भी मैं सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानस्वरूप और परमानंद स्वरूप तथा उत्कृष्टतेज के धारी आत्मा को छोड़कर भिन्न नहीं हूँ अर्थात् आत्मस्वरूप ही हूँ क्योंकि काले पदार्थ के संबंध से स्फटिकमणि के काले होने पर भी वह कृष्णता उससे भिन्न ही है और विकार जो संसार में होता है वह दो पदार्थों द्वारा किया हुवा ही होता है।

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा भिन्ना भावा सर्व एवास्य पुंसः।
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी नो दृष्टाःस्यु दृष्टमेकं परं स्यात्।।8।।
स.सार

इस पुरुष के रूप, रस, गंध आदिक तथा राग,द्वेष, मोह आदिक जितने भर भाव हैं समस्त भिन्न हैं इसलिये जो पुरुष अंतरंग तत्त्व को देखने वाला है उसके दृष्टिगोचर ये कोई भाव नहीं होते किंतु उसके दृष्टिगोचर वह प्रधान तेज ही होता है।

आपत्सापि यतेः परेण सह यः संगो भवेत् केनचित् सापत्सुष्ठु गरीयसी
पुनरहो यःश्रीमतां संगमः।
यत्तु श्रीमदमद्यपानविकलैरुत्तानितास्यैर्नृपैः सम्पर्कः सुमुमुक्षुचेतसि सदा
मृत्योरपि क्लेशकृत्।।9।।

यतीका किसी दूसरे पदार्थ के साथ जो संयोग होता है वह एक प्रकार की आपत्ति है और उसी यतिका श्रीमानों के साथ संगम हो जावे तो बड़ी भारी आपत्ति है और जो पुरुष लक्ष्मी के मदरूपी मदिरा से मत्त हो रहे हैं और जिनके सुख ऊंचेको हैं ऐसे राजाओं के साथ संबंध हो जावे तो वह संबंध मोक्षाभिलाषी के चित्त में मरण

से भी अधिक दुःख का देने वाला है।

यह बात अनुभव सिद्ध है कि मनुष्यों को जो कुछ कष्ट होते हैं वे परके संबंध से ही होते हैं और यतियों का यतिपना तो परके संबंध से रहित होने से ही होता है क्योंकि यदि यतियों का सामान्यलोगों के साथ भी संबंध होतो उनको दुःख भोगना पड़ता है और यदि उन्हीं यतीश्वरों का श्रीमान मनुष्यों के साथ संबंध हो जावे तो उनको घोर आपत्ति का सामना करना पड़ता है और जिस प्रकार मदिरा के पान से मनुष्य मत्त हो जाता है और उन्नत मुख हो जाता है उसी प्रकार जो राजा, लक्ष्मी का जो घमंड वही हुवा मद्य उसके पीने से मत्त हैं और जिनके मुख ऊपर को चढ़े हुवे हैं ऐसे राजाओं के साथ उन मोक्षाभिलाषी यतियों का संबंध हो जावे तो उन यतियों के चित्त में वह संबंध मरण से अधिक भी वेदना का करने वाला होता है इसलिये जो मुनि मोक्षाभिलाषी हैंउनको संसार में किसी के साथ संबंध नहीं रखना चाहिये किंतु अपने आत्मस्वरूप का ही चिंतवन करना चाहिये।

स्निग्धा मा मुनयो भवंतु गृहिणो यच्छन्तु मा भोजनं मा किञ्चिद्धनमस्तु मा वपुरिदं रुग्वर्जितं जायताम्।
नग्नं मामवलोक्य निन्दतु जनस्तत्रापि खेदो न मे नित्यानंदपदप्रदं गुरुवचो जागर्ति चेच्चेतसि।।10।।

सदा आनंद स्थान को देने वाला ऐसा श्री गुरु का वचन यदि मेरे चित्त में प्रकाशमान है तो चाहे-मुनिगण मेरे ऊपर प्रीति मति करो और भले ही गृहस्थ लोग मुझे भोजन मत दो और मेरे पास धन भी चाहे कुछ न हो और मेरा शरीर भी भले ही रोगकर रहित मत हो और लोग मुझे नग्न देखकर चाहे मेरी निन्दा भी करो तो भी मुझे किसी प्रकार का खेद नहीं।

दुःखव्यालसमाकुले भववने हिंसादिदोषद्रुमे नित्यं दुर्गतिपल्लिपातिकुपथे भ्राम्यन्ति सर्वेऽगिनः।
तन्मध्ये सुगुरुप्रकाशितपथे प्रारब्धयानो जनो यात्यानंदकरं परं स्थिततरं निर्वाणमेकं पदम्।।11

जो संसार रूपी वन नाना प्रकार के दुःख रूपी जो हस्ती अथवा अजगर उनसे व्याप्त है और जिसमें हिंसा असत्य चोरी आदिक दोष रूपी वृक्ष मौजूद हैं और जो संसाररूपी वन दुर्गतिरूपी जो भी लोक के स्थान उन कर सहित जो खोटे मार्ग

उन कर सहित है ऐसे संसाररूपीवन में सदा समस्त जीव भ्रमण करते रहते हैं किन्तु उसी संसार रूपी वन में उत्तम गुरुओं द्वारा प्रकाशित मार्ग में जो मनुष्य गमन करने वाला है वह मनुष्य समस्त प्रकार के आनंदों को करने वाले और उत्कृष्ट तथा निश्चल और अनुपम ऐसे निर्वाण स्थान को अर्थात् मोक्ष स्थान को प्राप्त होता है।

यत्सातं यदसातङ्गिषु भवेत्तत्कर्मकार्यं ततस्तत्कर्मैव तदन्यदात्मन इदं जानन्ति ये योगिनः।

ईदृग्भेदविभावनाकृतधियां तेषां कुतोहं सुखी दुःखी चेति विकल्पकल्मषकला कुर्यात्पदं चेतसि।।12।।

जीवों में जो सुख तथा दुःख हैं वे समस्त कर्मों के कार्य हैं इसलिये कर्म ही हैं और ये कर्म आत्मा से भिन्न हैं इस बात को जो योगीश्वर जानते हैं उन इस प्रकार की भेद भावना के भावने वाले योगीश्वरों के मन में, मैं सुखी हूँ और मैं दुःखी हूँ इस प्रकार की विकल्प संबन्धी जरासी भी मलिनता कैसे स्थान को प्राप्त कर सकती है ?

जब तक योगियों को इस बात का भलीभांति ज्ञान नहीं होता कि सुख दुःख आदिक जो कार्य हैं वे कर्मों के कार्य हैं इसलिये कर्म ही हैं और आत्मा कर्मों से सर्वथा भिन्न है तभी तक उनके मन में मैं सुखी हूँ तथा दुःखी हूँ इस प्रकार के विकल्प उत्पन्न होते रहते हैं किन्तु जिस समय योगियों को इस प्रकार का भलीभांति ज्ञान हो जाता है कि कर्म तथा उनके सुख दुःख आदि कार्य सर्व आत्मा से भिन्न हैं उस समय उनके मन में कभी भी मैं सुखी हूँ तथा दुःखी हूँ इस प्रकार के मलिन विकल्प नहीं होते हैं इसलिये योगियों को चाहिये कि वे कर्म तथा आत्मा के भेद को भलीभांति जानकर मैं सुखी हूँ तथा दुःखी हूँ इस प्रकार के मलिन विकल्पों से सर्वदा विमुक्त रहें।

देवं तत्प्रतिमां गुरुं मुनिजनं शास्त्रादि मन्यामहे सर्वं भक्तिपरा वयं व्यवहृतौ मार्गे स्थिता निश्चयात्।

अस्माकं पुनरेकताश्रयणतो

व्यक्तिभवच्चिद्गुणस्फारीभूतमतिप्रबंधमहसामात्मैव तत्त्वं परम्।।13।।

जब तक हम व्यवहार मार्ग में स्थित हैं तभी तक हम भक्ति में तत्पर होकर देव को देव की प्रतिमा को गुरु को मुनिजनों को तथा सर्व शास्त्र आदि को मानते हैं किन्तु निश्चयनय से एकत्व के आश्रय से प्रगट हुआ जो चैतन्यरूपी गुण उससे प्रगल्भ

जो बुद्धि उस बुद्धि संबंधी तेज के धारी हमारा केवल एक आत्मा ही उत्कृष्ट तत्त्व है किन्तु इससे भिन्न कोई भी तत्त्व नहीं है।

जायंते विरसा रसा विघटते गोष्ठकथाकौतुकं
शीर्यनते विषयास्तथा विरमति प्रीतिःशरीरेऽपि च।
जोषं वागपि धारयत्यविरतानन्दात्मशुद्धात्मन
श्चिन्तायामपि यातुमिच्छति समं दोर्षेमनः पंचताम्।।11

सदा आनन्द स्वरूप जो शुद्धात्मा उसके चिंतवन होने पर रस जो हैं सो विरस हो जाते हैं और गोष्ठी में जो कथा का कौतूहल है वह नष्ट हो जाता है और समस्त विषय नष्ट हो जाते हैं तथा शरीर में भी अंशमात्र भी प्रीति नहीं रहती और वाणी भी जोष को धारण कर लेती है अर्थात् मौन का अवलम्बन करना पड़ता है और समस्त दोषों के साथ मन भी नष्ट हो जाता है।

मोहात्मक प्रसिद्धि V/S मोह रहित सिद्धि

(संकीर्ण स्वार्थ हेतु प्रसिद्धि V/S सद्गुण-भाव-काम की प्रसिद्धि)

(चाल :- गंगा तेरी धारा अमृत....)

प्रसिद्धि तेरी अजस्रधारा, सर्वत्र बहती जाये।
तेरी प्राप्ति हेतु मोही जीव, अनेक स्वाँग रचायेऽऽऽ।। ध्रुव
तेरी प्राप्ति से प्रतिष्ठा मिलती, जिससे मिले वर्चस्व।
जिससे मिले ख्याति पूजा लाभ, बिना पुरुषार्थ से ये सब।।
जिससे स्व-दोष दुर्गुण भी ढक जाये,यथा सूर्य के कलंक/(सनस्पोट)
श्रद्धा (भक्ति) व भय के कारण तेरे स्वामी को करते अन्य सम्मान।।1

हर जीव में होती प्रभुत्व शक्ति तथाहि विभुत्व व सिद्धि।
रागद्वेष मोह के कारण जीवों में होती इसकी विकृति।।
जिससे विभाव रूप से चाहते, प्रभुत्व विभुत्व प्रसिद्धि।
इस कारण करते विपरीत भाव, व्यवहार कथन आदिऽऽऽ।।2

अन्याय अत्याचार शोषण दगाबाज व ढोंग पाखण्ड।
दिखावा आडम्बर मायाचारी, फैशन-व्यसन व दंभ।।
नानाविध स्वागं रचाते गीत बजाते व नाचते।

जोकर जैसे काम करते, अन्य को रीझाते मनातेऽऽऽ।।3

भले वे किसी भी जाति पंथ मत, भाषा-भाषी भी होते।
व्यापार राजनीति सामाजिक कार्यकर्त्ता से धार्मिक तक होते।।
आबाल वृद्ध वनीता से ले सामान्य जन से ले साधु साध्वी।
प्रसिद्धि प्राप्त करने हेतु बनते शिक्षित से तप-त्यागीऽऽऽ।।4

वेश्या चापलुस मदारी नट-नटी सम करते आकर्षक काम।
अन्य को लुभाते व प्रभावित करते जिससे प्रसिद्ध हो स्वनाम।।
हर धर्म व देशों के लोगों से ले पशु-पक्षी भी ऐसा करते।
काम भोग से ले स्वार्थ सिद्धि हेतु करते नानाविध प्रपंचऽऽऽ।।5

इस हेतु ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा से ले करते पर निन्दा अपमान।
आक्रमण युद्ध हत्या तक करते किन्तु दिखाते स्वयं को महान्।।
जो उपरोक्त दोषों से रहित होकर करते उत्तम भाव-व्यवहार।
स्व-पर-विश्व कल्याण हेतु करते उनका होता स्वतः प्रचारऽऽऽ।।
यथा तीर्थंकर बुद्ध ईसा सुकरात, नाइटेंगल मदर टेरेसा आदि।
वे ही आदरणीय व अनुकरणीय, उनसे उपकृत है मानव जाति।।
इनसे विपरीत जो केवल प्रसिद्धि हेतु ही करते भाव-व्यवहार।
वे नहीं होते आदरणीय अनुकरणीय उनका हो सदा बहिष्कारऽऽऽ।।
प्रशसंनीय काम विधेय नहीं विधेय हैं प्रशंसा हेतु काम।
ऐसा है तेरा विविध रूप ''सूरीकनक'' का लक्ष्य आत्मा की सिद्धि/
(निष्काम मोक्ष)ऽऽऽ।।8

ग.पु.का. दि. 4.6.2019 प्रातः 8.32

लोकप्रिय कैसे बने

हमें यह मान लेना चाहिये कि हम चाहते हैं कि लोग हमें पसंद करे।

आप किसी के मुँह से यह सुन सकते है, ''मुझे फर्क नहीं पड़ता कि लोग मुझे पसंद करते हैं या नहीं।'' परंतु जब कोई ऐसा कहता है, तो आपको यह समझ लेना चाहिये कि वह दरअसल सच नहीं बोल रहा है।

मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स ने कहा है, ''मानव स्वभाव की गहनतम आकांक्षा है सराहे जाने की इच्छा।।'' पसंद किये जाने की आकांक्षा, दूसरों का सम्मान हासिल करने की इच्छा लोगों द्वारा चाहे जाने की इच्छा हम सबकी मूलभूत इच्छा है।

हाई स्कूल के विद्यार्थियों से एक सर्वे में यह सवाल पूछा गया, ''आप लोगों की सबसे प्रबल इच्छा क्या है ?'' अधिकांश विद्यार्थियों का कहना था कि वे लोकप्रिय बनना चाहते थे। यही वयस्क और अधिक उम्र के लोग भी चाहते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि हर व्यक्ति यही चाहता है कि लोग उसे पसंद करें, उसका सम्मान करें और उसे स्नेह दें।

लोकप्रियता की कला में निपुण होने के लिये कलाहीन बनें। अगर आप जान-बूझकर लोकप्रियता का पीछा करेंगे तो इस बात की संभावना प्रबल है कि आप इसे हासिल नहीं कर पायेंगे । परंतु उस तरह के दुर्लभ व्यक्ति बन जायें जिनके बारे में लोग कहते हैं :''उसमें निश्चित रूप से कुछ बात तो है,'' और आप विश्वास कर सकते हैं कि जो लोग आपको पसंद करने लगे हैं और आप सही राह पर जा रहे हैं।

बहरहाल में आपको चेतावनी दे दूँ कि लोकप्रियता की आपकी उपलब्धियों के बावजूद हर कोई आपको पसंद नहीं करेगा। मानवीय स्वभाव में एक अजीव सा पेंच होता है जिसके द्वारा कुछ लोग बस यूँ ही आपको पसंद नहीं करेंगे। जैसा आक्सफोर्ड की दीवार पर चार पक्तियों में बताया गया है :

''मैं आपको पसंद नहीं करता, डॉ. फेल,
इसका कारण मैं आपको नहीं बता सकता;
परंतु मैं इस बात को अच्छी तरह से जानता हूँ,
मैं आपको पसंद नहीं करता, डॉ. फेल।''

यह कविता बहुत सूक्ष्म भाव लिये हुये है। लेखक डॉ. फ़ेल को पसंद नहीं करता। वह इसका कारण नहीं जानता, परंतु वह बस इतना जानता है कि वह उन्हें पसंद नहीं करता। इस बात की काफ़ी संभावना है कि यह नापसंदगी अतार्किक हो, क्योंकि इस बात में कोई शक नहीं था कि डॉ. फेल एक बहुत अच्छे इन्सान थे। शायद अगर लेखक उन्हें ज्यादा अच्छी तरह से जान लेता तो उसने उन्हें पसंद किया होता, परंतु बेचारा डॉ. इन पंक्तियों के लेखक की नज़रों में कभी लोकप्रिय नहीं बन पाये। ऐसा सिर्फ़ तालमेल की कमी की वजह से हो सकता है- वह अजीब सा तंत्र

जिसके द्वारा हम किन्हीं ख़ास लोगों के साथ ''क्लिक'' कर जाते हैं या ''क्लिक'' नहीं कर पाते।

बाइबल भी मानवीय स्वभाव के इस दुखद तथ्य को जानती है। क्योंकि यह कहती है : ''अगर संभव हो, तो जितना आपके वश में हो, सबके साथ शांति से रहो।''(रोमन्स 12:18)। बाइबल बहुत यथार्थवादी पुस्तक है और यह जानती है कि इंसानों में कितनी असीम संभावनायें और अपूर्णतायें हैं। बाइबल ने अपने शिष्यों को सलाह दी है कि अगर ये किसी गाँव में जायें और अपनी तरफ़ से लोगों के साथ सौहार्द्र स्थापित करने के सर्वश्रेष्ठ प्रयासों के बाद भी वे ऐसा न कर पायें तो वे उस गाँव की धूल तक को अपने पैरों से झाड़ दें - ''और जो भी आपको पसंद न करे, उस शहर से निकलने के बाद आप अपने पैंरों की धूल तक झाड़कर प्रतीकात्मक रूप से उन्हें अपने दिमाग़ से निकाल दें।'' (ल्यूक 9:5)। इसका मतलब यह है कि समझदारी इसी में है कि आप उनकी नापसंदगी को स्वयं को गंभीरता से प्रभावित न करने दें, क्योंकि आप हर किसी के साथ पूरी तरह लोकप्रिय नहीं हो सकते।

बहरहाल, ऐसे कई फॉर्मूले और तरीक़े हैं, जिनका निष्ठा से पालन करने पर आप ऐसे इन्सान बन सकते हैं जिसे दूसरे लोग पसंद करेंगे। चाहे आप स्वभाव से ''कठिन'' व्यक्ति हों या संकोची और दब्बू स्वभाव के हों या असामाजिक हों फिर भी आप संतोषजनक व्यक्तिगत संबधों का आनंद ले सकते हैं। आप अपने आपको एक ऐसा इन्सान बना सकते हैं जो दूसरों के साथ सहज, स्वाभाविक और सुखद संबंध का आनंद लेता है।

मैं बता नहीं सकता वह विषय कितना महत्वपूर्ण है। हमें इसमें पारंगत होने के लिये समय देना चाहिये और प्रयास करना चाहिये क्योंकि जब तक आप ऐसा नहीं करेंगे तब तक आप पूरी तरह सुखी या सफल नहीं हो पायेंगे। इस क्षेत्र में आपकी असफलता आपको मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित करेगी। लोकप्रियता हमारे ईगो को संतुष्ट करने से अधिक महत्व की चीज़ है। यह जीवन में आपकी सफलता के लिये भी आवश्यक है और स्वाभाविक तथा संतोषजनक व्यक्तिगत संबंध तो और भी अधिक महत्वपूर्ण हैं।

इन्सान को सबसे ज़्यादा परेशानी इस बात से होती है कि उसे कोई पसंद नहीं करता या किसी को उसकी जरूरत नहीं है। जिस इन्सान को जितना ज़्यादा पसंद

किया जाता है या जिसकी लोगों की जितनी ज़्यादा जरूरत होती है, वह इन्सान उतना ही परिपूर्ण इन्सान बन जाता है ''अकेला'' व्यक्ति या एकाकी व्यक्तित्व या सबसे कटा हुआ इन्सान इतना दुख उठाता है जिसे बयान करना मुश्किल है। आत्मरक्षा में वे अपने आप में दुबक जाते हैं। उनके अंदरूनी अंतर्मुखी स्वभाव की वजह से उनका सामान्य विकास नहीं हो पाता जो बहिर्मुखी और दूसरों की तरफ़ उन्मुख व्यक्ति अनुभव करता है जब व्यक्तित्त्व अपने खोल से बाहर नहीं निकलता तथा किसी और के लिये मूल्यवान नहीं बनता, तो यह बीमार पड़ सकता है और मर सकता है। न चाहे जाने या ज़रूरत न होने की भावना से कुंठा, बुढ़ापा और बीमारी भी तेजी से आती है। अगर आपको लग रहा है कि आप बेकार है, किसी को आपकी ज़रूरत नहीं है, कोई आपको नहीं चाहता, तो आपको इस बारे में कुछ न कुछ करना चाहिये। यह न सिर्फ जीने का निराशाजनक तरीका है, बल्कि यह मनोवैज्ञानिक रूप से खतरनाक तरीका भी है। जो लोग मानवीय स्वभाव की समस्या से वास्ता रखते हैं वे इस समस्या और इसके दुर्भाग्यपूर्ण परिणामों को अक्सर देखते रहते हैं।

उदाहरण के तौर पर रोटरी क्लब के लंच में शहर के दो डॉक्टर मेरी टेबल पर बैठे थे। उनमें से एक बुजर्ग था जो कई साल पहले रिटायर हो चुका था और दूसरा शहर का सबसे लोकप्रिय युवा डॉक्टर था। युवा डॉक्टर बेहद व्यस्त दिखता हुआ लंच पर देरी से आया और उसने थकी हुई आह भरकर कुर्सी पर खुद को पटक दिया।'' काश मेरा टेलीफ़ोन बजना बंद हो जाये।'' उसने शिकायत भरे लहजें में कहा। ''मैं कहीं भी नहीं निकल पाता,क्योंकि लोग मुझे हर समय फ़ोन करते रहते हैं। मेरी इच्छा होती है कि मैं अपने टेलीफोन पर सायलेंसर लगवा लूँ।''

बुजुर्ग डॉक्टर ने धीमे से कहा, ''मैं जानता हूँ तुम्हे कैसा लगता होगा, जिस। पहले मैं भी यही सोचा करता था कि टेलीफोन की घंटी बजना बंद हो जाये। परंतु तुम ईश्वर को धन्यवाद दो कि टेलीफोन बज रहा है। इस बात पर खुश रहो कि लोग तुम्हें चाहते हैं और उन्हें तुम्हारी जरूरत है।'' फिर उसने निराश स्वर में कहा, ''अब कोई मुझे फोन नहीं करता। मैं एक बार फिर चाहूँगा कि मेरा टेलीफोन बजे। कोई मुझे नहीं चाहता, किसी को मेरी ज़रूरत नही है। मैं अब गुज़रा वक़्त हो चुका हूँ।''

टेबल पर बैठे हम सभी बेहद व्यस्त लोग, जो अपनी अत्यधिक गतिविधियों से थका हुआ महसूस करते हैं, उसकी बातों पर काफ़ी देर तक विचार करते रहे।

एक अधेड़ महिला ने मुझसे शिकायत की कि उसकी हालत ठीक नहीं है। वह अंसतुष्ट और दुखी है। ''मेरे पति मर गये हैं, बच्चे बड़े हो गये हैं और अब मेरे लिये कहीं जगह नहीं है। लोग मेरे साथ दयालुतापूर्ण व्यवहार करते हैं, परंतु वे उदासीन हैं। हर एक की अपनी रुचियाँ हैं और किसी को मेरी ज़रूरत नहीं है- कोई भी मुझे नहीं चाहता। मैं सोचती हूँ,क्या यही वह कारण हो सकता है जिसके कारण मेरी हालत ठीक नहीं है ?'' उसने पूछा। निश्चित रूप से यह एक महत्वपूर्ण कारण हो सकता है।

एक बिज़नेस में फ़र्म का संस्थापक, जिसकी उम्र सत्तर साल से अधिक थी, बचैनी और दिशाहीनता से इधर-उधर घूम रहा था। उसने मुझसे बातें कीं जबकि उसका पुत्र जो बिजनेस का वर्तमान प्रमुख था, फ़ोन पर बातें कर रहा था। मैं उसके पुत्र से मिलने आया था। बुजुर्ग व्यक्ति ने निराशा से कहाः ''आप इस विषय पर पुस्तक क्यों नही लिखते कि किस तरह रिटायर्ड होना चाहिये ? मैं यही जानना चाहता हूँ। मैंने सोचा था कि काम के बोझ का हटना बहुत ही बढ़िया अनुभव रहेगा,'' उसने आगे कहा, ''परंतु अब मुझे लगता है कि भी मेरी किसी भी बात में रुचि नहीं लेता। पहले मुझे लगता था कि मैं एक लोकप्रिय व्यक्ति हूँ, परतु अब मैं जब यहाँ आकर बैठता हूँ और ऑफ़िस में घूमता हूँ तो हर कोई 'हलो' कहकर मुझे भूल जाता है। उन्हें इस बात से फर्क नहीं पड़ता कि मैं आया हूँ या नहीं आया। मेरा पुत्र बिज़नेस चला रहा है और वह इसे अच्छी तरह से चला रहा है, परंतु, ''उसने अंत में निराशा से कहा, ''मैं यह सोचना चाहूँगा कि उन्हें मेरी थोड़ी-बहुत ज़रूरत है।''

लोग इस जीवन के सबसे दुखद और करुण अनुभवों में से एक से पीड़ित है। उनकी मूलभूत इच्छा है कि कोई उन्हें चाहे और उनकी यह इच्छा पूरी नहीं हो पा रही है। वे चाहते है कि लोग उनकी सराहना करें। व्यक्तित्व सम्मान के लिये लालायित रहता है। परंतु ऐसा नहीं है कि यह स्थिति सिर्फ़ रिटायरमेंट के बाद ही आती है।

इक्कीस साल की एक लड़की ने मुझे बताया कि बचपन से ही उसे कोई पसंद नहीं करता था। उसे किसी ने इस बात का आभास करा दिया था कि वह एक अनचाही बच्ची है। यह गंभीर विचार उसके अवचेतन में अंदर तक प्रदेश कर गया और उससे उसमें हीनता और आत्म-अवमूल्यन की गहरी भावना आ गयी। इससे वह संकोची और पीछे रहने वाली बन गयी और अपने आप में सिमट गयी। वह

अकेली और दुखी रहने लगी और दरअसल वह एक ऐसा व्यक्तित्व थी जिसका विकास कम हुआ था। उसकी स्थिति का इलाज था आध्यात्मिक रूप से उसके जीवन को नये सिरे से बनाना, खासकर उसके चिंतन को जिस प्रक्रिया ने कुछ समय में उसे एक लोकप्रिय व्यक्ति बना दिया क्योंकि उसका व्यक्तित्त्व नकारात्मक भावनाओं से मुक्त हो गया था।

अनगिनत अन्य लोग, जो गहरे, अवचेतन मनोवैज्ञानिक द्वंद्व के विशेष शिकार नही हैं, वे भी लोकप्रिय होने की कला में निपुण नहीं हो पाते। वे बहुत कोशिश करते हैं। वे अति तक जाते हैं, अक्सर इस तरह का अभिनय करते हैं जिसे वे सचमुच पसंद नहीं करते, परंतु इसका प्रयोग वे केवल इसलिये करते हैं क्योंकि उनमें यह प्रबल इच्छा होती है कि लोग उन्हें पसंद करें। हर कहीं आज आपको ऐसे लोग दिख जायेंगे जो लोकप्रियता की अत्यधिक इच्छा के कारण सतही तौर पर अभिनय कर रहे हैं।

तथ्य यह है कि लोकप्रियता कुछ आसन, सहज, सामान्य और आसानी से की जाने वाली तकनीकों से हासिल हो सकती है। इनका मन लगाकर अभ्यास करें और आप एक लोकप्रिय व्यक्त बन जायेंगे।

पहली बात तो यह कि आप आरामदेह व्यक्ति बनें, यानी ऐसे व्यक्ति जिसके साथ लोग तनावमुक्त रह सकें। कई लोगों के बारे में कहा जाता है:''आप उनके क़रीब नहीं आ सकते।'' यानी कि कोई अवरोध रहता है जिसे आप पार नहीं कर सकते। आरामदेह व्यक्ति हर चीज़ को आराम से लेता है और स्वाभाविक रहता है। उसका अंदाज सुखद, दयालतापूर्ण और परोपकारी होता है। उसके साथ रहना पुराने कीट या पुराने जुते को पहनने की तरह होता है जिससे आप आरामदेह होते हैं। कठोर, संकोची, गैर जिम्मेदार व्यक्ति समूह में घुलमिल नहीं पाता। वह हमेशा इससे थोड़ा बाहर बना रहता है। आप कभी यह ठीक-ठीक नहीं जान पाते कि उसे कैसे लिया जायें या वह किस तरह प्रतिक्रिया करेगा। आप उसके साथ आराम से नहीं रह पाते।

कुछ युवा एक सत्रह साल के लड़के के बारे में बात कर रहे थे। जिसे वे बहुत पसंद लगता है।वह सहज रहता है। उसके साथ आरामदायक अनुभव होता है।'' स्वाभाविक रहने का गुण विकसित करना बहुत महत्वपूर्ण है। आम तौर पर इस तरह का व्यक्ति बड़े दिल का व्यक्ति होता है। छोटे लोग इस बारें में बहुत चिंतित रहते

हैं कि आप उनके साथ कैसा बर्ताव करते हैं, वे अपने पद या अपने स्थान के बारे में ईर्ष्यालु होते हैं, वे अपने अधिकार के बारे में बिलकुल अड़जाते हैं, वे कठोर होते हैं और जल्दी ही चिढ़ जाते हैं।

इन सच्चाइयों का एक अद्भुत उदाहरण है अमेरिका के पूर्व पोस्टमास्टर जनरल जेम्स ए. फालें।

मैं कई साल पहले मिस्टर फ़ाले से पहली बार मिला था। महीनों बाद मैं उनसे एक जनसमूह में मिला और उन्होंने मुझे नाम से बुलाया। इन्सान होने के कारण मैं इस बात को कभी भी नहीं भूला और यह भी एक कारण है कि मैं हमेशा मिस्टर फालें को पसंद करता था।

एक रोचक उदाहरण इस व्यक्ति का रहस्य बताता है जो इस बात का विशेषज्ञ था कि लोगों के बीच लोकप्रिय कैसे बना जाये। मुझे मिस्टर फालें और अन्य लेखकों के साथ फिलाडेल्फिया में पुस्तक और लेखक लचं में बोलना था। मैंने दरअसल वह दृश्य नहीं देखा जिसका मैं वर्णन करने जा रहा हूँ क्योंकि मैं देर से पहुँचा था, परंतु मेरे प्रकाशक ने इसे देखा था। इस लंच के वक्ता होटल के कॉरीडोर में इकट्ठे जा रहे थे कि तभी वे एक अश्वेत नौकरानी के पास से गुजरे जो वहाँ पर एक गाड़ी लिये खड़ी थी। गाड़ी में चादर,टॉवेल और अन्य सामान था जिसे वह कमरों में ले जा रही थी। वह इस समूह के लोगों की तरफ कोई ध्यान नहीं दे रही थी, जो उसकी गाड़ी से बचने के लिये एक तरफ़ को हो गये। मिस्टर फाले उसके पास गये,अपना हाथ बढ़ाया और कहा, ''हलो, आप कैसी हैं ? मैं जिन फ़ाले हूँ। आपका नाम क्या है ? आपसे मिलकर खुशी हुई।''

जब समूह हाल में आगे की तरफ बढ़ गया तो मेरे प्रकाशक ने उस लड़की की तरफ़ देखा। लड़की का मुँह आश्चर्य से खुला हुआ था किकिस तरह कोई आरामदेह, बहिर्मुखी और घमंड न रखने वाला व्यक्ति व्यक्तिगत संबंधों में सफल हो सकता है।

एक विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग ने उन व्यक्तित्व के गुणों का विश्लेषण करवाया जिनके द्वारा लोगों को पसंद या नापसंद किया जाता था एक सौ गुणों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया और यह रिपोर्ट किया गया कि पसंद किये जाने के लिये किसी व्यक्ति में छयालीस अच्छे गुण होना चाहिये। यह जानना थोड़ा निराशाजनक है कि लोकप्रिय होने के लिये आप में इतनी बड़ी संख्या में गुण होना चाहिये।

ईसाई धर्म, बहरहाल, वह मूलभूत गुण सिखात है। जो लोकप्रिय बनने में आपकी बहुत मदद करेगा। यह गुण है लोगों में गंभीरता और ईमानदारी से सच्ची रुचि लेना और लोगों के प्रति प्रेम। शायद अगर आप इस मूलभूत गुण को विकसित करेंगे तो बा़की गुण अपने आप विकसित हो जावेंगे।

अगर आप आरामदेह प्रकार के व्यक्ति नहीं है तो मैं सुझाव देता हूँ कि आप अपने व्यकित्व का अध्ययन करें। आपका लक्ष्य अपने अंदर उपस्थित तनाव के चेतन और अवचेतन तत्त्वों का बाहर निकालना होना चाहिये। यह न सोचे कि लोग आपको इसलिये पसंद नहीं करते क्योंकि उनमें कोई गड़बड़ी है। इसके बजाय यह सोचे कि गड़बड़ी आपके भीतर है और इसे खोजने तथा समाप्त करने का संकल्प करे। इसमे आत्मिक ईमानदारी की ज़रूरत होगी और हो सकता है कि इसमें व्यक्तित्व विशेषज्ञों की सहायता भी लेना पड़े। आपके व्यकित्व में यह तथाकथित ''खुरदुरे'' तत्त्व व गुण हो सकते हैं जिन्हें आपने वर्षो तक इकट्ठा किया है। शायद आपने उन्हें सुरक्षात्मक रूप से लिया हो, या वे उन नज़रियों का परिणाम भी हो सकते हैं जिन्हें आपने कम उम्र में विकसित किया होगा चाहे उनका उद्गम कहीं भी हो, उन्हें बाहर निकाला जा सकता है। इसके लिये आपको स्वयं का वैज्ञानिक अध्ययन करना होगा और परिवर्तन की आवश्यकता को पहचानना होगा जिसके बाद व्यक्तित्व के पुनर्वास की प्रक्रिया प्रारंभ होगी।

एक व्यक्ति चर्च के हमारे क्लीनिक में आया और उसने व्यक्तिगत संबंधों की समस्या के बारे में हमसे मदद माँगी। वह लगभग पैतीस वर्ष का था। और वह इस क़िस्म का व्यक्ति था कि आप उसकी ओर तीन बार नहीं देखेंगे तो कम से कम दो बार तो जरूर देखेंगे। वह इतना आकर्षक और प्रभावशाली दिख रहा था, कि यह यक़ीन करना मुश्किल था कि उसे लोग नापसंद करते होंगे। परंतु उसने कई घटनायें सुनाते हुये बताया कि उसकी परिस्थितियाँ कितनी दुखद हैं और वह मानवीय संबंधों में कितनी बुरी तरह से असफल हो रहा है।

''मैं सर्वश्रेष्ठ करने की कोशिश करता हूँ,'' परंतु उसने बताया, ''मैंने लोकप्रियता और लोगों के साथ सुखद संबंध बनाने के सभी सिखाये गये नियमों को अमल में लाया है, परंतु मेरे प्रयास में मैं कभी सफल नहीं हुआ। लोग न जाने क्यों मुझे पसंद नहीं करते हैं और इससे भी बड़ी बात यह है कि मुझे इस बात का एहसास हो जाता

है।''उसके साथ बात करने के बाद समस्या को समझना कठिन नहीं था। उसके बोलने के तरीक़े और उसके हावभाव से यह साफ लगता था कि वह लगातार आलोचनात्मक रवैया रखता था जो हालाँकि थोड़ा छुपा होता था परंतु फिर भी दिख जाता था। उसमें अपने होंठों को भींचने की भी अनाकर्षक आदत थी जिससे दूसरे के लिये निंदा प्रकट होती थी, जैवे वह अपने आपको दूसरे व्यक्तियों से सुपीरियर समझता हो और उनके प्रति तिरस्कार का भाव रखता हो। दरअसल उसे साथ सुपीरियॉरिटी का नज़रिया स्पष्ट दिख जाता था। वह बहुत कठोर था और उसमें व्यक्तित्व का लचीलापन नहीं था।

''क्या मुझे बदलने का कोई तरीक़ा नहीं है ताकि लोग मुझे पसंद करें ?'' उसने कहा। ''क्या ऐसा कोई तरीक़ा नहीं है जिससे मैं लोगों के साथ ग़लत तरीक़े से व्यवहार करने से बच सकूँ?''

निश्चित रूप से यह युवक आत्म केन्द्रित और अहंकारी था। वह केवल अपने आपसे प्रेम करता था। उसकी हर बात, हर नज़रिया अवचेतन रूप से इस बारे में जाना जाता था कि इसकी उस पर क्या प्रतिक्रिया होगी। हमें उसे यह सिखाना पड़ा कि वह खुद को भूल जाये और दूसरे लोगों से प्रेम करे, जो उसके अब तक के विकास के पूरी तरह से विरीत था। बहरहाल यह उसकी समस्या के समाधान के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। मैंने पाया कि यह युवक लोगों के साथ चिड़चिड़ा हो जाता था और अपने मस्तिष्क में उनकी आलोचना किया करता था हालाँकि दूसरे व्यक्तियों के साथ बाहरी संघर्ष विकसित नहीं हो पाता था। अंदर ही अंदर वह कोशिश कर रहा था कि हर व्यक्ति उसके हिसाब से बन जाये। अवचेतन रूप से लोग यह भाँप लेते थे, हालांकि शायद वे समस्या को परिभाषित नहीं कर पाते होंगे। उनके मस्तिष्व में उसकी और कई अवरोध खड़े हो जाते थे।

चूँकि वह अपने विचारों में दूसरों के प्रति तिरस्कार के भाव रखता था, इसका परिणाम यह होता था कि वह अपने व्यक्तिगत नज़रिये में भी उनके प्रति इतनी गर्मजोशी नहीं रख पाता था। वह पर्याप्त विनम्र था और इस बात का ध्यान रखता था कि वह असभ्य या बदतमीज न बन जाये, परंतु लोग अवचेतन रूप से उसमें ठंडक का अनुभव करते थे, इसलिये वे उसे पसंद नहीं करते थे जिसके बारे में वह शिकायत करता था। वे ऐसा इसलिये करते थे क्योंकि अपने मन में वह उन्हें पसंद

नहीं करता था। वह अपने आप से जरूरत से ज़्यादा प्रेम करता था और अपने आत्म-स्वाभिमान को बनाने के लिये वह दूसरों को नापसंद करता था। वह आत्मप्रेम से पीड़ित था, जिसके दवा है दूसरों से प्रेम करना।

जब हमने उसकी समस्या उसे बतायी तो वह आश्चर्य और दुविधा से भर गया। परंतु वह गंभीर था और वह सचमुच इसका इलाज करवाना चाहता था। उसने आत्मप्रेम के बजाय दूसरों के प्रति प्रेम विकसित करने की सुझायी गयी तकनीकों का अभ्यास किया। ऐसा करने के लिये कुछ मूलभूत परिवर्तनों की आवश्यकता पड़ी, परंतु वह ऐसा करने में सफल हो गया।

उसे एक तरीक़ा यह सुझाया गया था कि वह रात को सोने से पहले उन लोगों की एक सूची बनाये जिनसे वह दिन में मिला था, जैसे, उदाहरण के तौर पर, बस ड्राइवर या पेपर वाला। उसे मानसिक रूप से हर व्यक्ति की तस्वीर बनाना थी जिसका नाम उस सूची में आया हो ओर जब वह अपने सामने हर चेहरे को देखे तो उसे हर एक के बारे में कोई न कोई दयालुता अपने छोटे संसार के चारों तरफ़ प्रार्थना करना थी। हममें से हर एक का अपना संसार होता है जिसमें वे लोग आते हैं जिनके साथ हम बिज़नेस करते हैं या जिनसे हम किसी न किसी तरह से जुड़े हुये हैं।

उदाहरण के तौर पर, परिवार के बाहर जिस पहले व्यक्ति को इस युवक ने सुबह देखा था वह उसकी बिल्डिंग का लिफ्टमैंन था। आम तौर पर वह उससे रूटीन तरीक़े से ''गुड मॉर्निंग'' से अधिक कुछ नहीं कहता था। अब उसने इस लिफ्ट वाले के साथ थोड़ी-बहुत चर्चा करने का समय निकाला। उसने उससे उसके परिवार और उसकी रुचियों के बारे में पूछा । उसने पाया कि लिफ्ट ऑपरेटर का दृष्टिकोण रोचक था और उसके कुछ अनुभव बहुत ही मनमोहक थे। वह उस व्यक्ति में नये जीवनमूल्य देखने लगा। जिसे पहले वह मशीनी रोबोट मानता था जो लिफ्ट को ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर ले जाया करता था। वह सचमुम लिफ़्ट ऑपरेटर को पसंद करने लगा और लिफ्टमैन भी, जिसने उस युवक के बारे में अपनी सटीक राय बना ली थी, अब अपने विचारों को बदलने पर विवश हुआ। उनमें एक दोस्ताना संबंध बन गया। इस तरह प्रक्रिया एक से दूसरे व्यक्ति तक चलती गयी।

एक दिन युवक ने मुझसे कहा ''मैंने पाया है कि दुनिया रोचक लोगों से भरी

हुई है और मुझे पहले कभी इसका एहसास नहीं हुआ।''

जब उसने यह बात कही तो उसने यह साबित किया कि वह खुद को भूलता जा रहा था और जब उसने ऐसा किया, तो बाइबल में जैसा समझदारीपूर्वक बताया गया है, उसने अपने आपको पा लिया। अपने आपको खोने के द्वारा उसने अपने आपको पा लिया और साथ ही बहुत सारे नये दोस्त भी पा लिये। लोग उसे पसंद करने लगे।

लोगों के लिये प्रार्थना करना सीखना उसके सुधार के लिये महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि जब आप किसी के लिये प्रार्थना करते हैं तो आप उसके प्रति अपने व्यक्तिगत नज़रिये को बदलते हैं। आप अपने संबंध को अधिक ऊँचे स्तर तक ले जाते हैं। जब आपकी सर्वश्रेष्ठ भावना दूसरे व्यक्ति की ओर प्रवाहित होती है। सर्वश्रेष्ठ के इस मिलन से समझ की एक बेहतर क्वालिटी दोनों में ही स्थापित होती है।

मूल रूप से जब आप लोगों को पसंद करने लगते हैं, तो लोग भी आपको पसंद करने लगते हैं। हमारे समय में अमेरिका में रहने वाले सबसे लोकप्रिय व्यक्तियों में से एक है स्वर्गीय विल रॉजर्स। उन्होंने एक ज़बरदस्त वाक्य कहा था जिसे मैं कभी नहीं भुला पाऊँगा, ''मैं कभी किसी ऐसे व्यक्ति से नहीं मिला जिसे मैंने पसंद न किया हो।'' यह थोड़ा अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है, परंतु मुझे विश्वास है कि विल रॉजर्स ऐसा नहीं मानते थे। वे लोगों के बारे में इसी तरह महसूस करते थे और इसका परिणाम यह था कि लोग उनकी तरफ़ ऐसे खुल जाते थे जैसे फूल सूरज के सामने खुले जाते हैं।

कई बार यह कमज़ोर आपत्ति उठायी जाती है कि कुछ लोगों को पसंद करना या प्रेम करना बहुत मुश्किल होता है। माना कि गई लोगों को पसंद करना ज्यादा आसान होता है, परंतु अगर हम किसी व्यक्ति को जानने का गंभीर प्रयास करें, तो हमें हर व्यक्ति में ऐसे गुण मिल जायेंगे जो प्रशंसनीय होंगे या पसंद करने लायक होंगे।

एक व्यक्ति के साथ यह समस्या थी कि वह उन लोगों के प्रति चिढ़ की भावनाओं को जीतना चाहता था जिनके साथ वह जुड़ा हुआ था। कई लोगों को वह बुरी तरह नापसंद करता था। उनसे वह बुरी तरह चिढ़ता था, परंतु उसने इन भावनाओं को जीत लिया। उसने बस हर व्यक्ति के बारे में ऐसे गुणों की सूची बनाई जिनकी प्रशंसा की जा सकती थी। हर दिन वह इस सूची में कुछ न कुछ जोड़ने की कोशिश करता था। उसे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि जिन लोगों के बारे में वह

सोचता था कि वह उन्हें पसंद नहीं करता था, उनमें कई सुखद गुण थे। दरअसल, एक बार उनके आकर्षक गुणों के बारे में सजग होने के बाद वह यह नहीं समझ पा रहा था कि वह उन्हें क्यों नापसंद करता था। ज़ाहिर है कि जब वह दूसरों के बारे में यह खोज कर रहा था तो वे भी उसमें नये और पसंद किये जाने वाले गुणों को देख रहे थे।

अगर आप जीवन में इस बिन्दु तक संतोषजनक मानवीय संबंध स्थापित किये बिना पहुँच गये हों तो यह न मान लें कि आप इसे बदल नहीं सकते, परंतु समस्या को सुलझाने के लिये आपको बहुत निश्चित क़दम अवश्य उठाने होंगे। आप बदल सकते हैं और लोकप्रिय व्यक्ति बन सकते है, जिसे लोग पसंद करेंगे और जिसका सम्मान करेंगे बशर्ते आप प्रयास करने के इच्छुक हो। मैं आपको याद दिला दूँ जैसा मैं अक्सर खुद को याद दिलाता रहता हूँ कि औसत व्यक्ति की सबसे सुखद त्रासदियों में से एक यह प्रवृत्ति होती है कि हम जीवन भर अपनी ग़लतियों को आदर्श बनाने में गुज़ार देते हैं। हम एक ग़लती को विकसित करते हैं और इसे पालते-पोसते हैं और इसे कभी नहीं बदलते। ग्रामोफ़ोन के दोषपूर्ण रिकॉर्ड में फँसी हुई सुई की तरह यह उसी पुरानी धुन को बार-बार बजाती रहती है। आपको सुई को उस दोषपूर्ण स्थान से निकालना, होगा, इसके बाद वहाँ किसी तरह का शोर नहीं होगा बल्कि सामंजस्यपूर्ण मधुर धुन होगी।

मानवीय संबंधों में ग़लतियो को परिपूर्ण बनाने में अपने जीवन का और अधिक वक़्त बर्बाद न करें। अपने जीवन का बाक़ी समय दोस्तों की अपनी महान् क्षमताओं को परिपूर्ण बनाने में बितायें क्योंकि व्यक्तिगत संबंध सफल जीवन के लिये अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

लोगों द्वारा खुद को पसंद करवाये जाने का एक और महत्त्वपूर्ण तत्त्व है कि आप सामने वाले के ईगो को बढ़ावा देने का अभ्यास करों। हम सबके लिये ईगो हमारे व्यक्तित्व का सार होने के कारण पवित्र होता है। हर व्यक्ति में खुद को महत्त्वपूर्ण समझने की आदत और सामान्य इच्छा होती है। अगर मैं आपके अहं को चोट पहुँचाता हूँ, तो हो सकता है कि आप समय उस बात को हँसी में उड़ा दें, परंतु मैंने आपको गहरी चोट पहुँचायी है। दरअसल, मैंने आपके प्रति असम्मान दर्शाया है और हालाँकि आप मेरे प्रति दयाभाव बनाये रखेंगे, परंतु जब तक कि आप आध्यात्मिक

रूप से अत्यधिक विकसित नहीं होंगे, आप अंदर से मुझे ज़्यादा पसंद नहीं करेंगे।

दूसरी तरफ़, यदि मैं आपके आत्म-सम्मान को बढ़ावा देता हूँ और आपके व्यक्तिगत महत्त्व की भावना में योगदान देता हूँ तो मैं आपके ईगो के प्रति काफ़ी सम्मान दर्शा रहा हूँ। मैं सर्वश्रेष्ठ रूप में होने में आपकी मदद कर रहा हूँ और इसलिये आप मेरे इस कार्य को पसंद करेंगे। आप मेरे प्रति कृतज्ञ होंगे और मुझे पसंद करेंगे।

दूसरे व्यक्ति के ईगो को पिचकाने की प्रक्रिया को अहिस्ता से भी किया जा सकता है, परंतु आप हम इस बात का अंदाज़ा नहीं लगा सकते कि सिर्फ़ एक वाक्य या नज़रिये से सामने वाले को कितना बुरा लग सकता है, जबकि आपका उसे नीचा दिखाने का कोई इरादा नहीं था। यह रहा वह तरीक़ा जिससे ईगो अक्सर पिचकता है-

अगली बार जब आप समूह में हों और कोई व्यक्ति चुटकुला सुना रहा हो, जिसे सुनकर आपको छोड़कर हर व्यक्ति हँस रहा हो, तभी हँसी के ख़त्म होने के बाद आप व्यंग्य से यह कहें, ''चुटकुला तो अच्छा है। मैंने इसे पिछले महीने ही अमुक मैग्ज़ीन में पढ़ा है।''

निश्चित रूप से आपने अपने सुपीरियर ज्ञान का प्रदर्शन करके खुद को महत्त्वपूर्ण तो साबित कर दिया, परंतु इससे चुटकुला सुनाने वाले व्यक्ति पर क्या असर हुआ। आपने उससे एक अच्छा चुटकुला सुनाने की संतुष्टि छीन ली। आपने उसे उसकी क्षणिक लोकप्रियता के मंच से उत्तार दिया और सारा ध्यान अपनी ओंर खींच लिया। दरअसल आपने उसके गुब्बारे की सारी हवा निकाल दी और आपने उसे पूरी तरह पंचर कर दिया। वह अपनी क्षणिक लोकप्रियता का आनंद ले रहा था, परंतु आपने उसे इससे दूर खींच लिया। आपने जो किया उसके लिये आपको उस समूह का कोई व्यक्ति पसंद नहीं करेगा और निश्चित रूप से वह व्यक्ति तो कतई नहीं करेगा जिसके चुटकुले का आपने सत्यानाश किया था। चाहे आपको चुटकुला पसंद आया हो या न आया हो, उसे सुनाने वाले और सुनने वालों को इसका आनंद लेने दें। याद रखें वह थोड़ा संकोची और दब्बू किस्म का व्यक्ति हो सकता है। उसे इस तरह की लोकप्रियता और सराहना प्राप्त करके अच्छा महसूस होता। लोगों के गुब्बारे में से हवा न निकालें। उसमें हवा भरें और वे आपसे प्रेम करेंगे।

इस अध्याय को लिखते समय मैंने अपने पुराने और प्रिय मित्र डॉ. जॉनसन

डब्ल्यू. हॉफ़मैन के साथ एक यात्रा का आनंद लिया जो एक समय ओहियो वेल्लियन युनिवर्सिटी के प्रेसिडेंट रह चुके हैं। जब मैं उनके साथ पैसाडेना में बैठा तो मैंने एक बार फिर महसूस किया कि यह महान् व्यकित्व मेरे लिये हमेशा कितना मायने रखता था। कई साल पहले कॉलेज से मेरे ग्रैजुएशन के पहले वाली रात को हमने समारोह का आयोजन किया था जिसमें वे उपस्थित थे और जहाँ उन्होंने भाषण दिया था। डिनर के बाद उन्होंने मुझसे कहा था कि मैं उनके साथ घर तक घूमने चलूँ।

जून की सुंदर चाँदनी रात थी। पूरी पहाड़ी भर वे मुझसे जीवन और अवसरों के बारे में बात करते रहे और उन्होंने मुझे बताया कि जब मैं बाहरी दुनिया में क़दम रखूँगा तो कितना रोमांच मेरा इंतजार कर रहा है। जब हम उनके घर के सामने खड़े थे तो उन्होंने मेरे कंधे पर अपना हाथ रखा और कहा, ''नॉर्मन, मैंने हमेशा तुम्हें पसंद किया है। मुझे तुझमें विश्वास है। तुममें महान संभावनायें हैं। मुझे तुम पर हमेशा गर्व रहेगाँ। तुममें वह सब है जिससे तुम सफल हो सकते हो।'' ज़ाहिर है उन्होंने मेरी क्षमताओं का अनुमान कुछ ज़्यादा ही लगा लिया था, परंतु निश्चित रूप से यह किसी इन्सान को कम आँकने से बहुत बेहतर है।

चूँकी यह जून का महीना था और ग्रेजुएशन के पहले वाली रात थी और मेरे दिल में रोमांच था, इसलिये मेरी भावनायें बिलकुल सतह के क़रीब थीं और मैंने उन्हें आँसुओं के कोहरे के बीच से गुड नाइट कहा जिन्हें छुपाने की मैंने कोशिश की। इस बात को कई साल हो चुके है। परन्तु जुन की उस रात को इतने साल पहले कही गयी उनकी बात को या उनकी बात कहने के अंदाज को मैं कभी भी नहीं भूला। मैं इतने सालों तक उनसे प्रेम करता रहा।

मैंने यह पाया कि उन्होंने इसी तरह की बातें कई और लड़के-लड़कियों से कही थीं। जो अब बड़े हो गये हैं और वे भी उन्हें प्रेम करते हैं, क्योंकि उन्होंने उनके व्यक्तित्व का सम्मान किया था और उन्हें लगातार ऊपर उठाया था। वर्षों तक वे मुझे और दूसरे लोगों को हमारी छोटी-छोटी उपलब्धियों पर बधाई देते रहे और उनकी प्रशंसा का एक शब्द हमारे लिये महत्त्व रखता था। कोई हैरानी नहीं कि युवकों का यह सम्मानित मार्गदर्शक हज़ारों लोगों का प्रेम और निष्ठा हासिल करने में कामयाब हुआ जिसके जीवन को उन्होंने स्पर्श किया था।

आप जिसकी भी बेहतर, अधिक दृढ़ और अधिक अच्छा इन्सान बनने में

मदद करेंगे वह आपको आजीवन निष्ठा देगा। आप जितने अधिक लोगों को बना सकते हो, बनायें। इस निःस्वार्थ भाव से करें। इसे करें क्योंकि आप उन्हें पसंद करते हैं और इसलिये क्योंकि आप उनमें सम्भावनायें देखते हैं। इसे अपनायें और आपको दोस्तों की कभी कमी नहीं होगी। आपके बारे में हमेशा अच्छा सोचा जायेगा। लोगों को बनायें और उनसे सचमुच प्रेम करें। उनकी भलाई करें और उनका सम्मान और प्रेम आपकी ओर प्रवाहित हो जायेगा।

लोग आपको पसंद करें इसके मूलभूत सिद्धांतों पर अधिक लंबा कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि वे बहुत आसान हैं और अपनी सच्चाई खुद बयान करते हैं। बहरहाल, मैं यहाँ पर दस व्यावहारिक नियमों की सूची दे रहा हूँ जिनसे आप दूसरों का सम्मान हासिल कर सकते हैं। यह सिद्धांत कितने कारगर है, यह असंख्य बार प्रदर्शित हो चुका है। इनका अभ्यास करें जब तक कि आप इनमें पारंगत न हो जायें और जब तक लोग आपको पसंद न करने लगेः

1. नाम याद रखने की आदत डालें। अगर आपको नाम याद नहीं रहते, तो इसमें सामने वाला यह समझ सकता है कि आप उसमें रुचि नहीं ले रहे हैं। किसी भी व्यक्ति का नाम उसके लिये बहुत महत्त्वपूर्ण होता है।

2. आरामदेह व्यक्ति बनें, ताकि आपके साथ रहने से कोई तनाव में न रहे- उस तरह के व्यक्ति जैसे पुराना जुता या पुराना कोट होता है।

3. रिलैक्सड रहने का गुण विकसित करें, ताकि आप छोटी-छोटी चीज़ों या बातों का बुरा न मानें।

4. अहंकारी न बनें। ऐसे संकेत न दे जैसे आप सब कुछ जानते हों। स्वाभाविक बनें और विनम्र रहें।

5. रोचक बनने का गुण विकसित करें ताकि लोग आपके साथ रहना चाहे और आपके साहचर्य से कुछ प्रेरक या महत्त्वपूर्ण बात जान सके।

6. अपने व्यक्तित्व से खुरदुरे तत्त्वों को निकालने के बारे में अध्ययन करें, उन तत्त्वों को भी जिनके बारे में आप जानते न हो।

7. सच्चे ईसाई आधार पर हर ग़लतफहमी को दूर करने का प्रयास करें। नफ़रत और शिकायतों को अपने दिल से निकाल दें।

8. लोगों को पसंद करने की कोशिश करें जब तक कि आप सचमुच ऐसा न करने लगे। याद रखें विल राजर्स ने क्या कहा था, ''मैं कभी किसी ऐसे व्यक्ति से नहीं मिला जिसे मैंने पसंद न किया हो।'' ऐसा बनने की कोशिश करें।

9. किसी की उपलब्धि पर बधाई देने का अवसर न छोड़ें, न ही किसी के दुखः या निराशा में सहानुभूति व्यक्त करने का कोई अवसर, जाने दें।

10. गहन आध्यात्मिक अनुभव हासिल करें ताकि आप लोगों को बेहतर और सुखी बनाने में मदद कर सकें, ताकि वे जीवन का सामना अधिक प्रभावी ढंग से और अधिक दृढ़ता से कर सें। आप लोगों को प्रेम और सुख देंगे, तो वे भी आपको बदले में प्रेम और सुख देंगे। (सकरात्मक सोच की शक्ति)

प्रतिष्ठा पर बहुत कुछ निर्भर करता है- हर क़ीमत पर इसकी रक्षा करें (मोहात्मक) द्वारा-रॉबर्टग्रीन

विचार

प्रतिष्ठा शक्ति की नींव है। सिर्फ़ प्रतिष्ठा के माध्यम से ही आप दबदबा क़ायम कर सकते हैं और विजय पा सकते हैं। एक बार भी फिसल जाने पर आप असुरक्षित हो जाएँगे और आप पर सभी दिशाओं से हमला होने लगेगा। ऐसी प्रतिष्ठा बनाएँ कि उस पर कोई हमला न कर सकें। हमेशा संभावित हमलों के बारे में सचेत रहें और उनके होने से पहले ही उन्हें ख़त्म कर दें। इस दौरान अपने शत्रुओं की प्रतिष्ठा में सेंध लगाकर उन्हें नष्ट करना सीखें। फिर दूर खड़े हो जाएँ और जनता को उनकी आलोचना करने दें।

शक्ति की कुंजी

हमारे चारों तरफ़ के लोग, भले ही वे हमारे सबसे पक्के दोस्त हो, हमेशा कुछ हद तक रहस्यमय और अबूझ रहते हैं। उनके चरित्र में ऐसे ख़ुफिया गलियारे होते हैं, जिन्हें वे प्रकट नहीं करते हैं। अगर हम इस बारे में ज़्यादा सोचेंगे, तो हम परेशान हो जाएँगे, क्योंकि जब

तक हम उन्हें पूरी तरह से नहीं जानते हैं, तब तक हम उनका मूल्यांकन कैसे कर सकते हैं। इसलिए हम इस तथ्य को नज़रअंदाज कर देते हैं और सिर्फ़ दिखावे के आधार पर ही लोगों का मूल्यांकन करते हैं। हमारे मूल्यांकन का आधार वह होता है, जो हमारी आँखों को साफ़ नज़र आता है - कपड़े, मुद्राएँ, शब्द, कार्य। समाज में प्रदर्शन ही हमारे सारे मूल्यांकनों का पैमाना होता है। आप किसी दूसरे तरीक़े से विश्वास उत्पन्न नही कर सकते। आपकी एक गलती या आपके हुलिये में एक भी अजीब या अकस्मात परिवर्तन विनाशकारी साबित हो सकता है।

इस वजह से यह बेहद महत्वपूर्ण है कि आप ख़ुद अपनी प्रतिष्ठा बनाएँ और उसे बनाए रखें।

यह प्रतिष्ठा दिखावे के ख़तरनाक खेल में आपकी रक्षा करेगी। यह प्रतिष्ठा लोगों की पैनी आँखों को यह पता नहीं चलने देगी कि आप सचमुच कैसे हैं। इससे आप दुनिया से अपनी शर्तों पर अपना मूल्यांकन करवाते हैं- यह स्थिति सचमुच सशक्त है। शुरुआत में आपको किसी एक विशेष गुण की प्रतिष्ठा बनाने के लिए मेहनत करना चाहिए, चाहे यह उदारता हो ईमानदारी या चतुरता। यह गुण आपको दूसरों से अलग कर देता है और इसके कारण दूसरे आपके बारे में बातें करने लगते हैं। इसके बाद आप अपनी प्रतिष्ठा का प्रचार ज़्यादा से ज़्यादा लोगों में करें (हालांकि यह काम बहुत समझदारी से करना चाहिए। धीरे-धीरे प्रतिष्ठा बनाएँ और इसकी नींव मज़बूत बनाएँ।) कुछ समय बाद जंगल में लगी आग की तरह तेज़ी से फैल जाएगी।

ठोस प्रतिष्ठा आपके वज़न को बढ़ाती है और आपकी मेहनत के बिना आपकी शक्तियों को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाती है। यह आपके चारों तरफ़ आभामंडल भी बना सकती है, जिससे लोगों के मन में आपके प्रति सम्मान, यहाँ तक कि भय भी जाग जाए। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान उत्तर अफ्रीकी रेगिस्तान में लड़ते समय जर्मन सेनापति अर्तिन रोमल ने चालाकी और धोखेबाज़ी की प्रतिष्ठा बना ली थी, जिससे

उनसे लड़ने वाली हर सेना दहशत में आ जाती थी। हालाँकि उनकी सेना मुट्ठी भर बची थी और ब्रिटिश टैंकों की संख्या उनसे पाँच गुना ज़्यादा थी, लेकिन रोमल के आने की ख़बर सुनते ही पूरे के पूरे शहर खाली हो जाते थे।

अपनी प्रतिष्ठा को किसी एक विशेष गुण पर आधारित करें। यह इकलौता गुण-चाहे कार्यकुशलता हो या आकर्षण-विज़िटिंग कार्ड की तरह आपका परिचय देता है और लोगों पर जादू कर देता है।

प्रतिष्ठा किसी खाज़ाने की तरह क़ीमती है, इसलिए इसे सावधानिपूर्वक हासिल करें और सुरक्षित रखें। ख़ासकर शरुआत में आपको दृढ़ता से इसकी रक्षा करनी चाहिए और इस पर होने वाले हमलों का पहले से ही अनुमान लगा लेना चाहिए। ठोस प्रतिष्ठा बनने के बाद अपने शत्रुओं की आलोचनात्मक टिप्पणियों से नाराज़ या रक्षात्मक होने पर ऐसा लगेगा कि आपको अपनी प्रतिष्ठा पर भरोसा नहीं है और आप असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। इसके बजाय उच्च मार्ग अपनाएँ और कभी अपना बचाव करने की हड़बड़ी न दिखाएँ। दूसरी तरफ़, किसी दूसरे की प्रतिष्ठा पर हमला करना बहुत कारगर अस्त्र है, ख़ास तौर पर जब वह आपसे ज़्यादा शक्तिशाली हो। इस तरह के युद्ध में नुक़सान उसी का होता है,क्योंकि खोने के लिए उसी के पास ज़्यादा होता है। अगर वह आप पर पलटकर हमला करेगा तो उसके सामने एक छोटा लक्ष्य होगा, क्योंकि आपकी प्रतिष्ठा अभी कम है। लेकिन इस रणनीति का प्रयोग बहुत सूझ-बूझ से करना चाहिए। यह नहीं लगना चाहिए कि आप ओछे प्रतिशोध में उलझ रहे हैं। अगर आप चतुराई से अपने दुश्मन की प्रतिष्ठा को धूमिल नहीं कर पाए, तो अनजाने में ही आप अपनी प्रतिष्ठा को धूमिल कर लेंगे।

कभी भी किसी पर हमला करते समय ज़्यादा दूर तक न जाएँ, क्योंकि इससे लोग उसकी ग़लतियों पर कम और आपके प्रतिशोध पर ज़्यादा ध्यान देने लगेंगे। अगर आपकी प्रतिष्ठा ठोस बन चुकी हो, तो अपने विरोधी को कमज़ोर करने के लिए अधिक सूक्ष्म रणनीतियों का प्रयोग करें, जैसे व्यंग्य या मखौल, इससे लोग आपको मज़ेदार मसखरा मानने लगेंगे। शक्तिशाली शेर अपने रास्ते में आने वाले चूहे के साथ मज़े लेता है- अगर वह कोई दूसरी प्रतिक्रिया करने लगे, तो उसकी भयावह प्रतिष्ठा ही ख़त्म हो जाएगी।

तस्वीरः

हीरों और माणिकों से भरी खान। आपने इस खान को खोजा खुदाई की थी और अब आपकी दौलत सुनिश्चित है। इसकी रक्षा अपने प्राणों से ज़्यादा करें। हर दिशा से डकैत और चोर इसे लूटने के लिए आएँगे। अपनी दौलत के बारे में असावधान न रहें और लगातार इसे चमकाते रहें- समय जवाहरातों की चमक फीकी कर देगा और उन्हें औझल करके दफ़न कर देगा। विशेषज्ञ की रायः इसलिए मैं यह चाहूँगा कि हमारा दरबारी चतुराई और निपुणता से अपने आंतरिक मूल्य को बढ़ाए और यह सुनिश्चित करे कि जब वह नए अनाजन देशों में जाए, तो उसकी अच्छी प्रतिष्ठा उससे पहले ही वहाँ पहुँच जाए बहुमत की राय पर आधारित शोहरत बहुत महत्वपूर्ण होती है। इससे व्यक्ति में विश्वास जागता है। साधारण लोग बड़ी आसानी से ऐसे व्यक्ति पर विश्वास कर लेते हैं, क्योंकि उनके लिए बहुमत की राय महत्वपूर्ण होती है।(बाल्डेसेर कास्टिग्लिओन,)

हर क़ीमत पर सबका ध्यान आकर्षित करें (असम्यक) द्वारा

रॉबर्ट ग्रीन

विचार

हर चीज़ का मूल्यांकन दिखने के आधार पर किया जाता है। जो नज़र नहीं आता है, उसका कोई मूल्य ही नहीं होता है। इसलिए भीड़ का हिस्सा न बनें और गुमनामी से दफ़न होकर न रहें। सबसे अलग हटकर दिखें। हर क़ीमत पर लोगों की नज़रों में रहे। नीरस और भीरु जनता से ज़्यादा महान् ज़्यादा दिलचस्प और ज़्यादा रहस्यमय दिखकर ऐसा चुंबक बन जाएँ, जो सबका ध्यान अपनी तरफ़ खींचे।

शक्ति की कुंजी

अपने आस-पास के लोगों से ज़्यादा चमकदार दिखना एक ऐसी कला है, जो जन्मजात नहीं होती है। आपको लोगों का ध्यान आकर्षित करना सीखना पड़ता है। अपने केरियर की शुरुआत में ही आपको अपना नाम और प्रतिष्ठा किसी एक गुण या छवि से जोड़ लेना चाहिए ताकि आप दूसरे लोगों से अलग नज़र आ सकें। यह छवि कुछ भी हो सकती है, जैसे कपड़ों की विशेष शैली या व्यक्तित्व की कोई अनूठी बात,

जिससे लोगों की रुचि जागे और वे आपके बारे में बातें करें। एक बार जब आपकी प्रतिष्ठा स्थापित हो जाती है, तो आपके पास एक दिखावे का आसमान तैयार हो जाता है, जिसमें आपका ही सितारा जगमगाता रहता है।

यह सोचना ग़लत है कि आपका यह अनुठा रूप विवादास्पद नहीं होना चाहिए या लोगों की आलोचना बुरी बात है। सच्चाई इसके बिल्कुल विपरीत है। आलोचना से बचने की कोशिश न करें। किसी दूसरे को अपने से ज़्यादा कुख्यात न बनने दें। आपको इस बात की परवाह नहीं होना चाहिए कि आपकी तरफ़ ध्यान क्यों दे रहे हैं। लोगों का ध्यान चाहे जिस कारण से आपकी ओर आकर्षित हो रहा है, आपको फ़ायदा ही होता है।

लुई चौदहवें के दरबार में बहुत से योग्य लेखक, कलाकार, सुंदरियाँ और चारित्रवान स्त्री-पुरुष थे। लेकिन ड्यूक डक ले लॉज़न के बारे में जितनी बातें होती थी, उतनी किसी और के बारे में नहीं होती थी। डयूक नाटे थे और बहुत ही बदतमीज़ी का व्यवहार करते थे। वे राजा की प्रेमिकाओं के साथ सोते थे और खुलेआम न सिर्फ़ दूसरे दरबारियों के साथ बदतमीज़ी करते थे, बल्कि सम्राट का भी अपमान करते रहते थे। बहरहाल, लुई को ड्यूक का अनुठापन इतना मोहक लगता था कि वे दरबार में उनकी अनुपस्थिति बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। इसका कारण स्पष्ट है : ड्यूक के चारित्र की विचित्रता सबका ध्यान आकर्षित करती थी। उनसे मंत्रमुग्ध होने के बाद लोग हर क़ीमत पर उन्हें अपने आस-पास रखना चाहते थे।

समाज हमेशा ऐसे लोगों को पसंद करता है, जो औसत लोगों से बड़े या अलग हों। इसलिए ऐसे गुण विकसित करें, जिनके कारण आप दूसरों से अलग दिखें और आपके प्रति लोगों का ध्यान आकर्षित हो। इसलिए विवाद को गले लगाएँ, यहाँ तक कि स्कैंडल को भी। लोग आपको नज़रअंदाज़ करें, इससे तो बेहतर है कि वे आपकी आलोचना करें। कम से कम आप चर्चा में तो रहेंगे।

सवाल यह है कि अगर आप किसी छोटे पद पर हैं, जहाँ आपके पास दूसरों का ध्यान आकर्षित करने के बहुत कम अवसर हैं, तब क्या करें ? इस स्थिति में कारगर तरीका यह है कि अपने आस-पास के सबसे मशहूर और शक्तिशाली व्यक्ति पर हमला कर दें। जब सोलहवीं सदी की युवा रोमन दास पियेत्रो अरेटिनो कवि के रूप में मशहूर होना चाहता था, तो उसने पालतू हाथी के प्रति पोप के प्रेम का मखौल

उड़ाते हुए कई व्यंग्य कविताएँ लिखीं। इस हमले से अरेटिनो तत्काल लोगों की नज़रों में चढ़ गया। किसी ऊँचे पद पर बैठे व्यक्ति की आलोचना करने का भी यही प्रभाव होता है। बहरहाल इतना याद रखें कि जनता का ध्यान आकर्षित होने के बाद इस रणीनीति का प्रयोग कभी-कभार ही करें, क्योंकि बार-बार ऐसा करने पर लोग इसे गंभीरता से नहीं लेंगे।

एक बार लोगों की नज़रों में चढ़ने के बाद आपको उनका ध्यान आकर्षित करने के नए-नए तरीक़े खोजने चाहिए। अगर आप ऐसा नहीं करेंगे, तो लोग-बाग आपसे ऊब जाएँगे, आपकी तरफ़ ज़्यादा ध्यान नहीं देंगे और किसी नए सितारे की तरफ आकर्षित हो जाएँगे। इस खेल में निरंतर सावधानी और रचनात्मक की ज़रूरत होती है। पाब्लो पिकासो ने ख़ुद को कभी पृष्ठभूमि से ग़ुम नहीं होने दिया। वे हमेशा जान-बूझकर जनता के सामने पेंटिग्स की एक नई शृंखला रख देते थे, जो सबकी अपेक्षाओं के विपरीत होती थी। वे मानते थे कि लोग उनकी पेटिंग की शैली से ज़्यादा परिचित हों, इससे पहले ही कुछ बुरी और विचलित करने वाली पेंटिंग्स बनाकर उन्हें हैरान कर देना चाहिए। यह अच्छी तरह से समझ लें लोग ख़ुद को उस व्यक्ति से श्रेष्ठ मानते हैं, जिसके काम के बारे में वे पहले से भविष्यवाणी कर सकते हैं। अगर आप उनकी अपेक्षाओं के विपरीत जाकर उन्हें यह बता देते हैं कि नियंत्रण की बागडोर आपके हाथ में है, तो आपको उनका सम्मान भी मिलेगा और आप लंबे समय तक उनका ध्यान भी आकर्षित कर पाएँगे।

तस्वीर :

लाइमलाइट। जो अभिनेता इस चमकदार रोशनी में क़दम रखता है, उसकी उपस्थिति ज़्यादा प्रबल हो जाती है। सबकी आँखें उसी पर टिकी रहती हैं। लाइमलाइट के सँकरे दायरे में एक बार में सिर्फ़ एक अभिनेता के खड़े होने की ही जगह होती है। ख़ुद को लाइमलाइट में रखने की पूरी कोशिश करें। अपने कार्यों को बहुत बड़ा, दिलचस्प और विवादास्पद बनाएँ, ताकि रोशनी हमेशा आप पर ही रहे और बाक़ी सब अभिनेता अँधेरे में रहें।

विशेषज्ञ की रायः स्वयं को प्रदर्शित करें और सबकी नज़रों के सामने रहें...जो दिखता नहीं है, एक तरह से उसका अस्तित्त्व ही नहीं होता है...रोशनी के कारण ही दुनिया दिखाई देती है। प्रदर्शन से कई खाली स्थान भरते हैं, कई कमियाँ ढकती है

और नया जीवन मिलता है, ख़ासकर तब जब इसके पीछे सच्ची योग्यता होती है। (बाल्तेसर ग्रेशियन, 1601-1658)

काम दूसरों से करवाएँ, लेकिन श्रेय खुद लें (गलत उपाय द्वारा)

– रॉबर्ट ग्रीन

विचार

अपने लक्ष्यों तक पहुँचने के लिए दूसरों की समझदारी, ज्ञान और मेहनत का इस्तेमाल करें। इस तरह से आप न सिर्फ़ अपना बहुमूल्य समय और ऊर्जा बचाएँगे, बल्कि इससे यह छवि भी बनेगी कि आप बहुत कार्यकुशल और तीव्र हैं। लोग आपको याद रखेंगे और आपके सहायक ग़ुमनामी के अँधेरे में खोकर रह जाएँगे। दूसरों से जो काम करवा सकते हो, उसे ख़ुद कभी न करें।

शक्ति की कुंजी

ताक़त की दुनिया जंगल की दुनिया की तरफ है : कुछ जानवर ख़ुद शिकार करके जीते हैं, जबकि ज़्यादातर जानवर(गीदड, गिद्ध) दूसरों के शिकार पर जीते हैं। बाद वाली श्रेणी के जानवरों में कल्पनाशीलता कम होती है और वे अक्सर शक्ति की ज़रूरत वाले काम को नहीं कर सकते हैं। वे जल्दी ही यह बात समझ लेते हैं कि अगर वे इंतज़ार, जो उन्हें कोई न कोई ऐसा जानवर मिल जाएगा, जो उनके लिए शिकार कर देगा। नादान न बनें: इस समय जब आप किसी गधे की तरह काम कर रहे हैं, तो आपके ऊपर भी गिद्ध मँडरा रहे हैं और आपकी रचनात्मकता से फ़ायदा उठाने का तरीक़ा सोच रहे हैं। इसके बारे में शिकायत करना या आग बबूला होना बेकार है। बेहतर यह है कि आप ख़ुद की रक्षा करें और इस खेल को निपुणता से खेलें। शक्ति का आधार स्थापित करने के बाद आप गिद्ध बन जाएँ। इस नीति पर चलने से बहुत समय और मेहनत बच जाएगी।

कलाकार पीटर पॉल र्‍यूबेन्स के कैरियर के उत्तरार्द्ध में उनकी पेंटिंग्स की माँग बहुत बढ़ गई। उन्होंने एक सिस्टम बना लिया: वे अपने बड़े स्टूडियों में दर्जनों अच्छे पेंटर्स को नौकरी पर रखते थे। उनमें से एक कपड़े बनाने में माहीर था, तो दूसरा पृष्ठभूमि बनाने में और इसी तरह बाक़ी क्षेत्रों के विशेषज्ञ भी थे। उनके इस स्टूडियों में

एक साथ बहुत से चित्रों पर काम चलता था। जब कोई महत्वपूर्ण ग्राहक स्टूडिओ देखने आता था, तो र्‌यूबेन्स उस दिन नौकरी पर रखे पेंटर्स को भगा देते थे। जब ग्राहक बालकनी से देखता था, तो उसे र्‌यूबेन्स अविश्वसनीय तेज़ी और ऊर्जा से कई पेंटिंग्स पर एक साथ काम करते दिखाई देते थे। ग्राहक हैरान रह जाता था कि यह व्यक्ति कितना असाधारण है, जो इतने कम समय में इतने सारे मास्टरपीस पेंट कर सकता है।

यही इस नियम का सार हैः काम दूसरों से करवाना सीखें और श्रेय ख़ुद लें, ताकि लोगों को यह लगे कि आपमें अनूठी शक्ति है। अगर आप हर काम ख़ुद करना चाहेंगे, तो आपकी ऊर्जा ख़ामख्वाह बर्बाद होगी और आप थकान के मारे निढाल हो जाएँगे। ऐसे लोगों को ढूँढें, जिनमें वे योग्यताएँ और रचनात्मकता हो, जिनकी आपमें कमी हो। या तो उन्हें नौकरी पर रख लें और उनके काम पर अपने नाम का लेवल लगाना शुरू कर दें या फिर उनके काम पर अपना नाम चिपकाने का कोई और तरीक़ा खोजे। इस तरह से उनकी रचनात्मकता लोगों के सामने आपकी रचनात्मकता बन जाती है और आप जीनियस नज़र आने लगते हैं।

इस नियम का इस्तेमाल आप एक और तरीक़े से भी कर सकते हैं। इसमें आपको परजीवी की तरह अपने समकालीनों की मेहनत का फ़ायदा उठाने की ज़रूरत नहीं होती। इस तरीके का सार यह है कि ज्ञान और बुद्धि के वृहद कोण यानी अतीत का इस्तेमाल करें। आइसैक न्यूटन ने इसे ''कद्दावर लोगों के कंधों पर खड़े होने'' की संज्ञा दी थी। उनका मतलब यह था कि अपनी खोज करते समय उन्होंने अतीत के लोगों की सफलताओं का सहारा लिया था। न्यूटन ने प्राचीन, मध्ययुगीन और रैनेसा युग के वैज्ञानिकों के ज्ञान का भरपूर लाभ उठाया था और वह यह बात जानते थे। शेक्सपियर ने दूसरों की कहानियों पर नाटक लिखे। उन्होंने प्लूटार्क से कथानक, चरित्र-चित्रण, यहाँ तक कि संवाद भी चुरा लिए, क्योंकि वे जानते थे कि सूक्ष्म मनोविज्ञान को समझने और चुटीले संवाद लिखने में प्लूटार्क का कोई सानी नहीं था। बाद के कितने सारे लेखकों ने शेक्सपियर से सीखा या चुराया है ?

चाहे वे रणनीति के प्राचीन महारथी हों, मानवीय मूर्खता के इतिहासकार हों मानवीय चरित्र की गहराइयों में डूबे लेखक हों सभी का ज्ञान धूल खा रहा है। यह ज्ञान इंतजार कर रहा है कि आप आएँ और उनके कंधों पर खड़े हो जाएँ। उनका

वाक-कौशल आपका वाक-कौशल बन सकता है, उनकी निपुणता आपकी निपुणता बन सकती है और वे सभी कब्र से उठकर कभी लोगों को यह बताने नहीं आएँगे कि आपने उनका ज्ञान चुराया है। आपके पास दो रास्ते हैंः या तो मौलिक काम करने की कोशिश में जिंदगी भर मेहनत करें, लगातार ग़लतियाँ करें, अपना समय और ऊर्जा बरबाद करें। या फिर अतीत की सेनाओं का इस्तेमाल करके किला फ़तह कर लें। जैसा बिस्मार्क ने एक बार कहा था, ''मूर्ख कहते हैं कि वे अपने अनुभव से सीखते हैं। मैं दूसरों के अनुभव से लाभ उठाना पसंद करता हूँ।''

तस्वीरः गिद्ध। जगल के सभी जीवों में उसका काम सबसे आसान होता है। दूसरों की कड़ी मेहनत से उसका काम आसान बन जाता है। उनके मरने से उसे भोजन मिलता है। गिद्ध पर निगाह जमाए रखें - जब दूसरे कड़ी मेहनत करते हैं, तो वह उनके ऊपर मँडराता रहता हैं, उसे बुरा न मानें, बल्कि उसके साथ जुड़ जाएँ।

विशेषज्ञ की रायः इस छोटे से जीवन में सीखने को बहुत कुछ है और ज्ञान के बिना ज़िंदगी अर्थहीन है। इसलिए सबसे ज्ञान हासिल करना एक उत्कृष्ट तकनीक है। दूसरों की जीतोड़ मेहतन के बल पर आप महानता की प्रतिष्ठा हासिल करना सीखें।(बाल्तेसर ग्रेशियन, 1601-1658)

अनन्त विभाव त्याग से अनन्त वैभव पाऊँ !

(चालः- रात कली इक....) **- आचार्य कनकनन्दी**

धन्य है! मेरा आत्म जगा है, अनात्म भावों को पर ही माना है।
परद्रव्य तो सदा पर ही रहते हैं, स्वआत्म द्रव्य को ही स्वतत्त्व माना है।।
मेराद्रव्य है चैतन्य द्रव्य, अनन्तज्ञान दर्शन सुख वीर्य।
अनात्म भाव है रागद्वेष मोह, परद्रव्य है शेष छहों ही द्रव्य।।
ऐसी ही श्रद्धा व प्रज्ञा के कारण, मेरा सुप्त आत्मा जागृत हुआ है।
देवशास्त्र गुरु निमित्त पाकर, स्वआत्म उपलब्धि हेतु जागृत हुआ है।
अनादिकाल से मोह के कारण, अनात्म भावों को स्वरूप माना था
परद्रव्यों को भी अपना मानकर, उसके हेतु 'अंहकार' 'ममकार' किया था
शरीर इन्द्रिय मन को स्व माना था, इन के हेतु भी रागद्वेष मोहादि किया था
धनजन भाई बन्धु कुटुम्ब हेतु भी, रागद्वेष काम क्रोधादि किया था।
भोगोपभोग का/(से) ही सुख भी माना, सत्ता सम्पत्ति प्रसिद्धि को अपनी माना

इस हेतु ही नवकोटि से काम किया, इस में ही जीवन का लक्ष्य माना
इनके अर्जन रक्षण संवर्द्ध को ही, स्व कर्तव्य से स्व अधिकार भी माना।
इस हेतु दीन हीन अहंकार भी किया, इस हेतु शत्रु मित्र उपकारी अपकारी माना
इस हेतु ईर्ष्या घृणा तृष्णा भी किया, परनिन्दा अपमान वैर विरोध किया
अन्याय अत्याचार पापाचारदि किया, आक्रमण युद्ध हत्या बलात्कारादि किया
इस हेतु भी धर्मपालन क्रिया, असिमासि कृषि वाणिज्य किया।
शिक्षा संस्कृति सभ्यता पाला, संगीत कला सेवा विज्ञान सीखा।।
अनन्तभवों में अनन्त बार भी किया, इस में रचा-पचा-आचार्य बना।
इन का नकल से प्रतिस्पर्द्धादि किया,ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि/(वर्चस्व) पाया।
(ये सभी)अभी मेरे हेतु विसर्जन मल सम/(अतः) इनके प्रति नहीं 'अहंकार' ममकार
कमलसम इन से निर्लिप्त भाव, स्वआत्म वैभव प्राप्ति ही लक्ष्य है।
मेरा वैभव है अलौकिक-अमूल्य, तीन लोक के वैभव से भी अधिक मूल्य।
अनन्त चक्री इन्द्रों से भी बहु ऐश्वर्य, स्वऐश्वर्य प्राप्ति ही 'कनक' का ध्येय।।

ग.पु.का. 9.6.2019 रात्रि 9.10

संदर्भ-

शरीर जनित दुःख

भवंति प्राप्य सत्संगमशुचीनि शुचीन्यपि।
स कायः संततापायस्तदर्थ प्रार्थना वृथा।। (18) इष्टो.

By the contact of which even pure object are rendered impure and which is a constant of pleasure is vinity!

हे भद्र! जिस काय के लिए अनेक दुःखों को प्राप्त करके भी वस्तु-सम्पत्ति प्राप्ति की इच्छा करता हैं, उस शरीर के बारे में भी तुम्हें निम्न प्रकार से विचार करना चाहिए।

यह शरीर नित्य क्षुधादि के द्वारा ताप को पहुँचाता है। इस शरीर के सम्बन्ध से पवित्र भोजन, नवीन वस्त्र आदि भी अपवित्र हो जाते हैं। जो संताप के लिए एवं अशुचि के लिए कारणभूत तथा विनाशिक है ऐसे शरीर के लिए व्यर्थ कामना क्यों

करते हो ? उसके उपकार में क्यों लगे हुए हो ?

समीक्षा–शरीर नोकर्म तथा रक्त, मांस, हड्डी, मल, वात, पित्त, कफ से निर्मित है इसलिए यह अनात्म स्वरूप भौतिक वस्तु हैं। इसलिए यह आत्मा के लिए बन्धन, भार स्वरूप तो है ही तथा अनेक कष्टों के लिए कारणभूत हैं।

यजीवस्योपकाराय तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकं।(19)।

Whatever action is beneficial of the soul is harmful to the body, and whatever action is beveficial to the body is harmful to the soul!

पुनः शिष्य प्रश्न करता है, हे गुरु भगवन्! यदि धनादि बाह्य वस्तु से शरीर का उपकार नहीं होता है तो न हो किन्तु धन से तथा उपवास आदि तपश्चरण से आत्मा का उपकार होगा क्योंकि धन से धर्म का अनुष्ठान होता है और उससे आत्मा का उपकार अवश्य होगा इसी कारण धन ग्रहणीय है। इसके प्रत्युत्तर में गुरु शिष्य को सम्बोधित करते हैं कि अनशनादि तप अनुष्ठान है, उस से जीव के पूर्व उपार्जित पाप कर्मों का क्षपण होता है। इसलिए वह शरीर को कष्ट देने वाला होने पर भी आत्मा के लिये उपकारक है। पुनः जो धन आदि परिग्रह भोजन, वस्त्र आदि, क्षुधा,तृष्णा आदि को दूर करके शरीर के उपकारक बनते है वह भी जीव के लिये अपकार कहे क्योंकि उसके उपार्जन में जो आरम्भ राग, द्वेष,लोभ, तृष्णा, संग्रह आदि करना पड़ता है उससे पाप का उपार्जन होता है और पाप से दुर्गति होती है और वह दुर्गति दुःख का कारण बनती है, इसलिये धनादि अपकारक जानना चाहिये। इसलिये धनादि से जीव के उपकारक की गन्ध भी नहीं है, परन्तु धर्म से ही जीव को सुख मिलने के कारण धर्म ही उपकारक है। यहाँ पुनः शिष्य पूछता है कि हे भगवन्! यदि ऐसा है तब यह क्यों कहा जाता है कि 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' अर्थात् शरीर धर्म साधने के लिये प्रथम/प्रधान कारण है। इसलिये तो शरीर का नाश नहीं हो उसी प्रकार यत्न करना चाहिये। यह भी नहीं कि शरीर का नाश न हो और आत्मा का उपकार न हो अर्थात् काय को कष्ट दिये बिना भी आत्मा का उपकार ध्यान के द्वारा सुलभ है। 'तत्त्वानुशासन' में कहा भी है-

यदा त्रिकं फलं किंचित्फलमामुत्रिकं च यत्।
एतस्य द्विगुणस्यापि ध्यानमेवाग्र कारणम्।। 27।।

जो कुछ इह लोक और परलोक सम्बन्धी फल हैं वे सब ध्यान के माध्यम से

प्राप्त हो जाते हैं, इसलिये कहा है, 'झाणस्स ण दुल्लहं किं पि' अर्थात् ध्यान के लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। इस प्रकार ध्यान से शरीर का एवं आत्मा का उपकार हो जाता है।

समीक्षा : शरीर, धन, वस्त्रादि, पौद्गलिक होने के कारण और आत्मा इससे भिन्न अमूर्तिक चैतन्य होने के कारण जो आत्मा के लिये उपकारी है, वह शरीर के लिये अपकारी है और जो आत्मा के लिये अपकारी है, वह शरीर के लिये उपकारी है; क्योंकि आत्मा का पोषण रत्नत्रय, क्षमादि 10 धर्मों से होता है और शरीर का पोषण आहार, वस्त्र, पानी आदि से होता है, इस कारण यह है कि शरीर पौद्गलिक होने के कारण उसका पोषण पौद्गलिक आहारादि से होना स्वभाविक है और आत्मा अमूर्तिक चैतन्य द्रव्य होने से रत्नत्रयादि आत्मिक गुणों से आत्मा का पोषण होना स्वाभाविक है और विरोधी द्रव्य से शोषण/अपकार होना भी स्वाभाविक है। संसारी जीव जो शरीर, मन, वचनादि से युक्त है वह पौद्गलिक होने के कारण उसका उपकार भी पुद्गल से ही होता है।

शरीर वाङ् मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम्।(19)

The function of matter forms the physical basis at the bodies, speech, mind the respiration at the souls.

शरीर, वचन, मन और प्राणापान यह पुद्गलों का उपकार है। इस सूत्र में संसारी जीवों के लिये पुद्गल का क्या-क्या उपकार है उसका वर्णन किया गया है। संसारी जीवों के पांचों शरीर, मन, वचन,श्वासोच्छ्वास पुद्गल से बनते हैं अर्थात् शरीर आदि पुद्गलस्वरूप है। गोम्मट्टसार जीवकाण्ड में विश्व में स्थित 23 पौद्गलिक वर्गणाओं में से किन-किन वर्गणाओं से उपरोक्त शरीर आदि बनते हैं उसका वर्णन निम्न प्रकार किया है-

आहारवग्गणादो तिण्णि सरीराणि होंतिं उस्सासो।
णिस्सासो वि य तेजोवग्गणखंधादु तेजंगे।। (607)

तेईस जाति की वर्गणाओं में से आहार वर्गणा के द्वारा औदारिक, वैक्रियक, आहारक ये तीन शरीर और श्वासोच्छ्वास होते हैं तथा तेजोवर्गणारूप स्कन्ध के द्वारा तैजस शरीर बनता है।

भासमणवग्गणादो कमेण भासा मणं च कम्मादो।

अट्ठं विहकम्मदव्वं होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।। (608)

भाषा वर्गणा के द्वारा चार प्रकार का वचन, मनोवर्गणा के द्वारा हृदय स्थान में अष्टदल कमल के आकार का द्रव्यमन तथा कार्माण वर्गणा के द्वारा आठ प्रकार के कर्म बनते हैं ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

''शरीर आदि पौद्गलिक है'' इसकी सिद्ध करने के लिये तार्किक शिरोमणि भट्ट अकलंक देव ने राजवार्तिक में तार्किक एवं वैज्ञानिक प्रणाली से बहुत सुन्दर वर्णन किया है, जो निम्न प्रकार है-

1. **शरीर पौद्गलिकः-** औदारिक, वैक्रियक,आहारक,तैजस और कार्माण इन पाँचों शरीर के कर्म मूलतः सूक्ष्म होने से अप्रत्यक्ष है और जो स्थूल है वह प्रत्यक्ष है। मन अप्रत्यक्ष ही है। वचन और श्वासोच्छ्वास कुछ प्रत्यक्ष और कुछ अप्रत्यक्ष है। क्योंकि वे इन्द्रियों के विषय नहीं है अतः इंद्रियों के अतीत है अतः शरीर पुद्गल है।

2. **वचन पौद्गलिक :-** पुद्गल के निमित्त से होने से दोनों प्रकार के वचन पौद्गलिक हैं। वचन दो प्रकार के हैं- द्रव्यवचन और भाववचन। दोनों ही पौद्गलिक हैं क्योंकि दोनों ही पुद्गल के कार्य हैं अर्थात् पुद्गल के निमित्त से ही होते हैं। भाववचन, वीर्यान्तराय और मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण के क्षयोपशम तथा अङ्गोपाङ्ग नाम-कर्म के उदय के निमित्त से होते हैं। अतः भाववचन पुद्गल का कार्य होने से पौद्गलिक है। यदि वीर्यान्तराय और मति-श्रुत-ज्ञानावरण रूप पौद्गलिक कर्मों का क्षयोपशम नहीं हो तो भाव वचन हो नहीं सकता। भाववचन के सामर्थ्य वाले आत्मा के द्वारा प्रेर्यमाण पुद्गल वचनरूप से परिणाम होते हैं अर्थात् आत्मा के द्वारा तालु आदि क्रिया से जो पुद्गल वर्गणाएँ वचनरूप परिणत होती हैं उसे द्रव्यवचन कहते हैं। श्रोतेन्द्रिय का विषय होने से द्रव्य वचन भी पौद्गलिक है।

प्रश्नः यदि शब्द पौद्गलिक है तो एक बार ग्रहण होने के बाद उनका पुनः ग्रहण क्यों नहीं होता ? अर्थात् एक बार उच्चारण करने के बाद वही शब्द पुनः सुनाई क्यों नहीं देता ?

उत्तर : बिजली के समान असंहतत्त्व होने से पुनः गृहीत नहीं होते हैं। जिस प्रकार चक्षु इन्द्रिय के द्वारा उपलब्ध बिजली द्रव्य एक बार चमक कर फिर शीघ्र ही विशीर्ण (नष्ट) हो जाता है अतःपुनः आँखों से दिखाई नहीं देता है, उसी प्रकार श्रोतेन्दिय के द्वारा एक बार उपलब्ध (सुने गये) वचन सम्पूर्ण से शीघ्र ही विर्शीण हो

जाने से पुनः दुबारा नहीं सुनाई देते।

प्रश्न : यदि शब्द पौद्गलिक है तो चक्षु आदि के द्वारा शब्दों का ग्रहण क्यों नहीं होता ?

उत्तर:घ्राण के द्वारा ग्रहण करने योग्य होने पर गन्ध द्रव्य रसादि की अनुपलब्धि के समान चक्षु आदि के द्वारा गृहीत नहीं होते हैं। जैसे घ्राणेन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य गन्धद्रव्य के साथ अविनाभावी रूप, रस, स्पर्श आदि विद्यमान रहकर के भी सूक्ष्म होने से घ्राणेन्द्रिय के द्वारा उपलब्ध नहीं होते अर्थात् घ्राणेन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य नहीं होते हैं, उसी प्रकार श्रोतेन्द्रिय के विषयभूत शब्द सूक्ष्म होने से चक्षु आदि शेष इन्द्रियों के द्वारा गृहीत नहीं होते। शब्द को अमूर्तिक कहना उचित नहीं है क्योंकि शब्द का मूर्तिमान पदार्थ के द्वारा ग्रहण, प्रेरणा और अवरोध देखा जाता है। शब्द अमूर्तिक है 'अमूर्त आकाश का गुण होने से' यह कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि मूर्तिमान, पौद्गलिक पदार्थों के द्वारा ग्रहण होता है। कर्णेन्द्रिय का विषय होने से मूर्तिमान श्रोतेन्द्रिय के द्वारा उसका ग्रहण होता है। जो अमूर्त होता है वह किसी मूर्तिमान इन्द्रिय के द्वारा गाह्य नहीं होता। वायुके द्वारा प्रेरित रूई की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रेरित किया जाता है क्योंकि विरूद्ध दिशा में स्थित व्यक्ति को यह शब्द सुनाई देता है, अर्थात् जिस तरफ की वायु होती है उधर ही अधिक सुनाई देता है, वायु के प्रतिकूल होने से समीपस्थ को भी नहीं सुनाई देता है। इससे अनुमान होता है कि शब्द प्रेरित है और यंत्र के द्वारा प्रेरित कर दूसरे देशों में भिजवाया भी जाता है। अमूर्त पदार्थ मूर्तिमान पदार्थो के द्वारा प्रेरित नहीं होता। नल, बिल, रिकार्ड आदि में नदी के जल की तरह शब्द रोका भी जाता, परन्तु अमूर्तिक पदार्थ मूर्तिमान किसी पदार्थ के द्वारा अवरूद्ध हुआ नहीं देखा जाता है। मूर्तिमान पदार्थो के द्वारा अभिभूत-तिरस्कृत होने से भी शब्द को मूर्तिमान जानना चाहिए। जैसे सूर्य के प्रकाश से अभिभूत(तिरोभूत) होने वाले, होने से तारा आदि मूर्तिक हैं, उसी प्रकार सिंह की दहाड़, हाथी की चिंघाड और भेरी का घोष आदि महान् शब्द के द्वारा शकुनि (पक्षियों) के मन्द शब्द तिरोभूत होते हैं तथा कांसा आदि के बर्तन गिरने पर उत्पन्न ध्वनि, अन्य ध्वनि के आरंभ में हेतु होती है अथवा गिरी-गहर-कुप आदि में शब्द करने पर प्रतिध्वनि उत्पन्न होती है। पर्वत, गुफाओं आदि से टकराकर प्रतिध्वनि होती है। अतः शब्द मूर्तिक है।

प्रश्न: अमूर्तिक पदार्थों का भी मूर्तिमान पदार्थों के द्वारा तिरोभाव देखा जाता है,

जैसे मूर्तिमान मदिरा के द्वारा अमूर्तिक विज्ञान (इन्दियज्ञान) का तिरोभाव देखा जाता है। इसलिए मूर्तमान पदार्थों से मूर्तिमान पदार्थों का ही अभिभव होता है यह निश्चित हेतु नहीं है!

उत्तर : मूर्तिक मदिरा के द्वारा इन्द्रियज्ञान का जो अभिभव देखा जाता है वह भी मूर्त से मूर्तिक का ही अभिभव है, क्योंकि क्षायोपशमिक ज्ञान इन्द्रियादि पुद्गलों के आधीन होने से पौद्गलिक है, अन्यथा (यदि विज्ञान पौद्गलिक नहीं है तो) आकाश के समान विज्ञान का भी मदिरा आदि के द्वारा अभिभव नहीं हो सकता था। अतः हेतुओं से शब्द पौद्गलिक पदार्थ सिद्ध होता है।

3.मन पौद्गलिक :- मन दो प्रकार का हैं- एक भावमन और दूसरा द्रव्यमन। ये दोनों ही मन पौद्गलिक है,क्योंकि दोनों ही मन पुद्गल से सम्बन्धित हैं। लब्धि और उपयोग रूप भाव मन है, वह पुद्गल निमित्तक और पुद्गल का अवलम्बन लेने वाला होने से पौद्गलिक है अर्थात् भावमन में भी ज्ञानावरणादि कर्म के क्षयोपशम रूप पुद्गल का अवलम्बन रहता है। गुण-दोष विचार और स्मरणादिरूप व्यापार में तत्पर आत्म के अनुग्रहाक ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम के लाभ के कारण वीर्य विशेष के संचय करने में समर्थ जो पुद्गल वर्गणाएँ मनरूप से परिणत होती है, उनको द्रव्य मन कहते हैं, पुद्गल के निमित्त और अवलम्बन से रचित होने से द्रव्य मन तो पौद्गलिक ही है।

4. प्राणापान पौद्गलिक- कोष्ठ (उदर) की वायु को उच्छवास लक्षण प्राण कहते हैं। वीर्यान्तराय, ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम और अंगोपाङ्ग नाम कर्म के उदय, की अपेक्षा रखने वाले आत्मा के द्वारा शरीर कोष्ठ से जो वायु बाहर निकाली जाती है, उसको उच्छवास लक्षण प्राण कहते हैं। बाह्य वायु को अभ्यन्तर करना अपान है। वीर्यान्तराय, ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपाशम और अंगोपाङ्ग नाम कर्म के उदय की अपेक्षा रखने वाले आत्मा के द्वारा जो बाह्य वायु भीतर ली जाती है, उस निःश्वास को अपान कहते हैं। ये श्वासोच्छवास (प्राणापान) आत्मा के जीवन में कारण होते हैं। अतः इनके द्वारा पुद्गल आत्मा का उपकार करता है। इन सबका प्रतिघात देखा जाता है। अतः ये सब मूर्तिक हैं। उन प्राणापान और वाङ (वचन), मन, श्वासोच्छवास का प्रतिघात आदि होने से इन को मूर्तिमान (पौद्गलिक) समझना चाहिए। जैसे भव के कारणों से तथा वज्रपात आदि के शब्दों के द्वारा मन का प्रतिघात और मदिरा आदि के

द्वारा मन का अभिभव देखा जाता है। हाथ से मुख और नाक को बन्द कर देने पर श्वासोच्छवास का प्रतिघात और कण्ठ में फल आदि के आ जाने से श्वासोच्छ्वास का अभिभव देखा जाता है। अतः मन और श्वासोच्छ्वास पौद्गलिक हैं क्योंकि मूर्तिक पदार्थो के द्वारा अमूर्तिक पदार्थ के अभिघात और अभिभव (रूकावट) नहीं हो सकते।

श्वासोच्छ्वास रूपी कार्य से आत्मा का अस्तित्त्व सिद्ध होता है। इनके द्वारा आत्मा के अस्तित्त्व की सिद्धि होती है, क्योंकि प्राणापानादि कर्म आत्मा के निमित्य से होते हैं, अतः आत्मा रूपी कारण के बिना श्वासोच्छ्वास रूपी कार्य नहीं हो सकता, जैसे किसी यन्त्रमूर्ति की चेष्टाएँ उसके प्रयोक्ता का अस्तित्त्व बताती है उसी प्रकार प्राणापानादि क्रियाएँ क्रियावान आत्मा की सिद्धि करती है।

सुखदुःख जीवित मरणोपग्रहाश्च। (20)

जीवानां सुख-दुख-जीवित-मरण-उपग्रहाश्य पुद्गलानमुपकारो भवति।

सुख,दुख, जीवन और मरण ये भी पुद्गलों के उपकार हैं।

19 नम्बर सूत्र में बताया गया कि, परिणाम विशेष से गृहित पुद्गल जैसे शरीर, वचन, मन और श्वासोच्छ्वास चतुष्टय क्रम से गमन, व्यवहरण चिन्तवन और श्वासोच्छवास रूप से जीव का उपकार करते है वैसे सुख आदि भी पुद्गल कृत उपकार हैं उसको बताने के लिए इस सूत्र में कहते हैं कि सुख, दुःख, जीवन, मरण भी पुद्गल कृत उपकार है।

(1) सुखः- बाह्य कारणों और साता वेदनीय के उदय से जो प्रसन्नता होती है उसे सुख कहते हैं। अब आत्मा से बद्ध साता वेदनीय कर्म द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादि बाह्य कारणों से परिपाक को प्राप्त होता है।

(2) दुःख :- असाता वेदनीय कर्म के उदय से आत्म परिणामों में संक्लेश होता है वह दुःख है। जब आत्मा से बद्ध असातावेदनीय कर्म द्रव्य, क्षेत्रादि बाह्य कारणों से परिपाक को प्राप्त होते हैं, तब आत्मा के जो संक्लेश परिणाम होते हैं, उसे दुःख कहा जाता है अर्थात् साता वेदनीय के उदय में सुख और असाता वेदनीय के उदय को दुःख कहते हैं।

(3) जीवितः-भवस्थिति के कारणभूत आयुकर्म द्रव्य से सम्बन्धित जीव

के प्राणापान लक्षण क्रिया का उपरम नहीं होना जीवित है। भवधारण में कारण आयु नाम का कर्म है, उस आयु कर्म के उदय से प्राप्त भवस्थिति को धारण करने वाले जीव के पूर्वोक्त प्राणापान (श्वासोच्छ्वास) क्रिया का चलते रहना उसका उच्छेद नहीं होना ही जीवित है।

(4) मरण :- उस श्वासोच्छ्वास का उच्छेद ही मरण है। जीव के जीवित में कारणभूत श्वासोच्छवास का उच्छेद ही जीव का मरण है।

जीवों चरित्तदंसणणाणट्ठिदो तं हि ससमयं जाण।
पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं।।2।। स.सार

टीका :- 'समय' शब्द का अर्थ इस प्रकार है :- 'सम्' उपसर्ग है, जिनका अर्थ 'एकपना' है, और 'अय् गतौ' धातु है, जिसका अर्थ गमन और ज्ञान भी है; इसलिए एक साथ ही (युगपद्) जानना और परिणमन करना, - यह दोनों क्रियायें एकत्वपूर्वक करे वह समय है। यह जीव नामक पदार्थ एकत्वपूर्वक एक ही समय में परिणमन भी करता है और जानता भी है। इसलिये वह समय है। यह जीव पदार्थ सदा ही परिणामस्वरूप स्वभाव में रहता हुआ होने से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकतारूप अनुभूति लक्षणायुक्त सत्ता सहित है। और जीव चैतन्यस्वरूपतासे नित्य उद्योतरूप निर्मल स्पष्ट दर्शनज्ञानज्योतिस्वरूप है; और वह जीव, अनन्त धर्मों में रहने वाला जो एक धर्मीपना है उसके कारण जिसे द्रव्यत्व प्रगट है ऐसा है;(क्योंकि अनन्त धर्मों की एकता द्रव्यत्व है)। और वह क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान अनेक भाव जिसका स्वभाव होने से जिसने गुणपर्यायों को अंगीकार किया है, ऐसा है। (पर्याय क्रमवर्ती होती है और गुण सहवर्ती होता है; सहवर्ती को अक्रमवर्ती भी कहते हैं।) और वह, अपने और पर द्रव्यों के आकारों को प्रकाशित करने की सामर्थ्य होने से जिसने समस्त रूप को प्रकाशने वाली एकरूपता प्राप्त की है- ऐसा है, (अर्थात् जिसमें अनेक वस्तुओं के आकार प्रतिभासित होते हैं, ऐसे एक ज्ञान के आकाररूप है) इस विशेषण से, ज्ञान अपने को ही जानता है परको नहीं, इस प्रकार एकाकार को ही मानने वाले का, तथा अपने को नहीं जानता किन्तु परको जानता है, इस प्रकार अनेकाकार को ही मानने वाले का व्यवच्छेद हो गया। और वह, अन्य द्रव्यों के जो विशिष्ट गुण-अवगाहन-गति-स्थिति-वर्तना हेतुत्व और रूपित्व हैं, उनके अभाव के कारण और असाधारण चैतन्यरूपता स्वभाव के सद्भाव के कारण आकाश, धर्म,

अधर्म, काल और पुद्गल- इन पांच द्रव्यो से भिन्न है। और वह, अनन्त द्रव्यों के साथ अत्यन्त एक क्षेत्रावगाहरूप होने पर भी, अपने स्वरूप से न छूटने से टंकोत्कीर्ण चैतन्य स्वभाव रूप है।(इस विशेषण से वस्तु-स्वभाव का नियम बताया है।) ऐसा जीव नामक पदार्थ समय है।

जब यह (जीव), सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ केवलज्ञान को उत्पन्न करने वाली भेदज्ञान ज्योति का उदय होने से, सर्व पर द्रव्यों से छूटकर दर्शन-ज्ञान स्वभाव में नियत वृत्तिरूप (असित्वरूप) आत्म तत्त्व के साथ एकत्व रूप में लीन होकर प्रवृत्ति करता है तब दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित होने से अपने स्वरूप को एकत्वरूप से एक ही समय में जानता तथा परिणमता हुआ वह 'स्वसमय' है, इस प्रकार प्रतीत किया जाता है; किन्तु जब वह, अनादि अविद्या रूपी केले के मूल की गांठ की भाँति (पुष्ट हुआ) मोह उसके उदयानुसार प्रवृत्ति को आधीनता से, दर्शन ज्ञान स्वभाव में नियत वृत्तिरूप आत्मतत्त्व से छूटकर परद्रव्य के निमित्त से उत्पन्न मोहराग द्वेषादि भावों में एकता रूप से लीन होकर प्रवृत्त होता है तब पुद्गल कर्म के (कार्माणस्कन्धरूप) प्रदेशों में स्थित होने से युगपत् पर को एकत्वपूर्वक जानता और पररूप से एकत्वपूर्वक परिणमित होता हुआ 'परसमय' है, इस प्रकार प्रतीति की जाती है। इस प्रकार जीव नामक पदार्थ की स्व समय और परसमय रूप द्विविधता प्रगट होती है।

भावार्थः- जीव नामक वस्तु को पदार्थ कहा है। 'जीव' इस प्रकार अक्षरों का समूह 'पद' है और उस पद से जो द्रव्य पर्याय रूप अनेकांतस्वरूपता निश्चित की जाये वह पदार्थ है। यह जीव पदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी सत्ता स्वरूप है, दर्शनज्ञानमयी चेतनास्वरूप है, अनंतधर्मस्वरूप द्रव्य है, द्रव्य होने से वस्तु है, गुणपर्यायवान है, उसका स्व पर प्रकाशक ज्ञान अनेकाकाररूप एक है, और वह (जीव-पदार्थ) आकाशादि से भिन्न असाधारण चैतन्यगुणस्वरूप है, तथा अन्य द्रव्यों के साथ एक क्षेत्र में रहने पर भी अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता। ऐसा जीव नामक पदार्थ समय है। जब वह अपने स्वभाव में स्थित हो तब स्वसमय है, और परस्वभाव-रागद्वेष मोह रूप होकर रहे तब पर समय है। इस प्रकार जीव के द्विविधता आती है।।

एयत्तणिच्छगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि।।3।।

टीका :- यहां 'समय' शब्द से सामान्यतया सभी पदार्थ कहे जाते हैं क्योंकि व्युत्पत्ति के अनुसार 'समयते' अर्थात् एकी भाव से (एकत्वपूर्वक) अपने गुण-पर्यायों को प्राप्त होकर जो परिणमन करता है सो समय है। इसलिये धर्म-अधर्म-आकाश-काल-पुद्गलजीव द्रव्यस्वरूप लोक में सर्वत्र जो कुछ जितने जितने पदार्थ हैं वे सभी निश्चय से (वास्तव में) एकत्वनिश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता को पाते हैं, क्योंकि अन्य प्रकार से उसमें सर्वसंकर आदि दोष आ जायेंगे। वे सब पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहने वाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं-स्पर्श करते हैं तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते, अत्यन्त निकट एकक्षेत्रावगाहरूप से तिष्ठ रहे हैं तथापि वे सदाकाल अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते, पररूप परिणमन न करने से अनन्त व्यक्तिता नष्ट नहीं होती इसलिये वे टंकोत्कीर्ण की भांति (शाश्वत) स्थित रहते हैं और समस्त विरुद्ध कार्य तथा अविरुद्ध कार्य दोनों की हेतुता से वे सदा विश्व का उपकार करते हैं- टिकाये रखते हैं। इस प्रकार सर्व पदार्थों का भिन्न 2 एकत्व सिद्ध होने से जीव नामक समय को बंध की कथा से ही विसंवाद की आपत्ति आती है; तो फिर बंध जिसका मूल है ऐसा जो पुद्गल कर्म के प्रदेशों में स्थित होना,वह जिसका मूल है ऐसा परसमयपना, उससे उत्पन्न होने वाला (परसमय-स्वसमयरूप) द्विविधपना उसको (जीव नाम के समय को)कहां से हो? इसलिये समय के एकत्व का होना ही सिद्ध होता है।

भावार्थ :- निश्चय से सर्व पदार्थ अपने 2 स्वभाव में स्थित रहते हुए भी शोभा पाते हैं। परन्तु जीव नामक पदार्थ की अनादि काल से पुद्गल कर्म के साथ निमित्त रूप बंध-अवस्था है; उससे इस जीव में विसंवाद खड़ा होता है, इसलिये वह शोभा को प्राप्त नहीं होता। इसलिये वास्तव में विचार किया जाये तो एकत्व ही सुन्दर है; उससे यह जीव शोभा को प्राप्त होता है।।

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।।4।।

टीका :- इस समस्त जीव लोक को, काम भोग सम्बन्धी कथा एकत्व से विरुद्ध होने से अत्यन्त विसंवाद कराने वाली है (आत्मा का अत्यन्त अनिष्ट करने वाली है) तथापि पहले अनन्त बार सुनने में आई है, अनन्त बार परिचय में आई है, और अनन्त बार अनुभव में भी आई है। वह जीव लोक, संसार रूपी चक्र के मध्य

में स्थित है, निरन्तर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप अनन्त परावर्तन के कारण भ्रमण को प्राप्त हुआ है, समस्त विश्व को एक छत्र राज्य से वश करने वाला महा मोहरूपी भूत जिसके पास बैल की भांति भार वहन करता है, जोर से प्रगट हुए, तृष्णा रूपी रोग के दाह से अंतरंग में पीड़ा प्रगट हुई है, आकुलित हो होकर मृगजल की भांति विषयग्राम को (इन्द्रियविषयों के समूह को) जिसने घेरा डाल रखा है, और वह परस्पर आचार्यत्व भी करता है(अर्थात् दूसरों से कहकर उसी प्रकार अंगीकार करवाता है)। इसलिये काम भोग की कथा तो सबके लिये सुलभ है। किन्तु निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश से स्पष्ट भिन्न दिखाई देने वाला यह मात्र भिन्न आत्मा का एकत्व ही है, जो कि सदा प्रगट रूप से अन्तरङ्ग में प्रकाशमान है, तथापि कषायचक्र (कषायसमूह) के साथ एक रूप जैसा किया जाता है, इसलिये अत्यन्त तिरोभाव को प्राप्त हुआ है (ढक रहा है) वह, अपने में अनात्मज्ञाता होने से (स्वयं आत्मा को न जानने से) और अन्य आत्मा को जानने वालों की संगति सेवा न करने से, न तो पहले कभी सुना है, न परिचय में आया है और न कभी अनुभव में आया है, इसलिये भिन्न आत्मा का एकत्व सुलभ नहीं है।

भावार्थः- इस लोक में समस्त जीव संसार रूपी चक्र पर चढ़कर पंच परावर्तन रूप भ्रमण करते हैं। वहां उन्हें मोह कर्मोदय रूपी पिशाच के द्वारा जोता जाता है, इसलिये वे विषयों की तृष्णारूपी दाह से पीड़ित होते हैं; और उस दाह का इलाज (उपाय) इन्द्रियों के रूपादि विषयों को जानकर उनकी ओर दौड़ते हैं ; तथा परस्पर भी विषयों का ही उपदेश करते हैं। इस प्रकार काम तथा भोग की कथा तो अनन्तबार सुनी, परिचय में प्राप्त की और उसी का अनुभव किया इसलिये वह सुलभ है। किन्तु सर्व पर द्रव्यों से भिन्न एक चैतन्य चमत्कार स्वरूप अपने आत्मा की कथा का ज्ञान अपने को अपने से कभी नहीं हुआ, और जिन्हें वह ज्ञान हुआ है उनकी कभी सेवा नहीं की; इसलिये उसकी कथा न तो कभी सुनी, न परिचय किया और न अनुभव किया इसलिये उसकी प्राप्ति सुलभ नहीं, दुर्लभ है।।

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं।।5।।

टीका :- आचार्य कहते हैं कि जो कुछ मेरे आत्मा का निजवैभव है, उस सबसे मैं इस एकत्व विभक्त आत्मा को दिखाऊँगा, ऐसा मैने व्यवसाय (उद्यम,

निर्णय) किया है। मेरे आत्मा का वह निज वैभव इस लोक में प्रगट समस्त वस्तुओं का प्रकाशक है, और 'स्यात्' पद की मुद्रा वाला जो शब्द ब्रह्म-अर्हन्त का परमागम है, उसकी उपासना से उसका जन्म हुआ है। ('स्यात्' का अर्थ 'कथंचित् है अर्थात् किसी प्रकार से किसी अपेक्षा से कहना। परमागम को शब्द ब्रह्म कहने का कारण यह है कि अर्हन्त के परमागम में सामान्य धर्मों के वचन गोचर समस्त धर्मों के नाम आते हैं और वचन से अगोचर जो विशेष धर्म हैं उनका अनुमान कराया जाता है; इस प्रकार वह सर्व वस्तुओं का प्रकाशक है, इसलिये उसे सर्वव्यापी कहा जाता है, और इसीलिए उसे शब्दब्रह्म कहते हैं।) समस्त विपक्ष-अन्यवादियों के द्वारा गृहीत सर्वथा एकान्त रूप नय पक्ष के निराकरण में समर्थ अतिनिस्तुष निर्बाध युक्ति के अवलम्बन से उस निज वैभव का जन्म हुआ है। और निर्मल विज्ञान धन आत्मा में अन्तर्निमग्न (अन्तर्लीन) परम गुरु-सर्वज्ञ देव और अपरगुरु - गणधरादिक से लेकर हमारे गुरुपर्यन्त, उनके प्रसाद रूप से दिया गया जो शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश तथा पूर्वाचार्यों के अनुसार जो उपदेश है उससे निज वैभव का जन्म हुआ है। निरन्तर झरता हुआ- स्वाद में आता हुआ जो सुन्दर आनन्द है, उसकी मुद्रा से युक्त प्रचुर संवेदन स्वरूप स्वसंवेदन से निज वैभव का जन्म हुआ है। यों जिस जिस प्रकार से मेरे ज्ञान का वैभव है उस समस्त वैभव से दिखाता हूँ। मैं जो यह दिखाऊँ तो उसे स्वयमेव अपने अनुभव-प्रत्यक्ष से परीक्षा करके प्रमाण करना; और यदि कहीं अक्षर, मात्रा, अलंकार, युक्ति आदि प्रकरणों में चूक जाऊँ तो छल (दोष) ग्रहण करने में सावधान मत होना। शास्त्रसमुद्र के बहुत से प्रकरण है, इसलिए यहां स्वसंवेदनरूप अर्थ प्रधान है; इसलिए अर्थ की परीक्षा करनी चाहिए।

भावार्थ :- आचार्य आगम का सेवन, युक्ति का अवलंबन, पर और अपर गुरु का उपदेश और स्वसंवेदन-यों चार प्रकार से उत्पन्न हुए अपने ज्ञान के वैभव से एकत्व-विभक्त शुद्ध आत्मा का स्वरूप दिखाते हैं। श्रोताओं! उसे अपने स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष से प्रमाण करो; यदि कहीं किसी प्रकरण में भूल जाऊँ तो उतने दोष को ग्रहण मत करना। कहने का आशय यह है कि यहां अपना अनुभव प्रधान है; उससे शुद्ध स्वरूप का निश्चय करो।।

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव।।6।।

टीका :- जो स्वयं अपने से ही सिद्ध होने से (किसी से उत्पन्न हुआ न होने से), अनादि सत्तारूप है, कभी विनाश को प्राप्त न होने से अनन्त हैं, नित्य उद्योतरूप होने से क्षणिक नहीं है और स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति है, ऐसा जो ज्ञायक एक 'भाव' है, वह संसार की अवस्था में अनादि बन्ध पर्याय की निरूपणा से (अपेक्षा से) क्षीरनीर की भांति कर्म पुद्गलोंके के साथ एक रूप होने पर भी, द्रव्य की स्वभाव को अपेक्षा से देखा जाय तो दुरुन्त कषाय चक्र के उदय की (कषाय समूह के अपार उदयों की) विचित्रता के वश से प्रवर्त्तमान पुण्य-पाप को उत्पन्न करने वाले समस्त अनेक रूप शुभाशुभ भाव, उनके स्वभावरूप परिणमित नहीं होता(ज्ञायक भाव से जड़ भाव रूप नहीं होता) इसलिये वह प्रमत्त भी नहीं है और अप्रमत्त भी नहीं है; वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्न रूप से उपासित होता हुआ 'शुद्ध'कहलाता है।

और जैसे बाह्य (जलने योग्य पदार्थ) के आकार होने से अग्नि को दहन कहते हैं तथापि उसके दाह्यकृत अशुद्धता नहीं होती, उसी प्रकार ज्ञेयाकार होने से उस 'भाव' के ज्ञायकता प्रसिद्ध है, तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है; क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायक रूप से ज्ञात हुआ वह स्वरूप प्रकाशन की (स्वरूप की जानने की) अवस्था में भी, दीपक की भांति, कर्ताकर्म का अनन्यत्व (एकता) होने से ज्ञायक ही है स्वयं जानने वाला है इसलिए स्वयं कर्त्ता और अपने को जाना इसलिए स्वयं ही कर्म है। (जैसे दीपक घटपटादि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक है, और अपने को-अपनी ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है, अन्य कुछ नहीं; उसी प्रकार ज्ञायक का समझना चाहिये।)

भावार्थः- अशुद्धता पर द्रव्य के संयोग से आती है। उसमें मूल द्रव्य तो अन्य द्रव्य रूप नहीं होता, मात्र पर द्रव्य के निमित्त से अवस्था मलिन हो जाती है। द्रव्य-दृष्टि से तो द्रव्य जो है वही है, और पर्याय (अवस्था) दृष्टि से देखा जाये तो मलिन ही दिखाई देता है। इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञायकत्व मात्र है; और उसकी अवस्था पुद्गलकर्म के निमित्त से रागादिरूप मलिन है, वह पर्याय है। पर्याय दृष्टि से देखा जाये तो वह मलिन ही दिखाई देता है और द्रव्य दृष्टि से देखा जाय तो ज्ञायकत्व तो ज्ञायकत्व ही है; यह कहीं जड़त्व नहीं हुआ। यहाँ द्रव्य दृष्टि को प्रधान करके कहा है। जो प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद हैं वे परद्रव्य की संयोग जनित पर्याय हैं। यह अशुद्धता द्रव्य दृष्टि में गौण है, व्यवहार है, अभूतार्थ है, असत्यार्थ है, उपचार है।

द्रव्य दृष्टि शुद्ध है,अभेद है, निश्चय है, भूतार्थ है, सत्यार्थ परमार्थ है। इसलिये आत्मा ज्ञायक ही है; उसमें भेद नहीं हैं इसलिये वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है। 'ज्ञायक' नाम भी उसे ज्ञेय को जानने से दिया जाता है; क्योंकि ज्ञेय का प्रतिबिम्ब जब झलकता है तब ज्ञान में वैसा ही अनुभव होता है। तथापि उसमे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है, क्योंकि जैसा ज्ञान में प्रतिभासित हुआ वैसा ज्ञायक का ही अनुभव करने पर ज्ञायक ही है। 'यह जो मैं जानने वाला हूँ सो मैं ही हूँ, अन्य कोई नहीं' ऐसा अपने को अपना अभेद रूप अनुभव हुआ तब इस जानने रूप क्रियाका कर्ता स्वयं ही है, और जिसे जाना वह कर्म भी स्वयं ही है। ऐसा एक ज्ञायकत्व मात्र स्वयं शुद्ध है। यह शुद्धनय का विषय है। अन्य जो पर संयोग जनित भेद हैं, वे सब भेदरूप अशुद्धद्रव्यार्थिकनय के विषय है। अशुद्धद्रव्यार्थिकनय भी शुद्ध द्रव्य की दृष्टि में पर्यायार्थिक ही है इसलिये व्यवहारनय ही है ऐसा आशय समझना चाहिए।

यहां यह भी जानना चाहिए कि जिन मत का कथन स्याद्वादरूप है, इसलिए अशुद्धनय को सर्वथा असत्यार्थ न माना जायें; क्योंकि स्याद्वादप्रमाण से शुद्धता और अशुद्धता-दोनों वस्तु के धर्म हैं और वस्तु धर्म वस्तु का सत्त्व है; अन्तर मात्र इतना ही है कि ''अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से होती है। अशुद्धनय को यहां हेय कहा है क्योंकि-अशुद्धनय का विषय संसार है और संसार में आत्मा क्लेश भोगता है; जब स्वयं परद्रव्य भिन्न होता है तब संसार छूटता है और क्लेश दूर होता है। इस प्रकार दुःख मिटाने के लिये शुद्धनय का उपदेश प्रधान है। अशुद्धनय को असत्यार्थ कहने से यह न समझना चाहिए कि आकाश के फूल की भांति वह वस्तु धर्म सर्वथा ही नहीं है, ऐसा सर्वथा एकान्त समझने से मिथ्यात्व होता है; इसलिये स्याद्वाद की शरण लेकर शुद्धनय का आलम्बन लेना चाहिए। स्वरूप की प्राप्ति होने के बाद शुद्धनय का भी आलम्बन नहीं रहता। जो वस्तुस्वरूप है वह है-यह प्रमाणदृष्टि है। इसका फल वीतरागता है। इस प्रकार निश्चय करना योग्य है।

यहाँ, (ज्ञायकभाव) प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है ऐसा कहा है। वह गुणस्थानों की परिपाटी में छट्ठे गुणस्थान तक प्रमत्त और सातवें से लेकर अप्रमत कहलाता है। किन्तु यह सब गुणस्थान अशुद्धनय की कथनी में है; शुद्ध नय से तो आत्मा ज्ञायक ही है।

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो।।7।।

टीका :- इस ज्ञायक आत्मा को बन्ध पर्याय के निमित्त से अशुद्धता तो दूर रहो, किन्तु उसके दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी विद्यमान नहीं है; क्योंकि अनन्त धर्मोंवाले एक धर्मी में जो निष्णात नहीं है ऐसे निकटवर्ती शिष्यों को, धर्मी को बतलाने वाले कितने ही धर्मों के द्वारा, उपदेश करते हुए आचार्यों का यद्यपि धर्म और धर्मी का स्वभाव से अभेद है तथापि नाम से भेद करके व्यवहार मात्र से ही ऐसा उपदेश है कि ज्ञानी के दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है। किन्तु परमार्थ से देखा जाये तो अनन्त पर्यायों को एक द्रव्य पी गया होने से जो एक है ऐसे कुछ-मिले हुए आस्वाद वाले, अभेद, एक स्वभावी (तत्त्व) का अनुभव करने वाले को दर्शन भी नहीं है, ज्ञान भी नहीं है, चारित्र भी नहीं है, एक शुद्ध ज्ञायक ही है।

भावार्थ :- इस शुद्ध आत्मा के कर्मबन्ध के निमित्त से अशुद्धता होती है, यह बात तो दूर ही रही, किन्तु उसके दर्शन,ज्ञान, चारित्र के भेद नहीं है, क्योंकि वस्तु अनन्त धर्म रूप एकधर्मी है। परन्तु व्यवहारीजन धर्मों को ही समझते हैं, धर्मी को नहीं जानते; इसलिये वस्तु के किन्हीं असाधारण धर्मों को उपदेश में लेकर अभेद रूप वस्तु में भी धर्मों के नामरूप भेद को उत्पन्न करके ऐसा उपदेश दिया जाता है कि ज्ञानी के दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है। इस प्रकार अभेद में किया जाता है, इसलिए वह व्यवहार है। यदि परमार्थ से विचार किया जाये तो एक द्रव्य अनन्त पर्यायों को अभेद रूप से पी कर बैठा है, इसलिये उसमें भेद नहीं है।

यहां कोई कह सकता है कि पर्याय भी द्रव्य के ही भेद है, अवस्तु नहीं, तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जा सकता है ? उसका समाधान यह है:- यह ठीक है, किन्तु यहां दव्य दृष्टि से अभेद को प्रधान करके उपदेश दिया है। अभेद दृष्टि में भेद को गोण कहने से ही अभेद भलीभांति मालूम हो सकता है। इसलिये भेद को गोण करके उसे व्यवहार कहा है। यहां यह अभिप्राय है कि भेददृष्टि भी निर्विकल्प दशा नहीं होती और सरागी के विकल्प होते रहते हैं; इसलिये जहाँ तक रागदिक दूर नहीं हो जाते वहां तक भेद को गौण करके अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया गया है। वीतराग होने के बाद भेदाभेदरूप वस्तु का ज्ञाता हो जाता है, वहां नयका आलम्बन ही नहीं रहता।

सत्य-समता की शक्ति-मेरे अनुभव से/(में)
(सत्य समता से प्राप्त हो रहे हैं बहुविध लाभ)

(चाल :- 1. आत्मशक्ति ...2 क्या मिलिए....) - आचार्य कनकनन्दी

कर रहा हूँ मैं अनुभव सतत सत्य-समता (शान्ति) में शक्ति अनन्त।
अरिहंत सिद्ध इस हेतु दृष्टान्त, आगम अनुभव विज्ञान से ज्ञात।।
इससे विपरीत असत्य-असभ्य, इस से होती शक्ति क्षीण।
अतएव जो असत्य-असाम्यधारी, वह पाये पतन व दुःख भारी।।
विश्व इतिहास इस हेतु साक्ष्य, वर्तमान काल में सतत प्राप्य।
रावण कंस हिटलर प्रमुख, अप्रसिद्ध है संख्य असंख्य अनन्त।।(1)।।
मेरे अनुभव भी है अनेकानेक, बाल्यकाल से हो रहे घटित।
भले-कुज्ञान मोह स्वार्थ से पराभूत, जीव नहीं जानते हित-अहित।।
सत्य समता से मिले आत्मिक शक्ति, तनमन आत्मा की बढ़ती शक्ति।
बुद्धि लब्धि संवेदनशीलता भी बढ़ती, आध्यात्मिक विशुद्धि तीव्र बढ़ती।। (2)।।
शोध बोध व स्मरण शक्ति बढ़ती, स्व पर गुण दोषों की समीक्षा बढ़ती।
आत्मविश्लेषण से ले आत्म सुधार होते, नैतिक से ले आत्मिक गुण बढ़ते।।
इससे महान् से महान् कार्य होते अन्य लोग भी इस हेतु सहयोगी बनते।
संक्लेश द्वन्द्व वाद विवाद न होते, मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ होते।। (3)।।
विरोधी उदासीन भी सहयोगी बनते, स्वयमेव ख्याति पूजा लाभ मिलते।
प्रचार-प्रसार भी स्वयंमेव बढ़ते, इस हेतु अनावश्यक काम न होते।।
श्रद्धाभक्ति व्यवस्था बढ़ती जाती, भावात्मक प्रभावना बढ़ती जाती।
ध्यान अध्ययन शोध बोध, गद्य पद्य लेखन व ग्रन्थ प्रकाशन।।(4)।।
परनिन्दा से ले अपमानादि न होते, प्रेम संगठन से धर्म कर्म होते।
जो कार्य धन जन से न होते, वैसे कार्य सरल-सहज होते।।
ऐसे अनुभव मेरे लाखों हुए हैं जिससे अनुभव दृढ़तम हो रहे हैं।
आगम अनुभवों को सत्य पा रहा हूँ, परमसत्य समता का लक्ष्य 'कनक' पाऊँ।
(यह कविता परम गुरुभक्त नितिन जैन (सीपुर) व भूपेश जैन (चीतरी) की भावना से प्रेरित होकर बनी)

जयश्रीरांतरारीणां,लेभे येन प्रशान्तितः।

तं श्रीवीरजिनं नत्वा, रसः शान्तो विभाव्यते।।1

जिन श्री वीरभगवान ने उत्कृष्ट शान्ति से अपने अन्तरंग शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली है उन परमात्मा को मैं नमस्कार कर शान्तरस की भावना करता हूँ। (आ. काल्पदृम)

सर्वमंगलनिधौ हृदि यस्मिन्, संगते निरुपमं सुखमेति।

मुक्तिशर्म च वशीभवति द्राक् , तं बुधा भजत शांतरसेंद्रम्।।2।।

सर्व मांगलिकों का निधान ऐसा शान्त रस जिस हृदय में प्राप्त हो जाता है वह अनुपम सुख का उपभोग करता है और मोक्ष सुख एक बारगी उसके अधिपत्य में आ जाता है। हे पंडितों! ऐसे शान्तरस को तुम भजो-सेवा करो-भावी।

समतैकलीनचित्तो, ललनापत्यस्वदेहममतामुक्त।

विषयकषायाद्यवशः, शास्त्रृगुणैर्दमितचेतस्कः।।3।।

वैराग्यशुद्धधार्मा, देवादिसतत्त्वविद्विरतिधारी।

संवरवान् शुीावृत्तिः, साम्यरहस्यं भज शिवार्थिन।।4।।

हे मोक्षार्थी प्राणी! तू समता विषय में लीन चित्तवाला हो स्त्री, पुत्र, पैसा और शरीर पर से ममता छोड़ दे, वर्ण,गंध,रसस्पर्श आदि इन्द्रियों के विषय और क्रोध, मान माया और लोभ आदि कषायों के वशीभूत न हो शास्त्ररूप लगाम से तेरे मनरूप अश्व को काबु में रख, वैराग्य प्राप्त कर शुद्ध-निष्कलंक धर्मवान बन, (साधु के दस प्रकार के यति धर्म और श्रावक के बारह व्रती का आत्मगुणों में रमणता करने वाला शुद्ध धर्मवाला बन,) देव गुरु धर्म का शुद्ध स्वरूप जानने वाला बन, सर्व प्रकार के सावद्य योग से निवृत्तिरूप विरति धारण कर, (सत्तावन प्रकार के) संवरवाला बन, तेरी वृत्तियों को शुद्ध रख और समता के रहस्य को भज।

भावना भाने निमित्त मन को उपदेश

चित्तबालक! मा त्याक्षी-रजस्रं भावनौषधीः।

यत्त्वां दुर्ध्यानभूता न च्छलयन्ति छलान्विषः।। 5।।

हे चित्तरूप बालक ! तू सदैव भावना रूप औषधियों का थोड़े से समय के लिये भी परित्याग न कर जिससे छलयुत दुर्ध्यानरूप भूत-पिशाच तुझे कष्ट न पहुंचा सके।

इन्द्रियों का सुख, समता का सुख

यदिद्रियार्थैः सकलैःसुखं, स्यान्नरेंद्रचक्रि त्रिदशाधिपानाम्।
तद्विदवत्येव पुरो हि साम्य-सुधां बुधस्तेन तमाद्रियस्व।। 6।।

राजा, चक्रवर्ती और देवताओं के स्वामी इन्द्रों को सर्व इन्द्रियों के अर्थों से जो सुख होता है वह समता के सुख-समुद्र के सामने सचमुच एक बिन्दु के समान है, अतः समता के सुख को प्राप्त कर।

सांसारिक जीव के सुख-यति के सुख

अदृष्टवैचित्र्यवशाज्जगज्जने, विचित्रकर्माश्यवाग्विसंस्थुले।
उदासवृत्तिस्थितचित्तवृत्तयः, सुखं श्रयन्ते यतयः क्षतार्तयः।। 7।।

जब कि जगत् के प्राणी पुण्य तथा पाप की विचित्रता के आधीन है, और अनेक प्रकार के काया के व्यापार, मन के व्यापार तथा वचन के व्यापार से अस्वस्थ (अस्थिर) है, उस समय में जिन की मध्यस्थवृत्ति में चित्तवृत्ति लगी हुई है, और जिनकी मन की व्याधियां नष्ट हो गई हैं वे यति सच्चे सुख का उपभोग करते हैं।

समतासुख अनुभव करने का उपदेश

विश्वजंतुषु यदि क्षणमेकं, साम्यतो भजसि मानस! मैत्रीम्।
तत्सुखं परममंत्र, परत्राप्यश्नुषे न यदभूत्तवजातु।। 8।।

हे मन! यदि तू सर्व प्राणी पर समतापूर्वक एक क्षण भर भी परहितचिन्ता रूप मैत्री भाव रखे तो तुझे इस भव और परभव में ऐसा सुख मिलेगा कि जिसका तूने कभी भी अनुभव नहीं किया होगा।

समता की भावना उसका दर्शन

न यस्य मित्रं न च कोऽपि शत्रु, निजः परो वापि न कश्चनास्ते।
न चेंद्रियार्थेषु रमेत चेतः, कषाय मुक्तः परमःसंयोगी ।।9।।

जिसके कोई भी मित्र नहीं है और कोई भी शत्रु नहीं है, जिसके कोई अपना नहीं और कोई दूसरा नहीं, जिसका मन कषाय रहित हो और इन्द्रियों के विषयों में रमण न करता हो, ऐसा पुरुष महायोगी है।

समता के अंग चार भावना

भजस्व मैत्री जगदंगिराशिषु प्रमोदमात्मन् गुणिषु त्वशेषतः।

भावार्त्तिदीनेषु कृपारसं सदा-प्युदासवृतिं खलु निर्गुणेष्वपि।।10।।

हे आत्मा! जगत् के सर्व जीवों पर मैत्री भाव रख; सब गुणवान् पुरुषों की और संतोष दृष्टि से देख; भव (संसार) की पीड़ा से दुःखी होते प्राणियों पर कृपा रख और निर्गुणी प्राणियों पर उदासवृत्ति-माध्यस्थ भाव रख।

चार भावनाओं का संक्षिप्त स्वरूप

मैत्री परस्मिन् हितधीःसमग्रे, भवेत्प्रमोदो गुणपक्षपातः।

कृपा भवार्ते प्रतिकर्तुमीहो -पेक्षैव माध्यस्थमवार्यदोष।। 11

दूसरे सर्व प्राणियों पर हित करने की बुद्धि यह (प्रथम) मैत्री भावना, गुण का पक्षपात यह (दूसरी) प्रमोद भावना;भवरूप व्याधि से दुःखित प्राणियों को भाव औषधि से निरोग बनाने की अभिलाषा यह (तीसरी) कृपा भावना; न छूट सके ऐसे दोष वाले प्राणी पर उदासीन भाव यह (चौथी) माध्यस्थ भावना।

उक्त चार भावनाओं का स्वरूप

परहितचिंता मैत्री, परदुःखविनाशिनी तथा करुणा।

परसुखतुष्टिर्मुदिता, परदोषपेक्षणमुपेक्षा।। 12।।

(आत्मव्यतिरिक्त) दूसरे प्राणियों का हित विचारना यह मैत्री भावना, दूसरों के दुःखों को नाश करने की इच्छा अथवा चिंता से करुणा भावना; दूसरे के सुख को देखकर आनन्द मानना यह प्रमोद भावना और दूसरों के दोषों की उपेक्षा करना यह उपेक्षा भावना।

प्रथम मैत्रीभावना का स्वरूप

मा कार्षीत्कोऽपि पापानि, माचारभूत्कोऽपि दुःखितः।

मध्यतां जगदप्येषा, मतिमैंत्री निगद्यते।।13।।

कोई भी प्राणी पाप न करो, कोई भी जीव दुखी न हो इस जगत् कर्म से बचो- ऐसी बुद्धि को मैत्री कहते हैं।

द्वितीय प्रमोद भावना का स्वरूप

अपास्ताशेषदोषाणां, वस्तुतत्त्वावलोकिनाम्।

गुणेषु पक्षपातो यः, स प्रमोदःप्रकीर्तितः।। 14

जिन्होंने सर्व दोषों को दूर कर दिया है और जो वस्तुतत्त्व को देख रहे हैं उनके गुणों पर पक्षपात रखना वह प्रमोद भावना कहलाती है।

तृतीय करुणा भावना का स्वरूप

दीनेष्वार्तेषु भीतेषु, याचमानेषु जीवितम्।
प्रतिकारपरा बुद्धिः, कारुण्यमभिधीयते।। 15।।

अशक्त, दुःखी, भय से व्याकुल और जीवन याचना प्राणियों के दुःख दूर करने की जो बुद्धि है वह करुणा भावना कहलाती है।

चौथी माध्यस्थ भावना

क्रूरकर्मसु निःशंकं, देवतागुरुनिंदिषु।
आत्मशंसिषु योपेक्षा, तन्माध्यस्थमुदीरितम्।। 16।।

निःशंक होकर क्रूर कर्म करने वाले, देव और गुरु की निन्दा करने वाले और आत्मश्लाघा करने वाले प्राणियों पर उपेक्षा यह माध्यस्थ (अथवा उदासीन) भावना कहलाती है।

समता का दूसरा साधन - इन्द्रिय विषयों पर समता

चेतनेतरगतेष्वखिलेषु, स्पर्शरूपवगंधरसेषु।
साम्यमेष्यति यदा तव चेत, पाणिगं शिवसुखं हि तदात्मन्।।17।।

हे चेतन! सर्व चेतन और अचेतन पदार्थों से होने का स्पर्श, रूप, रव (शब्द), गंध और रस में तेरा चित्त ममता पायेगा, तब मोक्षसुख तेरे हाथ में आ जायेगा।

समता प्राप्ति का तीसरा साधन

के गुणास्तव यतः स्तुतिमिच्छस्यद्भुतं, किमकृथा मदवान् यत्।
केगर्ता नरकभीः सुकृतैस्ते, किं जितः पितृपतिर्यदचिन्तः।।18।।

तेरे में क्या गुण है कि तू स्तूति की इच्छा रखता है ? तूने कौन सा बड़ा आश्चर्यकारी काम किया है कि तू अंहकार करता है? (तेरे) किन सुकृत्यों से तेरी नरक की पीड़ा दूर हो गई है ? क्या तूने यम को जीत लिया है कि जिससे तू चिन्ता रहित हो गया है ?

ज्ञानी का लक्षण

गुणस्तवैर्यां गुणिनां परेषा-माक्रोशनिंदादिभिरात्मनश्च।
मनः समं शीलति मोदते वा, खिद्येत च व्यत्ययतः स वेत्ता।।19।।

दूसरे गुणवान, प्राणियों के गुणों की स्तुति करते समय, अन्य पुरुष अपने पर क्रोध करें अथवा अपनी निन्दा करे उस समय जो अपने मन को स्थिर रखता है अथवा उस समय जो आनंदित होता है और इसके विरुद्ध बात होने पर (जैसे परगुणनिन्दा अथवा आत्म प्रशंसा होने पर) जो दुःखित होता है वह प्राणी ज्ञानी कहलाता है।।

अपने शत्रु मित्र-स्व पर को देखने का उपदेश

न वेत्सि शत्रुन् सुहृदश्च नैव, हिताहिते स्वं न परं च जंतोः।
दुःखं द्विषन् वांछसि शर्म, चैतन्निदानमूढः कथमाप्स्यसीष्टम्।। 20।।

हे आत्मन्! तू तेरे शत्रु और मित्र को नहीं पहचानता है कौन तेरा हितकर और कौन तेरा अहितकर है इसको नहीं जानता है और कौन तेरा अपना तथा पराया है यह भी नहीं जानता है, (और) तू दुःख कर द्वेष करता है और सुख मिलने की इच्छा करता है, परन्तु उनके कारणों को नहीं जानता फिर तू क्यों कर अपनी इच्छित वस्तु पा सकेगा ?

वस्तु ग्रहण करने से पहले विचार करने की आवश्यकता

कृति हि सर्वं परिणामरम्यं विचार्य गृह्णाति चिरस्थितीह।
भवान्तरेऽनन्तसुखाप्तये, तदात्मन् किमाचारमिमं जहासि।।21

इस संसार में जो विचारशील पुरुष होते हैं वे तो विचार करके ऐसी वस्तु को ग्रहण करते हैं कि जो लाखों वर्षों तक चलती है और परिणाम में भी सुन्दर होती है, तो फिर हे चेतन! इस भव के बाद अनन्तसुख दिलाने वाले इस धार्मिक आचार को तू क्यों छोड़ देता है ?

राग द्वेष से किये विभाग पर विचार

निजः परो वेति कृतो विभागो, रागदिभिस्ते त्वरयस्तवात्मन्।
चतुर्गतिक्लेशविधानतस्तत्, प्रमाणयन्नस्यरिनिर्मितं किम्।।22।।

हे चेतन! तेरा अपना और पराया ऐसा विभाग राग-द्वेष द्वारा किया हुआ है। चारों गतियों में तुझे अनेक प्रकार के क्लेश पहुंचाने वाले होने से राग-द्वेष तो तेरे शत्रु है। तेरे शत्रुओं से किये हुए विभाग को तू क्यों कर स्वीकार करता है ?

आत्मा और दूसरी वस्तुओं के सम्बन्ध में विचार

अनादिरात्मा न निजः परो वा, कस्यापि कश्चिन्न रिपुः सुहृद्वा।
स्थिर न देहाकृतयोऽणवश्च, तथापि साम्यं किमुपैषि नैषु।। 23।।

आत्मा अनादि है, किसी के कोई खुद का नहीं और कोई पराया नहीं, कोई शत्रु नहीं और कोई मित्र नहीं, देह की आकृति और (उसमें रहने वाले) परमाणु स्थिर नहीं-तिस पर भी उनमें तू समता क्यों नहीं रखता ?

अब माता पिता आदि का कैसा संबन्ध

यथा विदां लेप्यमया न तत्त्वात्, सुखाय मातापितृपुत्रदाराः।
तथा परेऽपीह विशीर्णतत्तदा-कारमेतद्धि समं समग्रम्।। 24।।

जिस प्रकार चित्र में अंकित माता, पिता, पुत्र और स्त्री वास्तविक रूप में समझदार आदमी को सुख नहीं देते उसी प्रकार इस संसार में रहने वाले प्रत्यक्ष माता पितादि सुख नहीं देते। इन दोनों का आकार नाशवंत है, अतः ये दोनों एक ही समान है।

समता को समझने वालों की संख्या

जानान्ति कामान्निखिला संसज्ञा, अर्थ नराः केऽपि च केऽपि धर्मम्।
जैन च केचिद्, गुरुदेव शुद्धं केचित् शिवं केऽपि च केऽपि साम्यम्।।

सर्व संज्ञावाले प्राणी 'काम' को जानते हैं, उनमें से कितने ही अर्थ (धन प्राप्ति) को जानते हैं, और उन में से भी कई धर्म को बहुत कम शुद्ध देवगुरुयुक्त जैन धर्म को जानते हैं, उनमें से भी बहुत कम प्राणी मोक्ष को जानते है और उनमें से भी बहुत कम प्राणी समता को जानते हैं।

स्निह्यन्ति तावद्धि निजा निजेषु, पश्यन्ति यावन्निजमर्थमेभ्य।
इमां भवेऽत्रापि समीक्ष्य रीतिं, स्वार्थे न कः प्रेत्यहिते यतेत।। 26।।

सगे सम्बन्धी जब तक अपने समों में किसी भी प्रकार का अपना स्वार्थ देखते हैं तब तक ही उन पर स्नेह रखते हैं, इस भव में भी इस प्रकार की रीति देखकर परभव के हितकारी अपने स्वार्थ के लिये कौन यत्न नहीं करता है ?

पौद्गलिक पदार्थों की अस्थिरता

स्वप्नेंद्रजालादिषु यद्वदाप्तै- रोषश्च तोषश्च मुधा पदार्थैः।

तथा भवेऽस्मिन् विषयैः समस्तै-रेवं विभाव्यात्मलयेऽवधेहि।। 27।।

जिस प्रकार स्वप्न अथवा इन्द्र जाल आदि के पदार्थों पर रोष तथा तोष करना व्यर्थ है उसी प्रकार इस भव में प्राप्त हुये पदार्थों पर भी (रोष तथा तोष करना व्यर्थ है) इस प्रकार विचार करके आत्मसमाधि में तत्पर हो।

मरण पर विचार

एष मे जनयिता जननीयं बंधवःपुनरिमेस्वजनाश्च।
द्रव्यमेतदिति जातममत्वो, नैव पश्यसि कृतांतवशत्वम्।। 28।।

यह मेरा पिता है, यह मेरी माता है, ये मेरे भाई है और ये मेरे सगे-स्नेही है, यह मेरा धन है- इस प्रकार तुझे ममत्व हो गया है परन्तु इसी से तू यम के वश में होगा, इसको तू देखता भी नहीं है।

विषय पर मोह-

नो धनैः परिजनैः स्वजनैर्वा, दैवतैः परिचितैरपि मंत्रैः।
रक्ष्यतेऽत्र खलु कोऽपि कृतांतान्नो, विभावयसि मूढ किमेवम्? 29
तैर्भवेऽपि यदहो सुखमिच्छं-स्तस्य साधनतया प्रतिभातैः।
मुह्यसि प्रतिकलं विषयेषु, प्रीतिमेषि न तु साम्यसतत्त्वे।। 30।।

धन, सगे-सम्बन्धी, नौकर-चाकर, देवता अथवा परिचित मंत्र, कोई भी यम (मृत्यु) से रक्षा नहीं कर सकता। हे अल्पज्ञ प्राणी! तू ऐसा विचार क्यों नहीं करता ? सुख मिलने के साधनरूप प्रतीत होने वाले (धन, सगा, नौकर आदि) में हे बड़े संसार में सुख मिलने की इच्छा रखने वाले भाई! तू प्रत्येक क्षण विषयों में गर्त होता जाता है, परन्तु समतारूप सच्चे रहस्य में प्रीति नहीं रखता है।

कषाय का सच्चा स्वरूप

किं कषायकलुषं करुषे स्वं, केषु चित्रनु मनोऽरिधियात्मन्।
तेऽपि ते हि जनकदिरूपै-रिष्ठतां दधुरनंतभवेषु।।31

हे आत्मन्! कितने ही प्राणियों के साथ शत्रुता रख कर तू अपने मन को क्यों कषायों से मलीन करता है ? (कारण कि) वे तेरे माता पिता आदि के रूप में अनन्त भवों तक तेरी प्रीति के भाजन रह चुके हैं।

शोक का सच्चा स्वरूप

यांश्च शोचसि गताः किमिमे, स्नेहला इति धिया विधुरात्मन्।
तैर्भवेषु निहितस्त्वमनंते-ष्वेव तेपि निहता भवता च।।32।।

ये मेरे स्नेही क्यों(मर) गये! इस प्रकार की बुद्धि से व्याकुल होकर जिनके लिये तू शोक करता हैं उन्हीं द्वारा तू कई बार सताया गया है और वे भी तुझसे कई बार सताये गये हैं।

मोहत्याग-समता में प्रवेश

त्रातुं न शक्या भवदुःखतो ये, त्वया न ये त्वामपि पातुमीशाः।
ममत्वमेतेषु दधन्मुधात्मन, पदे पदे किं शुचमेषि मूढ!।।33।।

जिन स्नेहियों को तू भवदुःख से बचाने में अशक्त हैं और जो तुझे बचाने में अमसर्थ है उन पर झूठा मोह रखकर हे मूढ आत्मन्! तू पग पग पर क्यों शोक का अनुभव करता है ?

समताद्वार का उपसंहार

सचेतनाः पुद्गलपिंडजीवा, अर्थाः परे चाणुमया द्वयेऽपि।
दधत्यनंतान् परिणामभावां-स्तत्तेषु कस्त्वर्हति रागरोषी।। 34।।

पुद्गल पिंड और अधिष्ठित जीव-सचेत पदार्थ है और परमाणुमय अर्थ आदि अचेत पदार्थ हैं। इन दोनों प्रकार के पदार्थों में अनेक प्रकार के पर्याय भाव आते रहते है, इसे उन पर राग-द्वेष करने के योग्य कौन है ? अगर आप बैठते हैं,आराम करते हैं, ईश्वर के बारे में सोचते हैं, अपने आपको उसी लय में ले आते हैं और उसकी शक्ति के प्रवाह के लिये अपने द्वार खोल देते हैं तो यह बैठना आलस्य नहीं होता। दरअसल यह शक्ति को नवीन करने का सर्वश्रेष्ठ तरीक़ा होता है। यह प्रबल ऊर्जा उत्पन्न करता है, उसी तरह की ऊर्जा जो आपको शक्ति देती है, न कि उस तरह की ऊर्जा जो आपकी शक्ति छीन लेती है।

रहस्य यह है कि आपका मस्तिष्क शांत हो, जल्दबाजी की हड़बड़ी की प्रतिक्रियाओं से बचा जाये और शांत चिंतन का अभ्यास किया जाये। कला का रहस्य है गति को धीमा करना और अपनी जिम्मेदारियों को ऊर्जा के कुशल संचयन के आधार पर निभाना। यह सलाह उचित है कि एक या दो काम में आने वाली योजनायें

बनायी जायें जिनके उपयोग द्वारा आप आरामदेह और सहज शक्ति के अभ्यास में विशेषज्ञ बन सकें।

इस तरह की सर्वश्रेष्ठ योजनाओं में से एक का सुझाव मुझे कैप्टेन एड्डी रिकेनबैकर ने दिया था। वे एक बहुत व्यस्त व्यक्ति हैं और वे अपनी जिम्मेदारियों को इस तरह से निभाते हैं जिससे शक्ति के संचय का आभास होता है। मैंने उनके रहस्य का एक तत्त्व संयोगवश ही खोज लिया था।

मैं एक बार कैप्टेन एड्डी रिकेनबैकर के साथ टेलीविजन प्रोग्राम की फिल्म बनवा रहा था। हमें आश्वासन दिया गया था कि काम जल्दी ही निबट जायेगा और उनके पास इतना समय ख़ाली बचा रहेगा कि वे अपनी रोज़मर्रा के बाक़ी मामलों को निबटा सकेंगे।

बहरहाल, रिकॉर्डिंग में ज़रूरत से ज़्यादा समय लग गया । मैंने देखा कि कैप्टेन रिकनबैकर इस बात से ज़रा भी विचलित नहीं हुये। वे नर्वस या चिंतित नहीं हुये। वे इधर से उधर नहीं टहल रहे थे या चिंतित होकर अपने ऑफ़िस में धड़ाधड़ फ़ोन नहीं कर रहे थे। इसके बजाय उन्होंने स्थिति को शांति से लिया। स्टूडियों में दो पुरानी आरामकुर्सियां थी, जिन्हें यहाँ पर दूसरे लोगों के लिये रखा गया था। वे एक आरामकुर्सी में बहुत ही आराम भरे अंदाज में बैठ गये।

मैं हमेशा से एड्डी रिकेनबैकर का बड़ा प्रशंसक रहा हूँ और मैंने उनकी तनावहीनता पर टिप्पणी की। ''मैं जानता हूँ कि आप कितने व्यस्त हैं, ''मैंने कहा, ''और मुझे हैरानी हो रही है कि आप इतनी शांति और आराम से बैठे हुये हैं।''

जहाँ तक मेरा सवाल है मैं बहुत विचलित था क्योंकि मुझे कैप्टेन रिकेनबैकर का इतना अधिक समय लेने का अफ़सोस हो रहा था। ''आप इतने अविचलित कैसे हैं ?'' मैंने पूछा।

उन्होंने हँसते हुये जवाब दिया :''आप जो सिखाते हैं, मैं बस उसका पालन करता हूँ। इत्मीनान से रहने से फ़ायदा होता है। मेरे पास यहाँ आराम से बैठो।''

मैंने दूसरी आरामकुर्सी को खींचा और ख़ुद शांति से बैठ गया। फिर मैंने कहा : ''एड्डी, मैं जानता हूँ कि आपके पास कोई तकनीक होगी जिससे आप इस तरह की प्रभावी शांति हासिल कर पाते हैं। मुझे इस बारे में कृपया बतायें।''

वे एक विनम्र व्यक्ति हैं, परंतु मेरे बार-बार कहने पर उन्होंने मुझे एक फ़ॉर्मूला दिया जिसका वे अक्सर इस्तेमाल करते थे। मैं अब ख़ुद इसका प्रयोग करता हूँ और यह बहुत ही प्रभावी है। इसका वर्णन इस तरह से किया जा सकता हैः

पहली बात तो यह कि शरीर को पूरी तरह से ढीला छोड़ दें। दिन में कई बार इसका अभ्यास करें। अपने शरीर की हर मांसपेशी को ढीला छोड़ दें। अपने आपको एक जेलीफ़िश मानें और अपने शरीर को पूरी तरह से ढीला छोड़ दें। आलू के बड़े बरलैप बैग की मानसिक कल्पना करें। फिर मानसिक रूप से उस बैग को काटने और आलुओ को बाहर निकलने की अनुमति देने की कल्पना करें। अपने आपको उस बैग की तरह मानें।

ख़ाली बरलैप से अधिक ढीला क्या हो सकता है?

इस फ़ॉर्मूले का दूसरा तत्त्व है ''मस्तिष्क को ख़ाली करना।'दिन में कई बार अपने मस्तिष्क से सारे द्वेष, निराशा, कुंठा, क्रोध और तनाव को ख़ाली करते रहें। जब तक आप नियमित रूप से और अक्सर अपने मस्तिष्क को ख़ाली नहीं करते, यह दुखद विचार वहाँ पर इकट्ठे होते रहेंगे जब तक कि एक बड़ा विस्फोट होने की स्थिति न बन जाये। इन सभी तथ्यों को मस्तिष्क से ख़ाली करते रहें क्योंकि यह आरामदेह शक्ति के प्रवाह में बाधा डालते हैं।

तीसरी बात, आध्यात्मिक चिंतन करें। आध्यात्मिक चिंतन का अर्थ है नियमित रूप से अपने मस्तिष्क को ईश्वर की तरफ मोड़ना। कम से कम दिन में तीन बार ''अपनी आँखों को उन पहाड़ियों की तरफ़ ऊपर उठाओ।'' इससे आप ईश्वर की लय से तालमेल बिठा पायेंगे। यह आपको शांति से भर देगा।

इस तीन बिंदु के कार्यक्रम ने मुझे बहुत प्रभावित किया और मैं कुछ महीनों से इनका अभ्यास कर रहा हूँ। सहजता से सफल जीवन जीने और आरामदेह तरीक़े से रहने का यह एक बहुत अच्छा तरीका है।

न्यूयॉर्क सिटी के मेरे मित्र डॉ. जेड.टेलर बर्कोविट्ज से भी मैंने रिलेक्स्ड रहने की तरकीब के बारे में बहुत कुछ सीखा। जब उन पर काम का बहुत दबाव होता था यानी जब उनका ऑफ़िस मरीज़ों से भरा होता था और टेलीफ़ोन की घंटी लगातार बजती रहती थी, तो वे अचानक काम बंद कर देते थे और अपनी मेज़ पर सिर रख देते थे और ईश्वर से स्वाभाविक और सम्मानपूर्वक चर्चा करते थे। मुझे

उनकी प्रार्थना की शैली पसंद आयी। वे मुझे बताते हैं कि यह प्रार्थना कुछ इस तरह की होती थीः ''हे ईश्वर, मैं अपने आपको अधिक शक्ति से धकेल रहा हूँ। मैं लोगों को शांत रहने और आराम से काम करने की सलाह देता हूँ। इसलिये मुझे भी इसका अभ्यास करना चाहिये। आप मुझे शांति दें, शक्ति दें और मेरी नर्वस ऊर्जा को संचित करें ताकि मैं इन लोगों की मदद कर सकूँ जो मुझसे मदद लेने आये हैं।''

फिर वे एक या दो मिनट चुपचाप खड़े होते थे। इसके बाद ईश्वर को धन्यवाद देते थे और फिर इत्मीनान से अपने काम में पूरी शक्ति से जुट जाते थे।

कई बार शहर में इलाज करने के लिये जाते समय वे ट्रैफ़िक जाम में फँस जाते थे। इन तनाव भरे विलंब के क्षणों को वे आराम करने के अवसरों में बदल लेते थे और ऐसा करने का उनका तरीक़ा बहुत रोचक था। वे कार का इंजन बंद करके ख़ुद को अपनी सीट में ढीला छोड़ देते थे, आराम से आँखे बंद कर लेते थे और सिर पीछे टिका लेते थे और कई बार तो वे सो भी गये। वे कहते हैं कि सोने के बारे में चिंता करने की कोई बात नहीं थी, क्योंकि जब ट्रैफिक चालू हो जाता था तो पीछे के कार वाले अपने तेज हॉर्न से उनकी नींद खोल देते थे।

ट्रैफ़िक के बीच में पूरी तरह आराम का यह दौर शायद एक या दो मिनट ही चल पाता होगा, परंतु इसमें उनकी ऊर्जा को नया करने की शक्ति होती थी। यह आश्चर्यजनक है कि दिन में कितने मिनट का प्रयोग आप आराम करने के लिये कर सकते हैं, चाहे आप जहाँ भी हो। अगर इन क्षणों में आप जान-बूझकर ईश्वर की शक्ति को भी हालिल करें तो आप पर्याप्त आराम हासिल कर सकते हैं। आराम के समय की लंबाई से शक्ति नहीं मिलती, यह अनुभव की क्वालिटी पर निर्भर करता है।

मुझे बताया गया है कि रॉजर बैब्सन, प्रसिद्ध सांख्यिकीविद् अक्सर एक ख़ाली चर्च में जाते थे और वहाँ शांति से बैठते थे। शायद वे एक या दो भजन पढ़ते थे और ऐसा करने से उन्हें आराम मिल जाता था और उनकी ऊर्जा नयी हो जाती थी। डेल कारनेगी तनाव की अवस्था में अपने ऑफिस के पास वाले चर्च में जाकर पंद्रह मिनट तक प्रार्थनापूर्ण साधना किया करते थे। वे कहते थे कि वे जान-बूझकर ऐसे समय में ऑफ़िस से जाते थे, जब व्यस्तता सबसे ज़्यादा होती थी। इस तरह उन्हें यह एहसास होता था कि समय उन्हें नियंत्रित नहीं करता था, बल्कि वे समय को नियंत्रित कर रहे थे। इससे सतर्कता का भी पता चलता है ताकि तनाव नियंत्रण

की सीमा से अधिक विकसित न हो जाये।

एक रात वाशिंगटन से न्यूयॉर्क वाली ट्रेन में मेरी मुलाक़ात एक मित्र से हुई। यह व्यक्ति संसद सदस्य था और उसने बताया कि वह अपने जिले में जा रहा है जहाँ उसे अपने मतदाताओं की एक सभा को संबोधित करना है। जिस विशेष समूह को वह संबोधित करने जा रहा था, वह उनके प्रति शत्रुता रखता था, उसने कहा, और शायद वे लोग उनके लिये स्थिति बहुत कठिन बनाने का प्रयास करेंगे। हालाँकि वे लोग उनके जिले में कम संख्या में हैं, परंतु फिर भी वे उनका सामना करने जा रहे हैं।

''वे अमेरिकी नागरिक है और मैं उनका प्रतिनिधि हूँ। अगर वे मुझसे मिलना चाहे तो उन्हें मुझसे मिलने का अधिकार है।''

''आप इस बारे में ज़्यादा चिंतित नहीं लगे रहे, ''मैंने टिप्पणी की।

''नहीं,''उसने जवाब दिया। ''अगर मैं चिंतित हो गया तो मैं तनाव में आ जाऊँगा और मैं स्थिति का अच्छी तरह से सामना नहीं कर पाऊँगा।''

''क्या आपके पास इस तनावपूर्ण स्थिति का सामना करने का कोई ख़ास तरीका है ''मैंने पूछा।

''हाँ, 'उसने जवाब दिया, ''काफ़ी शोरगुल होगा। परंतु मेरे पास तनाव में आये बिना इन स्थितियों का सामना करने का तरीक़ा मौजूद है। मैं गहरी साँस लूँगा, शांति से बात करूँगा, गंभीरता से बोलूँगा और सबके प्रति मित्रता और सम्मान दिखाऊँगा, अपने गुस्से पर काबू रखूँगा और ईश्वर में विश्वास रखूँगा कि वे सब कुछ ठीक कर देंगे।''

''मैंने यह महत्त्वपूर्ण तथ्य सीखा है, ''संसद सदस्य ने आगे कहा, ''कि आप हर स्थिति में रिलैक्स्ड रहें, शांत रहें, दोस्ताना रवैया रखें, आस्था रखें और अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करें। अगर आप ऐसा करेंगे, तो आम तौर पर आपकी सफलता तय है।''

मुझे इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि यह संसद सदस्य बिना तनाव के रहता होगा और काम करता होगा और इससे भी अधिक यह कि अपने लक्ष्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करता होगा।

जब हम पॉलिंग, न्यूयार्क में मेरे फ़ार्म पर कुछ कन्स्ट्रक्शन का काम कर रहे थे तो मैंने एक कारीगर को बेलचा चलाते हुये देखा। वह रेत के ढेर पर बेलचा चला रहा था। यह एक सुंदर दृश्य था। कमर तक नंगे बदन उसका पतला और मांसपेशिय शरीर सटीक और समन्वित तरीक़े से काम कर रहा था। बेलचा पूरी लय से उठता था और गिरता था। वह ढेर में बेलचे को धकेलता था, अपने शरीर को उस पर टिकाता था और रेत में बेलचे को धकेलता था, अपने शरीर को उस पर टिकाता था रेत में उसे गहराई से धकेलता था। फिर, एक साफ़ और मुक्त स्विंग से यह ऊपर आता था और रेत बिना लय टूटे ही जगह पर पहुँच जाती थी। एक बार फिर बेलचा रेत मे जाता था, एक बार फिर वह अपना शरीर उसने टिकाता था और एक बार फिर बेलचा आर्क बनाते हुये आसानी से उठ जाता था। ऐसा लगता था जैसे कोई व्यक्ति इस कारीगर की गति की लय में गा सकता था। और सचमुच यह व्यक्ति काम करते हुये गा रहा था।

मुझे आश्चर्य नहीं हुआ जब फ़ोरमैन ने मुझे बताया कि उसे वह अपने सर्वश्रेष्ठ कारीगरों में से एक मानता है। फ़ोरमैन ने बताया कि वह एक अच्छे स्वभाव का, सुखी और मज़ेदार व्यक्ति है जिसके साथ काम करना सुखद अनुभव है। वह एक रिलैक्स्ड व्यक्ति था जिसने आसानी से सफलता हासिल करने की कला में विशेषज्ञता हासिल कर ली थी।

इत्मिनान पुनर्रचना का परिणाम है और पुनर्रचना की प्रक्रिया निरंतर होनी चाहिये। इन्सान को शक्ति के उस निरंतर प्रवाह से जुड़े रहना चाहिये जो ईश्वर से प्राप्त होती है और इसे दोबारा ईश्वर के पास नवीनीकरण के लिये भेजना चाहिये। जब कोई इस सतत पुनर्रचनात्मक प्रक्रिया की लय में जीता है तो वह आराम करने और आसानी से सफलता हासिल करने की कला को सीख लेता है।

अब इस कला में निपुण कैसे हुआ जाये ? यहाँ दस नियम बताये गये हैं जिनके द्वारा आप अपने कठिन काम को आसन काम में बदल सकते है। इन आज़माये हुये तरीकों का प्रयोग करें और कठिन काम को आसान बना लें। ये तरीक़े आराम करने और सहज शक्ति देने में आपकी मदद करेंगे।

1. अपने आपको एटलस न मानें जिसके कंधों पर सारी दुनिया का बोझ लदा हुआ है। ज़्यादा तनाव न पालें। अपने आपको ज़्यादा गंभीरता से न लें।

2. अपने काम को पसंद करने का पक्का इरादा कर लें। तब आपके लिये यह काम हम्माली के बजाय आनंद बन जायेगा। शायद आपको अपना काम बदलने की ज़रूरत नहीं है। अपने आपको बदल ले और आपका काम भी आपको अच्छा लगने लगेगा।

3. अपने काम की योजना बनायें- योजना के हिसाब से काम करें। योजना के अभाव के कारण ही यह भावना उत्पन्न होती है कि हम पर काम का बहुत बोझ है।

4. अपने सारे कामों को एक साथ करने की कोशिश न करें, बल्कि एक-एक करके काम करें। बाइबल की बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह माने, ''मैं यह एक काम करूँगा।''

5. सही मानसिक रवैया रखें। याद रखें कि आपका काम मुश्किल है या कठिन, यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप इसके बारे में क्या सोचते हैं। अगर आप इसे मुश्किल समझेंगे, तो यह मुश्किल होगा और अगर आप इसे आसान समझेंगे तो यह आपको आसान लगेगा।

6. अपने काम में कुशल बनें। ''ज्ञान की शक्ति है''(आपके काम में)। सही तरीक़े से काम करना हमेशा ज़्यादा आसान होता है।

7. रिलैक्स्ड रहने का अभ्यास करें। इत्मीनान से किया गया काम हमेशा बेहतर होता है। ज़्यादा प्रयास न करें, तनाव में न आयें। हर चीज़ को इत्मीनान से लें।

8. अपने आपको इस तरह से अनुशासित करें कि जो काम आप आज कर सकते हैं, उसे कल पर न टालें। पेंडिंग काम इकट्ठे होने पर आपको अपना काम ज़्यादा मुश्किल लगने लगता है। अपने काम को योजना या शेड्यूल के हिसाब से करें।

9. अपने काम के बारे में प्रार्थना करें। ऐसा करने से आप रिलैक्स भी होंगे और आपकी कार्यकुशलता भी बढ़ेगी।

10. ''अदृश्य पार्टनर'' का सहारा लें। यह आश्चर्यजनक है कि वह आपके बोझ को कितना कम कर देता है। ईश्वर हर जगह है। वह आपके ऑफ़िस फ़ैक्ट्री, स्टोर या किचन में भी मौजूद है जितना कि वह चर्च में मौजूद है। वह आपके काम के बारे में आपसे ज़्यादा जानता है। उसकी मदद से आपका काम आसान हो जायेगा।

(सकारात्मक सोच की शक्ति)

समता शान्ति से स्व पूर्णता हेतु

अन्य की न्यूनता से स्वयं को पूर्ण न मानूँ

(अन्य की अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतिक्षा रहित पूर्णता को प्राप्त करूँ

आचार्य कनकनन्दी

चाल :- मन रेऽऽ तू काहे न...
कनक तू सतत पुरुषार्थ कर!
तेरी उपलब्धि अभी बहुत कम...पाना है अभी अनन्त गुणागुणऽऽ
तू आत्मा अनन्त गुणगणयुक्त...अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्यऽऽ
अभी तू तो अनन्तवा भाग न पाया...पूर्ण प्राप्ति हेतु सतत करो पुरुषार्थ...
त्यागकर प्रमाद व अहंकारऽऽ कनक (1)

तू हो परमपुरुष स्वरूप परमात्मा...स्वरूप प्राप्ति हेतु जो प्रयत्नऽऽ
वह ही यथार्थ से पुरुषार्थ...अन्य सभी होते हैं अनध्यवसाय
अनध्यवसाय से होता आत्मपतनऽऽ(2) कनक

रागद्वेष मोहादि होते अनध्यवसाय...इन से युक्त सभी भाव व्यवहारऽऽ
इनसे रहित करो आत्मविकास, ''तभी तेरा होगा सही पुरुषार्थऽऽ
त्यागकर सभी अपेक्षा उपेक्षा-संक्लेशऽऽ (3) कनक

अन्य की तुलना व प्रतिस्पर्द्धा रिक्त...करो तू स्व पर विश्व हित भावना
किन्तु अन्य की अयोग्यता के कारण...स्वन्यूनता में भी न मानो स्वपूर्णताऽऽ
इससे न होती तेरी परिपूर्णताऽऽ (4) कनक

तू तो स्वयं का कर्त्ता भोक्ता विधाता...अन्य का न कर्ता भोक्ता विधाता
तेरी उदारता से ले परोपकारिता को...कुछ लोग मानते तेरी अयोग्यताऽऽ
उनसे रखो सदा माध्यस्थताऽऽ(5) कनक

अन्य की न्यूनता से न करो अहंकार...अन्य की श्रेष्ठता से ईर्ष्या व घृणा
दीनहीन व अकर्मण्यता त्यागकर...समता शान्ति से आत्मविकास करऽऽ
निर्द्वन्द्व-निर्विकल्प स्थिर होकर ऽऽ कनक(6)

यथा तीर्थंकर आदि महापुरुष करते...स्वयोग्यता के अनुसार तू करोऽऽ
इस जन्म में नहीं तो पर जन्म में, ''स्वपूर्णता से पाओगे अनन्तगुणऽऽ
कनक बनोगे शुद्ध बुद्ध आनन्दऽऽ कनक(7)

ग.पु. का. दि. 2-06-2019 रात्रि 8.34 व प्रातः 4.00

सर्दभ-

पाप का डर

कचित्कषायैः क्वचन प्रमादैः, कदाग्रहःक्वापि च मत्सराद्यैः।
आत्मानमात्मन् कलुषि करोषि, विभेषि धिङ्नो नरकादधर्मा।।26।।

हे आत्मन्! किसी समय कषाय द्वारा और किसी समय प्रमाद द्वारा, किसी समय कदाग्रह द्वारा और किसी समय मत्सर आदि द्वारा आत्मा को मलीन बनाता है। अरे! तुझे धिक्कार है! कि तू अधर्म से तथा नरक से भी नहीं डरता है? (आ. कल्प.)

धर्मशुद्धि का उपदेश

भवेद्भवापायविनाशनायः, तमज्ञधर्मं कलुषीकरोषि किम् ?
प्रमादमानोपाधिमत्सरादिभि, र्नमिश्रितं ह्यौषधमामयापहम्।।1

हे मूर्ख! जो धर्म तेरे संसार सम्बन्धी विडंबना का नाश करने वाला है उस धर्म को प्रमाद, मान, माया, मत्सर आदि से क्यों मलिन करता है ? तेरे मन में अच्छी तरह से समझ लेना कि मिश्रित औषधि व्याधियों का नाश नहीं कर सकती है।

शुद्ध पुण्यजल में मैल-उसके नाम

शैथिल्यमात्सर्यकदाग्रहक्रुधोऽनुतापदम्भाविधिगौरवाणि च।
प्रमादमानी कुगुरुः कुसंगतिः, श्लाघार्थिता वा सुकृते मला इमे।।2।।

सुकृत्यों में इतने पदार्थ मैलरूप हैं शिथिलता, मत्सर, कदाग्रह, क्रोध, अनुताप, दंभ, अविधि, गौरव, प्रमाद, मान, कुगुरु, कुसंग, आत्मप्रशंसा श्रवण की इच्छा- ये सब पुण्यराशि में मैल रूप हैं।

परगुण प्रशंसा

यथा तवेष्टा स्वगुणप्रशंसा, तथापरेषामिति मत्सरोज्झी।
तेषामिमां संतनु यल्लभेथा, स्तानेष्टदानाद्धि विनेष्टलाभः।।3।।

जिस प्रकार तुझे अपने गुणों की प्रशंसा होना अच्छा जान पड़ता है उसी प्रकार दूसरों को भी उनके गुणों की प्रशंसा होना अच्छा लगता है। इसलिये मत्सर छोड़कर उनके गुणों की प्रशंसा भलिभाँति करना सीख जिससे तुझे भी वह प्राप्त हो सके(अर्थात् तेरे गुणों की भी प्रशंसा हो सके) कारण कि प्रिय वस्तु दिये बिना प्रिय वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती है।

निज गुणस्तुति तथा दोषनिन्दा पर ध्यान न देना

जनेषु गृह्णात्सु प्रमोद से, ततो भवित्री गुणरिक्तता तव।
गृह्णत्सु दोषान् परितप्यसे च चेद्, भवन्तु दोषास्त्वयि सुस्थिरास्ततः।।4।।

दूसरे पुरुषों से तेरे गुणों की स्तुति किये जाने पर यदि तू प्रसन्न होगा तो तेरे गुणों की कमी हो जाायेगी, और यदि पुरुष तेरे दोषों का वर्णन करे उस समय खेद करेगा तो वे दोष अवश्य तेरे में निश्चल-दृढ़ हो जायेंगे।

शत्रुगुणप्रंशसा

प्रमोद से स्वस्य यथान्यनिर्मितैः, स्ववैस्तथा चेत्प्रतिपन्थिनामपि।
विगर्हणैःस्वस्य यथोपतप्यसे, तथा रिपूणामपि चेत्ततोसि वित्।।5।।

दूसरे पुरुषों से अपनी प्रशंसा सुनकर तू जिस प्रकार प्रसन्न होता है, उसी प्रकार शत्रु की प्रशंसा सुनकर भी तुझे प्रमोद हो और जिस प्रकार अपनी निन्दा सुनकर दुःखी होता है उसी प्रकार शत्रु की निन्दा सुनकर भी दुःखी हो; तब समझना तू सचमुच बुद्धिमान है।

परमगुणप्रशंसा

स्तवैर्यथा स्वस्य विगर्हणैश्च, प्रमोदतापी भजसे तथा चेत्।
इमौ परेषामपि तैश्चतुर्ष्वप्युदासतां वासि ततोऽर्थवेदी।।6।।

जिस प्रकार अपनी प्रशंसा तथा निन्दा से अनुक्रम से आनंद तथा खेद होता है उसी प्रकार दूसरों की प्रशंसा तथा निन्दा से आनंद तथा खेद होता हो अथवा इन चारों पर यदि तू उदासीनवृत्ति रखता हो तो तू सच्चा जानकार है।

गुणस्तुति की अपेक्षा हानिकारक है

भवेन्न कोऽपि स्तुतिमात्रतो गुणी, ख्यात्या न बह्व्यापि हितं परत्र च।
तदिच्छुरीर्ष्यादिभिरायतिं ततो, मुधाभिमानग्रमहिलो निहांसि किम् ?

मनुष्यों के स्तुति करने मात्र से कोई गुणी नहीं हो सकता है, अपितु बहुत ख्याति से आने वाले भव में भी (परलोक में भी) हित नहीं हो सकता है। इसलिये यदि आगामी भव को तुझे सुधारना है तो व्यर्थ अभिमान के वश होकर ईर्ष्या आदि करके आगामी भव को भी क्यों बिगाड़ता है ?

'शुद्ध' धर्म करने की आवश्यकता

सृजन्ति के के न बहिर्मुखा जनाः, प्रमादमात्सर्यकुबोधविप्लुताः।
दानादिधर्माणि मलीमसान्यमून्युपेक्ष्य शुद्धं सुकृतं चराष्वपि।।8।।

प्रमाद, मत्सर और मिथ्यात्व से घेरे हुए कितने ही सामान्य पुरुष दान आदि धर्म करते हैं, परन्तु ये धर्म मलीन है, इसलिये इनकी उपेक्षा कर शुद्ध सुकृत्य थोड़ा-सा एक अणुमात्र ही कर।

प्रशंसारहित सुकृत्य का विशिष्टपन

आच्छादितानि सुकृतानि यथा दधन्ते, सौभाग्यमत्र न तथा प्रकटीकृतानि।
व्रीडाननाननसरोजसरोजनेत्रावक्षःस्थलानि कलितानि यथा दुकूलैः।।9।।

इस संसार में गूढ पुण्यकर्म-सुकृत्य जिस प्रकार सौभाग्य प्राप्त कराते हैं उसी प्रकार प्रगट किये सुकृत्य नहीं प्राप्त करा सकते हैं। जिस प्रकार कि लज्जा से झुकाया है मुखकमल जिसने ऐसी कमलनयना स्त्री के स्तन-मण्डल वस्त्र से आच्छादित होने पर जितनी शोभा देते हैं उतनी शोभा खुले हुए होने पर नहीं दे सकते हैं।

स्वगुणप्रशंसा से लाभ कुछ भी नहीं है

स्तुतैः श्रुतैर्वाप्यरैर्निरीक्षितैर्गुणस्तवात्मन्! सुकृतैर्न कश्चन।
फलन्ति नैव प्रकटीकृतैर्भुवो, द्रुमा हि मूलैर्निपन्त्यपि त्वधः।।10।।

तेरे गुणों तथा सुकृत्यों की दूसरे स्तुति करे अथवा सुने अथवा तेरे उत्तम कार्यो को दूसरे देखे, इससे हे चेतन! तुझे कुछ भी लाभ नहीं होता है। जैसे कि वृक्ष के मूलको उघाड देने से वह नहीं फलता है, परन्तु उल्टा उखड कर पृथ्वी पर गिर जाता है। (इसी प्रकार उत्तम कार्य भी प्रगट कर देने से पृथ्वी पर गिरते है अर्थात शक्तिहीन होते हैं)

गुणपर मत्सर करने वाला

तपः क्रियावश्यकदानपूजनैः, शिवं न गन्ता गुणतत्सरी जनः।
अपथ्यभोजी न निरामयो भवे, द्रसायनैरप्युतुलैर्यदातुरः।।11

गुण पर मत्सर करने वाला प्राणी तपश्चर्या, आवश्यक क्रिया, दान और पूजा से मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता है, जिस प्रकार व्याधिग्रस्त पुरुष आदि अपथ्य भोजन करता हो तो वह फिर चाहे जितनी भी रसायण क्यों न खावे परन्तु वह स्वस्थ नहीं हो सकता।

शुद्ध पुण्य अल्प होने पर भी उत्तम है

मन्त्रप्रभारत्नरसायनादि-निदर्शनादल्पमपीह शुद्धम।
दानार्चनावश्यकपौषधादि, महाफलं पुण्यमितोऽन्यथान्यत्।।

मंत्र, प्रभा, रत्न, रसायण आदि के दृष्टान्त से (जान पडता है कि) दान, पूजा, आवश्यक, पौषध आदि (धर्मक्रिया) बहुत थोड़े होने पर भी यदि शुद्ध हो तो अत्यन्त फल देती है और बहुत होने पर भी यदि अशुद्ध हो तो मोक्षरूप फल नहीं दे सकती है।

उक्त अर्थ दृष्टान्त से बताते है

दीपो यथाल्पोऽपि तमांसि हन्ति, लवोऽपि रोगान् हरते सुधायाः।
तृण्यां दहत्याशु कणोऽपि चाग्रेर्धर्मस्य लेशोऽप्यमलस्तथाहः।।13।।

एक छोटा-सा दीपक भी अंधकार का नाश कर देता है, अमृत की एक बुंद भी अनेको रोगों को नष्ट कर देती है और अग्नि की एक चिनगारी भी तिनको के बडे भारी मोटे ढेर को जला देती है, उसी प्रकार यदि धर्म का थोडा अंश भी निर्मल हो तो पाप को नष्ट कर देता है।

भाव तथा उपयोगरहित क्रिया से कायक्लेश

भावोपयोगशून्याः कुर्वन्नावश्यकीः क्रियाः सर्वाः।
देहक्लेशं लभसे फलमाप्स्यसि नैव पुनरासाम्।।14।।

भाव और उपयोग बिना सर्व आवश्यक क्रिया करने से तुझे एकमात्र कायक्लेश (शरीर की मजदूरी) होगा, परन्तु तुझे उसका फल कदापि प्राप्त नहीं हो सकेगा।

लगातार ऊर्जावान कैसे बना जाये

अगर आपका दिमाग आपको बताता है कि आप थके हुये हैं, तो आपका शरीर, आपकी नब्ज़ और आपकी मांसपेशियाँ इस तथ्य को स्वीकार कर लेती हैं। परंतु अगर आपका दिमाग़ किसी काम में गहरी रुचि ले रहा है तो आप उस काम को अनंत काल तक बिना थके जारी रख सकते हैं। धर्म हमारे विचारों के माध्यम से काम करता है,क्योंकि दरअसल धर्म विचारों के अनुशासन का सिस्टम है। मस्तिष्क में आस्था के दृष्टिकोण को भरकर यह हमारी ऊर्जा बढ़ा देता है। आपके पास प्रचुर शक्ति के संसाधन और समर्थन हैं, यह सुझाव देकर यह आपको कार्य करने की अत्यधिक शक्ति प्रदान करता है।

कनेक्टिकट में मेरा एक ऊर्जावान दोस्त है, जो बहुत जोशीला है। उसका कहना है कि वह नियमित रूप से चर्च इसलिये जाता है, ताकि वह ''अपनी बेटरी को रिचार्ज कर सके।'' उसकी बात में दम है। ईश्वर ही सारी ऊर्जा का स्रोत है- सारे ब्रह्माण्ड की ऊर्जा, आणिविक ऊर्जा, विद्युत ऊर्जा और आध्यात्मिक ऊर्जा - वस्तुतः ऊर्जा का हर रूप उसी रचयिता से पैदा हुआ है। बाइबल इस बिंदु पर ज़ोर डालते हुए कहती है, -''वह कमज़ोरों को ताक़त देता है और जिनमें शक्ति नहीं होती वह उन्हें शक्ति से भर देता है।''(यशायाह 40:29)।

एक अन्य वक्तव्य में बाइबल ऊर्जा की प्रक्रिया का वर्णन करते हुये कहती है : ''उसमें हम रहते हैं (यानी हम में जीवंतता रहती है), चलते हैं (यानी गतिज ऊर्जा रहती है), और हमारा अस्तित्त्व रहता है(यानि हम पूर्णता प्राप्त करते हैं।)'' (एक्ट्स 17:28)

ईश्वर से संपर्क हमारे भीतर भी उसी तरह की ऊर्जा को प्रवाहित करता है जिस तरह की ऊर्जा से दुनिया का नवीनीकरण होता है और जो हर साल वसंत में प्रकृति को नया रूप देती है। जब हम अपने विचार की प्रक्रियाओं के माध्यम से ईश्वर के आध्यात्मिक संपर्क में आते हैं, तो अपने आप हम में ईश्वर की दैवी ऊर्जा और शक्ति प्रवाहित होने लगती है जिससे अपने आप मूल रचनात्मक कार्य नवीनीकृत होता रहता है। जब दैवी ऊर्जा से हमारा संपर्क टूट जाता है तो हमारा व्यक्तित्व धीरे-धीरे शरीर, मन और आत्मा से कमज़ोर होने लगता है। अगर बिजली के चलने वा

घड़ी को बिजली की सप्लाई मिलती रहे, तो वह अनंत काल तक बिना रुके चल सकती है और सही समय बता सकती है। परंतु अगर आप सप्लाई बंद कर दें, तो वह तत्काल रुक जायेगी। क्यों ? क्योंकि ऊर्जा के स्रोत से उसका संपर्क टूट गया है जो पूरे ब्रह्मांड में प्रवाहित हो रहा है। आम तौर पर यही प्रक्रिया मानवीय अनुभव में भी लागू होती है, हालाँकि यह काम यांत्रिक रूप से लागू होती है।

कुछ साल पहले मैंने एक लेक्चर सुना जिसमें वक्ता ने बड़े जनसमूह के सामने यह कहा कि वह पिछले तीस साल में एक दिन भी नहीं थका। उसने बताया कि तीस साल पहले वह एक आध्यात्मिक अनुभव से गुज़रा था, जिसमें आत्म-समर्पण द्वारा उसने दैवी शक्ति से संपर्क स्थापित किया था। तब से उसमें हर गतिविधि के लिये पर्याप्त ऊर्जा रहने लगी और उसकी गतिविधियाँ अनंत थी। वह अपने उपदेशों का इतना स्पष्ट उदाहरण था कि उस विशाल जनसमूह का हर व्यक्ति उससे बहुत प्रभावित हुआ।

मेरे लिये यह उस तथ्य का उद्घाटन था कि हमारी चेतना में हम असीमित शक्ति के भंडार का दोहन कर सकते हैं जिसके परिणामस्वरूप हमारी ऊर्जा कभी कम नहीं होगी। वर्षो तक मैंने उन विचारों का अध्ययन किया और उस पर प्रयोग किया जिनका वर्णन इस वक्ता ने किया था और जिसका दूसरों ने भी विश्लेषण और प्रदर्शन किया था। मुझे यह विश्वास है कि ईसाई धर्म के सिद्धांतों का वैज्ञानिक रूप से प्रयोग किया जाये तो इससे इन्सान के मस्तिष्क और शरीर में ऊर्जा का अनवरत और सतत प्रवाह बना रह सकता है।

इन निष्कर्षों को एक प्रसिद्ध डॉक्टर ने भी सही माना जिसके साथ मैं एक ऐसे व्यक्ति के बारे में बात कर रहा था जिसे हम दोनों जानते थे। इस व्यक्ति की जिम्मेदारियाँ बहुत भारी थी और वह सुबह से आधी रात तक बिना रुके काम करता था, परंतु वह हमेशा नयी जिम्मेदारियाँ लेने के लिये तैयार दिखता था। उसके पास अपने काम को आसानी और कुशलता से निबटाने की कला थी।

मैंने डॉक्टर से कहा कि वह व्यक्ति एक ख़तरनाक गति से जीवन जी रहा है और इसलिये इसे नर्वस ब्रेकडाउन होने की आशंका हो सकती है। डॉक्टर ने सिर हिलाकर कहा, ''नहीं। उसका डॉक्टर होने के नाते मुझे नहीं लगता कि उसे नर्वस

ब्रेकडाउन हो सकता है। इसका कारण यह है कि वह अच्छी तरह से व्यवस्थित व्यक्ति है और उसके सिस्टम में ऊर्जा कहीं से लीक नहीं होती या रिसती नहीं है। वह एक अच्छी मशीन की तरह काम करता है। वह हर काम इत्मीनान से करता है और अपने बोझ को बिना तनाव के उठाता है। वह अपनी एक औंस ऊर्जा भी बर्बाद नहीं होने देता, बल्कि हर प्रयास में अधिकतम शक्ति लगाता है।''

''आपको क्या लगता है उसकी इस कार्यकुशलता, उसकी इस असाधारण ऊर्जा का रहस्य क्या है ?'' मैंने पूछा।

डॉक्टर ने एक पल सोचा। ''इसका उत्तर यह है कि वह एक सामान्य इन्सान है जो भावनात्मक रूप से संतुलित है, परंतु उससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि वह एक सच्चा धार्मिक इन्सान है। अपने धर्म से उसने यह सीखा है कि शक्ति की बर्बादी से कैसे बचा जा सकता है। उसका धर्म एक उपयोगी तंत्र की तरह उसके काम आता है और उसकी ऊर्जा को बर्बाद होने से बचाता है। कड़ी मेहनत से इन्सान की ऊर्जा बर्बाद नहीं होती, बल्कि भावनात्मक असंतुलन से बर्बाद होती है और यह व्यक्ति इससे पूरी तरह मुक्त है।''

दिनोदिन लोगों को यह एहसास होता जा रहा है कि ऊर्जा और व्यक्तित्व की शक्ति हासिल करने के लिये गहरा आध्यात्मिक जीवन बनाये रखना महत्वपूर्ण है।

शरीर को इस तरह से बनाया गया है कि यह आश्चर्यजनक रूप से, लंबे समय तक आवश्यक ऊर्जा का उत्पादन कर सके। अगर कोई व्यक्ति अपने शरीर का समुचित ध्यान रखे यानी खानपान, व्यायाम, नींद, शारीरिक व्यसनों से मुक्ति इत्यादि पर ध्यान दे तो शरीर अपने आपको अच्छी तरह से स्वस्थ रख सकता है, आश्चर्यजनक ऊर्जा का उत्पादन कर सकता है और इसे बनाये रख सकता है। अगर वह व्यक्ति इस तरह अपने अच्छी तरह संतुलित भावनात्मक जीवन पर ध्यान देता है तो ऊर्जा की बचत होगी। परंतु अगर वह आनुवंशिक या स्वयं द्वारा प्रदत्त नकारात्मक भावनात्मक प्रतिक्रिया द्वारा अपनी ऊर्जा का क्षय होने देता है तो उसके पास जीवंत शक्ति की कमी होगी। जब शरीर, मस्तिष्क और आत्मा मिलकर काम करते हैं तो व्यक्ति की स्वाभाविक अवस्था आवश्यक ऊर्जा के लगातार नवीनीकरण की होती है।

थॉमस ए. एडीसन की पत्नी से मैं अक्सर उनके प्रसिद्ध पति और दुनिया के महानतम् आविष्कारक की आदतों और गुणों के बारे में बात किया करता था। उन्होंने

बताया कि एडीसन कई घंटों की मेहनत के बाद जब अपनी प्रयोगशाला से घर आते थे तो अपने पुराने बिस्तर पर लेट जाते थे। तत्काल वे किसी बच्चे की तरह स्वाभाविक रूप से गहरी और बाधारहित नींद में सो जाते थे। तीन या चार कई बार पाँच घंटों के बाद जब वे जागते थे तो पूरी तरह जाग्रत होते थे, पुरी तरह तरोताजा, होते थे और अपने काम पर लौटने के लिय उत्सुक रहते थे।

मैंने जब मिसेज़ एडीसन से आग्रह किया कि वे इतने स्वाभाविक और आदर्श तरीक़े से सोने की उनके पति की आदत का विश्लेषण करें तो उन्होंने बताया, ''वे प्राकृतिक पुरुष हैं'' उनका आशय था कि वे पूरी तरह से प्रकृति और ईश्वर के सामंजस्य में जीते थे। उनमें कोई असंतुलन नहीं था, कोई संघर्ष नहीं था, कोई भावनात्मक अस्थिरता नहीं थी, कोई मानसिक गड़बड़ी नहीं थी। वे तब तक काम करते थे, जब तक उन्हें नींद की जरूरत महसूस नहीं होती थी, फिर वे गहरी नींद में सो जाते थे और जब वे उठते थे तो फिर से अपने काम में जुट जाते थे। एडीसन कई सालों तक जीवित रहे और कई मायनों में वे अमेरिकी महाद्वीप में रहने वाले शायद सबसे रचनात्मक जीनियस थे। भावनात्मक संतुलन और पूरी तरह विश्राम करने की सामंजस्यपूर्ण संबंध के कारण प्रकृति ने उनके सामने अपने गोपनीय रहस्य खोल दिये।

मैं कई महान् लोगों को जानता हूँ और उनमें से कई में अत्यधिक काम करने की अद्भुत क्षमता थी। यह सभी लोग अनंत प्रज्ञा के सामंजस्य में थे। इस तरह का हर इन्सान प्रकृति के साथ सामंजस्य में दिखाई देता है और दैवी ऊर्जा के संपर्क में नज़र आता है। यह जरूरी नहीं है कि वे लोग धार्मिक हों, परंतु वे लोग हमेशा भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से असाधारण रूप से संतुलित होते हैं। डर, नफ़रत, बचपन में माता-पिता की ग़लतियों को आत्मसात करना, आंतरिक संघर्ष और मनोविकार किसी भी संतुलित व्यक्ति को असंतुलित कर सकते हैं और इस तरह प्राकृतिक शक्ति का अनावश्यक क्षय कर सकते हैं।

मेरी उम्र जितनी ज़्यादा होती जा रही है, मुझे उतना ही विश्वास होता जा रहा है कि न तो उम्र, न ही परिस्थितियाँ हमारी ऊर्जा या जोश को कम कर सकती हैं। आज हम आख़िरकार धर्म और स्वास्थ्य के क़रीबी संबंध के प्रति जाग्रत हो रहे हैं। हम उस मूलभूत सत्य को समझना शुरू कर रहे हैं जिसे हमने अब तक नज़रअंदाज

किया था और वह सत्य यह है कि हमारी शारीरिक स्थिति बहुत हद तक हमारी भावनात्मक स्थिति द्वारा निर्धारित होती है और हमारा भावनात्मक जीवन हमारे वैचारिक जीवन द्वारा निर्धारित होता है।

अपने सभी पत्रों में बाइबल जीवंतता, शक्ति और जीवन के बारे में बात करती है। बाइबल जिस शब्द का सबसे अधिक प्रयोग करती है वह है जीवन और जीवन का अर्थ है जीवंतता- ऊर्जा से ओत-प्रोत होना। ईसा मसीह ने यह महत्वपूर्ण वाक्य कहा था :'' मैं आया हूँ ताकि उन्हें जीवन मिल सके, और उन्हें अधिक प्रचुरता से मिल सके।''(जॉन 10:10) ऐसा नहीं है कि इस जीवन में दर्द या कष्ट बिलकुल नहीं होंगे परंतु स्पष्ट संकेत नहीं है कि यदि कोई व्यक्ति ईसाई धर्म के रचनात्मक सिद्धांतों का अभ्यास करता है तो वह शक्ति और ऊर्जा के साथ रह सकता है।

ऊपर बताये गये सिद्धांतों का अभ्यास व्यक्ति को जीवन की सही गति पर ले जायेगा। हमारी शक्तियाँ तीव्र गति के कारण नष्ट होती हैं, क्योंकि वर्तमान युग में हम असामान्य गति का जीवन जी रहे हैं। ऊर्जा की बचत इस बात पर निर्भर करती है कि हमारे व्यक्तित्व की गति ईश्वर की गति के अनुरूप हो और उसके तालमेल में हो। सही गति वही है, जो ईश्वर के अनुरूप हो और उसके तालमेल में हो। सही गति वही है, जो ईश्वर की गति के सामंजस्य में हो। आपमें ईश्वर का निवास है। अगर आप एक गति से चलेंगे और ईश्वर दूसरी गति से चलेगा, तो आप खुद पर बहुत ज़्यादा तनाव डाल रहे हैं। ''हालाँकि ईश्वर की चक्की धीमे पीसती है, परंतु यह बहुत बारीक पीसती है।'' हममें से ज्यादातर लोगों की चक्की बहुत तेज़ गति से पीसती है, इसलिये बहुत ख़राब या मोटा पीसती है। जब हम ईश्वर की लय के हिसाब से चलते हैं, तो हम अपने आप में उसकी एक सामान्य गति विकसित कर लेते हैं और ऊर्जा लगातार मुक्त रूप से प्रवाहित होती रहती है।

हर चीज़ की गति बढ़ गयी है और इसी कारण कई लोग थक जाते हैं। इसका समाधान यह है कि सर्वशक्तिमान ईश्वर की गति और उसके समय के साथ सामंजस्य स्थापित किया जाये।। ऐसा करने का एक तरीक़ा है किसी गर्म दिन में धरती पर लेट जाना। अपने कान को धरती के क़रीब रखें और सुनें। आपको हर तरह की आवाज़ें सुनाई देंगी। आपको पेड़ों के बीच बहती हवा की ध्वनि सुनाई देगी और कीड़ो की

ध्वनि भी सुनाई देगी।

आप तत्काल यह जान जायेंगे कि इन सभी ध्वनियों में एक सुसंगत गति है। आप इस गति को शहर की सड़कों पर चल रहे ट्रैफ़िक की ध्वनि में नहीं पा सकते, क्योंकि यह शोर की दुविधा में गुम हो जाती है। आप इसे चर्च में पा सकते हैं। जहाँ आप ईश्वर के शब्दों और महान भजनों को सुनते है। सत्य चर्च में ईश्वर की गति के मान से कंपन करता है। परंतु अगर आप मन बना लें तो आप इसे किसी फ़ैक्ट्री में भी पा सकते हैं।

मेरा एक मित्र ओहायो में एक बड़े प्लाँट में उद्योगपति है। उसने मुझे बताया कि उसके प्लांट में सबसे अच्छे काम करने वाले हैं जिन्होंने अपनी मशीन की लय के हिसाब से काम करना सीख लिया है। उसका दावा है कि अगर कोई काम करने वाला अपनी मशीन की लय के हिसाब से काम करता है तो वह दिन भर काम करने के बाद भी नहीं थकेगा। उसने यह बताया कि मशीन ईश्वर के नियम के अनुरूप पार्ट्स की असेंबलिंग है। जब आप मशीन से प्रेम करते हैं और इसे अच्छी तरह से जान जाते हैं तो आपको आभास होता है कि इसमें एक लय है। यह शरीर नब्ज, आत्मा की लय के अनुरूप है। यह ईश्वर की लय में है और यदि आप इस लय के सामंजस्य में हैं तो आप बिना थके मशीन पर काम कर सकते हैं। स्टोव, टाइपराइटर, ऑफिस, मोटरकार, आपके काम सबमें कोई न कोई लय होती है। इसलिये थकान से बचने और अपनी ऊर्जा को बनाये रखने के लिये आपको ईश्वर और उसकी बनायी हुई दुनिया की लय को समझना होगा और उसके हिसाब से चलना होगा।

ऐसा करने के लिये आप शारीरिक रूप से रिलैक्स हो जायें। फिर कल्पना करें कि आप मानसिक रूप से भी रिलैक्स हो रहे है। इसके बाद मानसिक रूप से अपनी आत्मा के भी शांत होने की कल्पना करें और इस तरह की प्रार्थना करें:प्रिय ईश्वर, आप सारी ऊर्जा के स्रोत हैं। आप सूर्य की, अणु की, मांस की,रक्तवाहिनी की, मस्तिष्क की ऊर्जा के स्रोत हैं। मैं आपकी असीम ऊर्जा से अपनी ऊर्जा ग्रहण कर रहा हूँ।'' फिर इस विश्वास का अभ्यास करें कि आप ऊर्जा हासिल कर रहे हैं। अपने आपको ईश्वर के सामंजस्य में रखें। कई लोग सिर्फ़ इसलिये थक जाते हैं क्योंकि उनकी किसी चीज़ में दिलचस्पी नहीं होती। कोई भी चीज़ उन्हें गहराई से आंदोलित नहीं कर पाती। कई लोगों को इस बात से ज़रा भी फर्क़ नहीं पड़ता कि

दुनिया में क्या हो रहा है या दुनिया का हाल कैसा है। मानव इतिहास के सभी संकटों को वे अपने कष्टों की तुलना में छोटा समझते हैं। अपनी छोटी-छोटी चिंताओं, इच्छाओं और नफ़रतों के अलावा उन्हें किसी बात से सचमुच कोई फर्क़ नहीं पड़ता। बहुत सी महत्त्वहीन चीजों में उलझे रहने के कारण वे थक जाते हैं। वे बीमार भी पड़ जाते हैं। थकान से बचने का सबसे अचूक रास्ता यह है कि आप अपने आपको किसी ऐसे काम में भुला दें जिसमें आपका गहरा विश्वास है।

एक प्रसिद्ध राजनेता ने एक दिन में सात भाषण दिये, इसके बाद भी वे बिल्कुल थके हुये नहीं लग रहे थे।

मैंने उनसे पूछा, ''सात भाषण देने के बाद भी आप थके नहीं, इसका कारण क्या है ?''

''क्योंकि, '' उन्होंने कहा, ''मैंने अपने भाषणों में जो कहा, मैं उसमें पूरी तरह विश्वास करता हूँ, मैं अपनी कही बातों के बारे में उत्साही हूँ।'',

यही रहस्य है। उसमें उत्साह था। वह अपने दिल की बात कह रहा था। जब आप इस तरह से कोई काम करते हैं, तो फिर थकने का या ऊर्जा के क्षय का सवाल ही नहीं उठता। आप केवल तभी थकते हैं, जब आपके दिमाग को कोई काम या जीवन नीरस लगता है। आपका दिमाग़ बोर हो जाता है और बिना कुछ किये ही थक जाता है। यह ज़रूरी नहीं है कि थकान कभी आपके पास फटके। किसी चीज़ में रुचि लें। किसी काम में पूरी तरह मन लगायें। इसमें अपने आपको पूरी तरह से झोंक दें। अपने खोल से बाहर निकलें। कुछ करें। कुछ बनें। सिर्फ़ अख़बार पढ़कर दुनिया की मीनमेख न निकालते रहें और यह न कहते रहें : '' वे लोग इस बारे में कुछ क्यों नहीं करते?'' जो व्यक्ति अपनी पसंद का कोई काम कर रहा है वह कभी नहीं थकता। अगर आप अच्छे काम नहीं कर रहे हैं, अगर आप अपने काम को पसंद नहीं कर रहे हैं, तो कोई ताज्जुब नहीं कि आप जल्दी ही थक जाते हैं। आप अपने ही हाथों अपने आपको नष्ट कर रहे हैं। आपका क्षय हो रहा है। आप शाखा पर लगे-लगे ही मुर्दा हो रहे हैं। अपने से ज्यादा बड़े कामों में आप जितनी अधिक रुचि लेंगे, आपको उतनी ही ज़्यादा ऊर्जा मिलेगी। आपको खुद के बारे में सोचने का समय नहीं मिलता और आप भावनात्मक मुश्किलों के बोझ तले दबते भी नहीं है।

सतत् ऊर्जा के साथ रहने के लिये अपने भावनात्मक दोषों को सुधारना महत्वपूर्ण है। जब तक आप ऐसा नहीं करेंगे तब तक आपको पूर्ण ऊर्जा प्राप्त नहीं होगी।

स्वर्गीय न्यूट रॉक्ने अमेरिका के महानतम् फुटबाल कोचों में से एक थे। उन्होंने एक बार कहा था कि किसी फुटबॉल खिलाड़ी में तब तक पर्याप्त ऊर्जा नहीं रह सकती जब तक कि हम अपनी भावनाओं को आध्यात्मिक नियंत्रण में न रखे। दरअसल, उन्होंने तो यहाँ तक कहा था कि वे अपनी टीम में ऐसे किसी खिलाड़ी को नहीं लेंगे जिसके मन में अपने साथी खिलाड़ियों के प्रति वास्तविक दोस्ताना भाव न हो। ''मुझे हर व्यक्ति की सर्वाधिक ऊर्जा को बाहर निकालना है,''उन्होंने कहा, ''और मैंने पाया है कि ऐसा उस स्थिति में नहीं किया जा सकता जब वह दूसरे व्यक्ति से नफ़रत करता है। नफ़रत उसकी ऊर्जा का रास्ता रोकती है और जब तक वह इसे बाहर नहीं निकाल देता और फिर से दोस्ताना भाव विकसित नहीं कर लेता, तब तक वह अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन नहीं कर सकता।'' जिन लोगों में ऊर्जा की कमी होती है वे अपने गहन, मूलभूत भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक संघर्षो के कारण कमोबेश असंतुलित होते हैं। कई बार यह असंतुलन अत्यधिक होता है, परतु उपचार हमेशा संभव है।

एक मध्य-पश्चिमी शहर में मुझे एक व्यक्ति से चर्चा करने के लिये कहा गया जो पूर्व में उस समुदाय का बहुत ही सक्रिय नागरिक था और जो अब ऊर्जा- और जीवंतता में भारी कमी का शिकार हुआ था। उसके सहयोगियों का विचार था कि उसे दिल का दौरा पड़ गया था। उनके इस तरह से सोचने का कारण यह था कि चलते समय उसके कंधे झुके रहते थे, उसका नज़रिया पूरी तरह आलस्यपूर्ण हो गया था और जिन गतिविधियों में वह पहले अपना बहुत समय दिया करता था अब उसने अपने आपको उनसे पूरी तरह दूर कर लिया था। वह कई घंटों तक अपनी कुर्सी पर निराश बैठा रहता था और अक्सर रोता भी था। उसमें नर्वस ब्रेकडाउन के कई लक्षण दिखाई दे रहे थे।

मैं उससे एक निश्चित समय पर मेरे होटल के कमरे में मिला। मेरा दरवाज़ा खुला हुआ था और इस वजह से मैं लिफ़्ट को देख सकता था। अब जब लिफ्ट का दरवाज़ा खुला तो संयोग से मैं उसी दिशा में देख रहा था और यह व्यक्ति धीमे-धीमें हॉल में चल रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे किसी भी क्षण वह लड़खड़ाकर गिर

जायेगा। उसकी चाल से यह संकेत मिल रहे थे कि वह इतनी दूर चलने में शायद ही सफल हो पायेगा। मैंने उसे बैठने के लिये कहा और हमारी चर्चा शुरू हो गयी। चर्चा सारहीन साबित हुई क्योंकि इससे उसकी स्थिति पर कोई प्रकाश नहीं पड़ा। वह अपनी स्थिति के बारे में शिकायतें ही कर रहा था और वह मेरे प्रश्नों पर विचार भी नहीं कर रहा था। स्पष्ट रूप से वह प्रचुर आत्म-दया (आत्म-दीनता) का शिकार था।

जब मैंने उससे पूछा कि क्या वह ठीक होना चाहेगा तो उसने मेरी ओर बहुत ही करुण और मार्मिक भाव से देखा। उसकी व्यग्रता उसके जवाब द्वारा स्पष्ट हो गयी, जब उसने कहा कि यदि उसे जीवन में पहले जैसी रुचि और ऊर्जा फिर से प्राप्त हो जाये तो वह इसके लिये दुनिया की कोई भी चीज़ देने के लिये तैयार है।

मैंने उससे उसके जीवन और अनुभव के बारे में कुछ तथ्य उगलवाना शुरू किये। ये बहुतही अंतरंग प्रकृति के थे और उनमें से कई तो उसकी चेतना में इतनी गहराई में दबे हुये थे कि वह बेहद मुश्किल से उन्हें बाहर निकाल पाया। वे उसे बचपन के नज़रिये और डरों के कारण थे, जिनमें से अधिकांश माता-पुत्र संबंधों से उपजे थे। कईअपराधबोध की स्थितियाँ भी सामने आयी। ऐसा लग रहा था जैसे इतने बरसों की यात्रा में यह तत्त्व इकट्ठे होते चले गये थे जैसे बालू के कण नदी की धारा के किनारे इकट्ठे होते जाते हैं। ऊर्जा का प्रवाह धीरे-धीरे कम होता गया और इस वजह से ऊर्जा की अपर्याप्त मात्रा ही उसे प्राप्त हो पा रही थी। इस व्यक्ति का मस्तिष्क पूरी तरह से पीछे क़दम खींचने की स्थिति में था और तर्क या बुद्धि की उसकी क्षमता पूरी तरह से कुंद हो चुकी थी।

मैंने मार्गदर्शन माँगा और मुझे आश्चर्य हुआ जब मैंने अपने आपको उसके पास खड़ा पाया, जबकि मेरा हाथ उसके सिर पर रखा हुआ था। मैंने प्रार्थना की और ईश्वर से उस व्यक्ति का उपचार करने का आग्रह किया। अचानक मुझे एहसास हुआ कि मेरे हाथ में से शक्ति निकलकर उसके सिर की ओर जा रही थी। मैं जल्दी से यह जोड़ना चाहता हूँ कि मेरे हाथ में कोई उपचारक शक्ति नहीं है, परंतु कभी-कभार किसी इन्सान को निमित्त बनाया जाता है और स्पष्ट रूप से इस प्रकरण में ऐसा ही हुआ था क्योंकि तत्काल उस व्यक्तिने पूर्ण सुख और शांति के भाव से ऊपर की तरफ़ देखा और कहा : ''वे यहाँ थे। उन्होंने मुझे स्पर्श किया था। मैं पूरी तरह बदल चुका हूँ।''

उसके बाद उसकी दशा में चमत्कारी सुधार हुआ और आज वह एक बार फिर पुराना उत्साह वापस पा चुका है। सिर्फ़ एक ही बात नयी है और वह यह कि उसमें अब वह शांति आत्मविश्वास दिखाई देता है जो उसमें पहले नहीं था। स्पष्ट रूप से उसके व्यक्तित्व का मार्ग बंद हो गया था जिस वजह है शक्ति का प्रवाह रुक गया था और यह बंद मार्ग आस्था के प्रयोग से खुल गया जिसके कारण ऊर्जा का मुक्त प्रवाह एक बार फिर से होने लगा।

इस घटना द्वारा सुझाये गये तथ्य यह है कि उपचार होता है और मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का लगातार संग्रह ऊर्जा के प्रवाह को रोक सकता है। यह तथ्य भी उभरकर सामने आता है कि यही तत्त्व आस्था की शक्ति द्वारा घुल सकते हैं और इस तरह इन्सान के अंदर के दैवी मानवीय ऊर्जा के मार्ग को एक बार फिर से खोल सकते हैं।

अपराधबोध और डर की भावनाओं का ऊर्जा पर जो प्रभाव पड़ता है उसे उन सभी लोगों ने मान्यता प्रदान की है जो मानवीय स्वभाव की समस्याओं पर काम करते हैं। डर या भावना या दोनों को ही बनाये रखने में इतनी अधिक ऊर्जा लग जाती है कि जीवन के कार्यों को करने के लिये अक्सर थोड़ी-सी ऊर्जा बच पाती है। डर आौर अपराधबोध द्वारा होने वाला ऊर्जा का क्षय इतना अधिक होता है किसी व्यक्ति में अपने काम को करने की बहुत कम शक्ति बचती है। इसका कारण यह होता है कि वह जल्दी थक जाता है। अपनी ज़िम्मेदारी की आवश्यकता को पुरा करने में असमर्थ होने की वजह से वह अपने आपको आलसी, नीरस और निरुत्साहित स्थिति में खींच लेता है। दरअसल वह हार मानने और उनींदी स्थिति में शक्तिहीनता की अवस्था में गिर जाने के लिये तैयार रहता है।

एक मनोविश्लेषक ने मेरे पास एक बिज़नेसमैन को भेजा जो उससे परामर्श ले रहा था। ऐसा दिख रहा था कि वह मरीज, जिसे आम तौर पर नैतिक रूप से नेक और सही माना जाता था, किसी परायी औरत के चक्कर में पड़ गया था जो शादीशुदा थी। उसने इस संबंध को ख़त्म करने की कोशिश की, परंतु उसकी प्रेमिका उसे छोड़ने के लिये तैयार नहीं थी, हालांकि उसने उससे गंभीरता से इस प्रकरण को समाप्त करने का आग्रह किया ताकि वह एक बार फिर अपनी पुरानी सम्मानजनक अवस्था में वापस लौट सके।

उस महिला ने तो उसे यहाँ तक धमकी दी कि अगर उसने संबंध तोड़ने पर ज़ोर दिया तो वह अपने पति को इस रोमांस के बारे में बता देगी और उसकी पोल खोल देगी। मरीज़ इस तथ्य को जानता था कि यदि उसके पति को इस स्थिति का पता चला तो इसका परिणाम यह होगा कि समाज में उसकी बदनामी होगी। वह एक इज्ज़तदार व्यक्ति था और वह अपनी इज्ज़त बचाना चाहता था, और इसलिये वह बदनामी से डरता था।

भेद खुलने के डर से ग़लत काम करने के कारण हुये अपराधबोध की वजह से वह न तो सो पा रहा था, न ही उसे चैन मिल रहा था। चूँकि यह सिलसिला दो-तीन महीने से चल रहा था, इसलिये उसकी ऊर्जा में बहुत गंभीर कमी हो गयी थी और उसमें अपने काम को कुशलता से करने की जीवंतता नहीं बची थी। बहुत से महत्त्वपूर्ण मामले पेंडिंग पड़े हुये थे और स्थिति गंभीर हो चुकी थी।

जब मनोविश्लेषक ने यह सुझाव दिया कि वह नींद न आने की बीमारी के लिये मुझसे यानी एक धार्मिक व्यक्ति से मिले तो उस बिज़नेसमैन ने यह कहा कि कोई धार्मिक व्यक्ति उसकी अनिद्रा की परेशानी को कैसे सुधार सकता है। इसके बजाय उसे महसूस हो रहा था कि कोई मेडिकल डॉक्टर उसे इसके लिये असरदार दवा दे सकता है।

जब उसने मुझे अपना नज़रिया बताया तो मैंने उससे कहा कि वह नींद की आशा कैसे कर सकता है जब वह दो अप्रिय और परेशान करने वाले लोगों के साथ हमबिस्तर हो रहा है जिनके साथ वह सोने की कोशिश कर रहा है।

''किन दो लोगों के साथ ?'' उसने आश्चर्य से पूछा। ''मैं तो बिलकुल अकेला सोता हूँ।''

मैंने कहा, ''नहीं, मेरे दोस्त, तुम अकेले नहीं सोते। तुम्हारे दोनों तरफ़ कोई और भी सोता है।''

''आप क्या कहना चाहते हैं ?'' उसने पूछा।

मैंने कहा, ''तुम हर रात को जब सोने की कोशिश करते हो तो तुम्हारे एक तरफ़ डर सोता है और दूसरी तरफ़ अपराधबोध। और तुम एक असंभव कार्य करने का प्रयास कर रहे हो। नींद की गोलियों से कोई फ़र्क़ नही पड़ता चाहे तुम कितनी भी

नींद की गोलियाँ ले लो। और आप स्वीकार कर चुके हैं कि आपने बहुत सारी गोलियाँ ली हैं, परंतु उनका आप पर कोई असर नहीं हुआ। उनका आप पर इसलिये कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि वे आपके मस्तिष्क में उतनी गहराई तक नहीं पहुँच सकतीं, जहाँ पर अनिद्रा का कारण है और जो आपकी ऊर्जा के क्षय का कारण है। अगर आप चाहते हैं कि आप एक बार फिर चैन की नींद सो सकें और अपनी शक्ति को प्राप्त कर सकें तो आपको पहले डर और अपराधबोध को निकालना होगा।''

हमने उसके डर के बारे में बातें कीं। यह डर था उसके अनैतिक संबंध के सार्वजनिक हो जाने का भय। मैंने सुझाव दिया कि चाहे परिणाम जो हो,उसे संबंध तोड़ देना चाहिये। सही काम करने का जो भी परिणाम निकले उसे अपने मन में उस परिणाम को स्वीकार करने के लिये तैयार रहना चाहिये मैंने उसे आश्वस्त किया कि सही काम करने से आम तौर पर सही परिणाम मिलते हैं। सही काम करने से ग़लत परिणाम कभी नहीं निकलते । मैंने उसे प्रेरित किया कि वह इस प्रकरण को ईश्वर के हाथ में सौंप दे और सिर्फ़ सही काम करे, परिणाम को ईश्वर के ऊपर छोड़ दे।

उसने डरते हुये ऐसा किया, परंतु पूरी गंभीरता से किया। महिला ने तो चतुराई के कारण या अपनी अंतरात्मा के कारण या फिर किसी और के प्रेमजाल में फँसाने के निर्णय के कारण इस व्यक्ति को मुक्त कर दिया।

ईश्वर से क्षमा माँगकर उस व्यक्ति के अपराधबोध का इलाज किया गया। जब भी हम ईश्वर से सच्चे दिल से क्षमा माँगते हैं, तो वे हमें निश्चित रूप से क्षमा कर देते हैं। हमारे मरीज़ को राहत और शांति प्राप्त हुई। यह आश्चर्यजनक था कि जब उसके मन से दुगुना बोझ उतर गया तो उसका व्यक्तित्व एक बार फिर सामान्य रूप से काम करने लगा। उसे नींद आने लगी। उसे शांति मिली, उसकी शक्ति एक बार फिर लौट आयी। ऊर्जा भी तत्काल लौट आयी। अब वह अधिक समझदार और कृतज्ञ व्यक्ति है और अपनी सामान्य गतिविधियों को पूर्ण करने में समर्थ है।

घटती ऊर्जा का एक आम उदाहरण नीरसता है। दबाव, लगातार एक ही रुटीन और लगातार ज़िम्मेदारियों का बोझ मस्तिष्क की ताज़गी को नीरस बना देता है जो किसी व्यक्ति में अपने काम को सफलतापूर्वक करने के लिये होना चाहिये। जैसे कोई एथलीट नीरस हो जाता है उस तरह कोई भी व्यक्ति चाहे उसका व्यवसाय कुछ

भी हो खराब दौर से गुज़रता है। इस मानसिक स्थिति में पहले जिस काम को तुलनात्मक रूप से आसानी से किया जाता था, अब उस काम कठिनाई से करने मेंभी पहले से अधिक ऊर्जा के व्यय की आवश्यकता होती है। परिणामस्वरूप जीवंत शक्तियों पर इस आवश्यक शक्ति की आपूर्ति करने के लिये दबाव पड़ता है और व्यक्ति की पकड़ और शक्ति अक्सर कम हो जाती हैं।

इस मानसिक अवस्था का समाधान एक प्रसिद्धि बिज़नेस लीडर ने किया जो एक विश्वविद्यालय में बोर्ड ऑफ़ ट्रस्टीज के प्रेसिडेंड थे। एक प्रोफ़ेसर पहले बहुत लोकप्रिय और बहुत बढ़िया प्रोफ़ेसर था। परंतु अचानक न जाने क्या हुआ कि उसकी पढ़ाने की क्षमता कम होने लगी। अब वह अपने विद्यार्थियों में रुचि जगाने में असमर्थ था। विद्यार्थियों और ट्रस्टीज़ दोनों की ही राय थी कि इस प्रोफ़ेसर को या तो उत्साह और रुचि के साथ पढ़ाने की अपनी पुरानी क्षमता को फिर से हासिल करना होगा या फिर उसकी जगह किसी और प्रोफेसर को रखना आवश्यक हो जायेगा। वे लोग प्रोफ़ेसर को बदलना इसलिये नहीं चाहते थे क्योंकि उसके रिटायरमेंट में अभी बहुत समय बचा था और उसके पास कई सक्रिय वर्ष थे।

जिस बिज़नेसमैंन के बारे में मैंने ऊपर बताया है उसने प्रोफ़ेसर को अपने ऑफ़िस में बुलाया और उससे कहा कि बोर्ड ऑफ़ ट्रस्टीज उसे छह महीनों की छुट्टी दे रहा है और इस दौरान उसकी तनख़्वाह और यात्रा का खर्च़ उसे दिया जायेगा। इसके लिये केवल एक शर्त थी और वह यह थी कि वह आराम करने के लिये दूर किसी स्थान पर जायेगा और अपनी ऊर्जा उत्साह और जोश को एक बार फिर से हासिल करेगा।

इस बिज़नेसमैन ने उसे अपने एक केबिन में जाने का सुझाव दिया जो जंगलों के बीच में था। उसने यह अजीब सुझाव भी दिया कि वह अपने साथ कोई भी पुस्तक नहीं ले जायेगा- सिवाय बाइबल के। उसने प्रोफ़ेसर को सुझाव दिया कि वह दिन में घूमे, फ़िशिंग करे और बगीचे में थोड़ा श्रम करें। साथ ही हर दिन बाइबल पढ़े और इस गति से पढ़े कि इन छह महीनों में वह कम से कम तीन बार इसे पूरा पढ़ले। उसने यह सुझाव भी दिया कि प्रोफ़ेसर बाइबल के जितने प्रसंग याद कर सकता हो, याद कर ले ताकि इस महान पुस्तक के महान विचार और शब्द उसके दिमाग़ में पूरी तरह से समा जावें।

बिज़नेसमैन ने कहा, ''मुझे विश्वास है कि अगर आप छह महीने तक प्रकृति के समीप रहकर लकड़ियाँ काटेंगे, ज़मीन खोदेंगे, बाइबल पढेंगे और गहरी झीलों में फ़िशिंग करेंगे तो आप बिलकुल नये व्यक्ति बनकर लौटेंगे।''

प्रोफ़ेसर इस अद्भुत प्रस्ताव पर सहमत हो गया। उसने या उसे जानने वालों ने जितनी आशा की थी , जीवन की इस पूरी तरह से भिन्न शैली से उसका सामंजस्य उससे अधिक आसानी से हो गया। दरअसल, उसे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उसे यह पसंद आया। जब वह आउटडोर जीवनशैली का आदी हो गया तो उसने पाया कि उसे इसमें आनंद आ रहा है। उसे अपने बुद्धिजीवी सहयोगियों और अपनी पुस्तकों की कुछ समय तक तो याद आयी, परंतु जब वह बाइबल पढ़ने के लिये विवश हो गया, जो उसके पास एकमात्र पुस्तक थी तो वह इसमें डूब गया। उसे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि बाइबल पुस्तक नहीं, बल्कि ''अपने आप में पूरी लाइब्रेरी'' था। इसके पन्नों में उसे आस्था, शांति और शक्ति मिली। छह महीने बाद जब वह लौटा, तो सचमुच एक नया व्यक्ति बनकर लौटा।

यह बिज़नेसमैन अब मुझे बताता है कि यह प्रोफ़ेसर अब ''जबर्दस्त शक्ति'' का भंडार बन गया है। उसकी नीरसता अब गायब हो चुकी है, पुरानी ऊर्जा एक बार फिर लौट आयी है, शक्ति का प्रवाह तीव्र हो चुका है और जीवन का आनंद एक बार फिर नये अंदाज़ में वापस लौट आया है।

(सकारात्मक सोच कि शक्ति, नार्मन विन्सेंटपील

किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके विचारों का समूह होता है, जो वह सोचता है, वैसा वह बन जाता है। **महात्मा गांधी**

काम समस्त सफलता की आधारभूत नींव होता है। **पाब्लो पिकासो**

काम वह वस्तु नहीं है जिससे किसी व्यक्ति की पराजय होती है, वास्तव में वह वस्तु चिंता है। **हेनरी वार्ड बीचर**

औपचारिक शिक्षा आपको जीविकोपार्जन के लिए उपयुक्त बना देती है और स्व शिक्षा(अनुभव) आपका भाग्य बनाती है। **जिन रॉन**

आपके जीवन का नियंत्रण केन्द्र आपका अपना रवैय्या है। **अज्ञात**

मेरा उत्तम क्षमा धर्म

(विराधक प्रति भी नहीं रखता हूँ 'अक्षमा भाव')

(दोषी से भी मैं शिक्षा लेता हूँ अतः उसको भी उपकारी मानूँ

(चाल :- आत्मशक्ति....2., क्या मिलिए....)

तेरी प्राप्ति हेतु तुझे भी वंदन, हे! मम उत्तम क्षमा धर्म।
दशधा धर्म में तुम हो प्रथम, तुम हो मम आत्मधर्म।।
उत्तम विशेषण से युक्त हो, अतः आप हो रत्नत्रय युक्त।
अनंतानुबंधी से संज्वलन क्रोध के, उपशमक्षयोपशमक्षय युक्त।।(1)।।

उपलक्षण या प्रधानता से तो, क्रोध के उपशमादि से तू उत्पन्न।
किंतु अक्षसंचार से आत्मिक दृष्टि से, मोहक्षोभ रहित से तू उत्पन्न।।
मोह क्षोभ रहित समता रूप तू, अतः आप हो आत्मस्वरूप।
अतएव आप सम्यक् चारित्रमय, अतःआप हो आत्मधर्म स्वरूप।।2।।

अतएव आप हो दशधा धर्म मय, अन्य नौधर्म भी आप स्वरूप।
'परस्पर उपग्रहो' होते है सभी धर्म, यह है एकानेक अनेकांत रूप।।।
तेरी उपासना करूँ (मैं) तेरी प्राप्ति हेतु यथायोग्य शक्ति भक्ति अनुसार।
तेरी प्रसन्नता व तेरे प्रसाद हेतु, नवकोटि से तुझे मैं करूँ स्वीकार।।3।।

आगम व अनुभव से मैं जाना, आत्मा में समाहित अनन्तशक्ति।
तू भी आत्मिक शक्ति सम्पन्न हो, अतएव मुझ में भी अनन्तशक्ति।।
तव शक्ति द्वारा व तवशक्ति हेतु, (मैं) कर रहा हूँ सतत तेरी साधना।
तेरी साधना से प्राप्त शक्ति द्वारा, कषायशत्रुओं की कर रहा हूँ विराधना।।4।।

दुष्ट दुर्जन व कुज्ञानी मोही द्वारा यदि होती मेरे प्रति विराधना।
तेरी शक्ति द्वारा विजय पा रहा हूँ, विराधक की भी न करूँ विराधना।।
विराधक से भी मैं शिक्षा ग्रहण करूँ, अतः वे भी है मेरे उपकारी।
उपकारी का मैं अपकार न करूं, न हि कृत उपकार साधव विस्मरंत्ति।।5।।

सामान्य जीव भी उपकारी का उपकार करें,मेरा लक्ष्य न साधारण बनने का।
असाधारण बनने हेतु भी मैं, अपकारी की भी करूँ मंगलकामना।।

मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ भाऊँ, स्वशुद्धात्मा भावना भाऊँ विशेषतः।
कर्म सिद्धान्त से मनोविज्ञान भी ध्याऊँ समता शांति सहिष्णुता अशेष।।6।।

निश्चय से मैं मेरा ही कर्त्ताभोक्ता, तथाहि हरजीव स्वकर्ता भोक्ता।
मैं अन्य का न कर्ता न भोक्ता, अतःमुझे मेरे स्वरूप में रहना अच्छा।।
इससे मेरी समता शांति शक्ति बढ़े, शोध बोध अनुभव व लेखन।
विराधक, उदासीन भी मम आराधक बने, 'कनक' का परमलक्ष्य
परिनिर्वाण।।7।।

(ग. पु. कॉ. दिनांक 05.06.2019 रात्रि 9:32)

(यह कविता मेरे परमभक्त नितिन जैन (सीपुर) की भावना से बनी)

उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग,, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य यह दस प्रकार का धर्म है।

उत्तम क्षमा–क्रोध की उत्पत्ति के निमित्तभूत असह्य आक्रोशादि के संभव होने पर भी कालुष्य भाव का नहीं होना क्षमा है। शरीर-यात्रा के लिए घर-घर में भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए भिक्षु को दुष्टजनों के द्वारा कृत आक्रोश (गाली), हँसी, अवज्ञा, ताड़न, शरीरच्छेदन आदि क्रोध असह्य निमित्त मिलने पर भी कलुषता का न होना उत्तम क्षमा है।

इन उत्तम क्षमा आदि सर्वधर्मों में स्वगुण-प्राप्ति और प्रतिपक्षी दोष की निवृत्ति की भावना की जाती है। अतः ये दस धर्म संवर के कारण हैं, ऐसा जानना चाहिए। जैसे-व्रत-शील का रक्षण, इहलोक और परलोक में दुःख नहीं होना, सर्व जगत् में सम्मान और सत्कार प्राप्त होना आदि क्षमा के गुण हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ का नाश करना क्षमा धर्म के प्रतिपक्षी क्रोध के दोष है। अर्थात् क्षमा के कारण व्रत-शीलादि का रक्षण, सम्मान-सत्कार आदि की प्राप्ति होती है और क्रोध से धर्मादि सर्व गुणों का नाश होता है, ऐसा चिंतन करके क्षमा धारण करनी चाहिये अथवा पर (दूसरे) के द्वारा प्रयुक्त गाली आदि क्रोध निमित्त का अपनी आत्मा के भावाभाव का चिंतन करना चाहिए कि ये दोष मुझमे विद्यमान है ही यह क्या मिथ्या कहता है ? ऐसा विचार करके गाली देने वाले को क्षमा करना चाहिये(यह भाव चिंतन है)। यदि यह

दोष अपने में नहीं है तो 'यह दोष मुझमें नहीं है, अज्ञान के कारण यह बेचारा ऐसा कहता है' इस प्रकार अभाव का चिंतन करके क्षमा करना चाहिये।

अथवा गाली वा आक्रोश वचन कहने वाले के बाल (मूर्ख) स्वभाव का चिंतन करना चाहिये। परोक्ष, प्रत्यक्ष, आक्रोश, ताड़न-मारण, धर्मभ्रंश आदि का उत्तरोत्तर रक्षार्थ विचार करना चाहिये। जैसे कोई बालक (मूर्ख) परोक्ष से गाली देता है, कटु वचन कहता है तो बालक पर क्षमा ही करना चाहिये। सोचना चाहिए कि मूर्खों का यह स्वभाव ही है। भाग्यवश यह मुझे परोक्ष (पीठ पीछे) हो गाली देता है, प्रत्यक्ष तो नहीं। मूर्ख तो मुँह पर गाली देते हैं। अतः लाभ ही है ऐसा मानना चाहिए। यदि मूर्ख प्रत्यक्ष गाली देता है तो सोचना चाहिए कि वह भाग्यवश मुझे गाली ही देता है, मारता तो नहीं, ऐसा विचार कर क्षमा करना चाहिए व गाली देना बालकों का स्वभाव ही है, मेरा तो इसमें लाभ ही है, ऐसा मानना चाहिए कि मूर्ख तो मारते भी हैं। यदि मूर्ख मारता है तो विचारना चाहिए कि भाग्यवश यह मुझे मारता ही है,प्राणतो नहीं लेता है, प्राणों से रहित तो नहीं करता है, मूर्ख प्राण भी लेते हैं, यह तो मुझे लाभ ही है, ऐसा मानना चाहिए। प्राण ले लेने पर भी क्षमा ही करना चाहिए। विचार करना चाहिए कि भाग्यवश यह मुझको मारता ही है, मेरे प्राण ही लेता है, मेरा धर्म तो नष्ट नहीं करता। इस प्रकार बाल स्वभाव के चिंतन द्वारा चित्त में क्षमा भाव को पुष्ट करना चाहिए अथवा सोचना चाहिए कि यह मेरा ही अपराध है जो मैंने पूर्व में महान् दुष्कर्म किये थे, उसके फलस्वरूप मुझे ये गाली-कुवचन सुनने पड़ रहे हैं। यह गाली देने वाला तो इसमें निमित्त मात्र है, इसमें मूल कारण तो मेरा पूर्वोपार्जित कर्म ही है ऐसा विचार करके सहन करना चाहिए।

जैसे-जैसे इस जीव के उपशम, दया, क्षमा और वैराग्य बढ़ते है वैसे-वैसे ही अक्षय मोक्षसुख भावित होता है।

संसारविसमदुग्गे भवगहणे कह वि मे भमंतेण।
दिट्ठो जिणवरदिट्ठो जेट्ठो धम्मोत्ति चिंतेज्जो।।(756)

संसारमय विषमदुर्ग इस भवन में भ्रमण करते हुए मैंने बड़ी मुश्किल से जिनवर कथित प्रधान धर्म प्राप्त किया है- इस प्रकार ये चिन्तवन करें।

इस प्रकार अनित्यादि अनुप्रेक्षाओं का सानिध्य मिलने पर उत्तमक्षमादि के धारण करने से महान् संवर होता है। अनुप्रेक्षा दोनों का निमित्त है इसलिए 'अनुप्रेक्षा'

वचन मध्य में दिया है। क्योंकि अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करता हुआ यह जीव उत्तमक्षमादि का ठीक तरह से पालन करता है और परीषहों को जीतने के लिए उत्साहित होता है।

दस दो य भावणाओं एवं संखेवदोसमुद्धिट्ठा।
जिणवयणे दिट्ठाओ बुहजणवेरग्ग जणणीओ।। (765)

इस प्रकार संक्षेप में द्वादश भावना कही गयी है जो कि, जिनवचन में विद्वानों के वैराग्य की जननी मानी गई है।

अणुवेक्खाहिं एवं जो अत्ताणं सदा विभावेदि।
सो विगदसव्वकम्मो विमलो विमलालयं लहदि।। (766)

इन अनुप्रेक्षाओं के द्वारा जो हमेशा आत्मा की भावना करता है वह सर्वकर्म से रहित निर्मल होता हुआ विमल स्थान को प्राप्त कर लेता है।

परीषह सहन करने का उपदेश

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः।(8)

मार्ग से च्युत न होने के लिए और कर्मों की निर्जरा करने के लिए जो सहन करने योग्य हो वे परीषह हैं।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को मोक्षमार्ग कहते हैं। यह मोक्षमार्ग संवर एवं निर्जरा सहित है। आस्रव एवं बंध मोक्षमार्ग के विपरीत है। मोक्षमार्ग से च्युत होना अर्थात् रत्नत्रय से च्युत होना,कर्मों के आस्रव एवं बंध करना है। परीषह से जीव भयभीत होकर परास्त होकर रत्नत्रय के मार्ग से च्युत हो जाता है इसलिए यहाँ पर कहा गया है कि, परीषहों को भावपूर्वक-आदरपूर्वक सहन करो जिससे संवर, निर्जरा होगी और मोक्षमार्ग में स्थिरता आयेगी।

परीषहों को जीतने वाले संत उन परीषहों के द्वारा तिरस्कृत न होते हुए प्रधान संवर का आश्रय लेकर अप्रतिबन्ध से क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ करने के सामर्थ्य को प्राप्त कर उत्तरोत्तर उत्साह को बढ़ाते हुए संकल्प कषायों की प्रध्वंस शक्ति वाले होकर ध्यान रूप परशु के द्वारा कर्मों की जड़ को मूल से उखाड़ कर जिनके पंखों पर जमी हुई धुल झड़ गई है, उन उन्मुक्त पक्षियों की तरह पंखों को फड-फड़ाकर ऊपर उठ जाते हैं। इसलिये संवरमार्ग और निर्जरा की सिद्धि के लिए परीषह सहन करना चाहिये।

परीषहाद्यविज्ञानादास्रवस्य निरोधिनी।

जायतेऽध्यात्मयोगेन, कर्मणामाशु निर्जरा।।(24) (इष्टोपदेश)

आत्मा में आत्मा के चिंतवन रूप ध्यान से परीषहादिक का अनुभव न होने से कर्मों के आगमन को रोकने वाली कर्म-निर्जरा शीघ्र होती है।

आत्मदेहान्तरज्ञानजनिताल्हादनिर्वृतः।

तपसा दुःष्कृतं घोरं भुज्जानोऽपि न खिद्यते।।

आत्मा व शरीर के विवेक (भेद) से पैदा हुए आनंद से परिपूर्ण (युक्त) योगी, तपस्या के द्वारा भयंकर उपसर्गों व घोर परीषहों को भोगते हुए भी खेद-खिन्न नहीं होते हैं।

एक कवि ने कहा भी है-

घृष्ठं-घृष्ठं पुनरपिपुनः चन्दनं चारू गन्धम्।

छिन्नं-छिन्नं पुनरपिपुनः स्वाद चैव इक्षुदण्डम्।

दग्धं दग्धं पुनरपिपुनः कंचनं कान्तवर्णम्।

न प्राणान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते चोक्तमानाम्।

चन्दन का जितना घर्षण किया जाता है उतना ही चन्दन अधिक सुगंध प्रदान करता है। गन्ना को जितना पेला जाता है उतना ही स्वादभरित रस प्रदान करता है। सुवर्ण को जितना दग्ध (जलाया) किया जाता है उतना सुवर्ण कांत-कमनीय होकर प्रकाशमान हो जाता है उसी प्रकार साधु-सज्जन धर्मात्मा व्यक्ति जितना ही उपसर्ग कष्ट, ताड़न, मारन, गाली-गलौज रूपी अग्नि से संतप्त होता है वह उतना ही शुद्ध, निर्मल, पवित्र होकर आध्यात्मिक ज्योति से चमक उठता है। उसका प्राणांत होने पर भी प्राण से भी प्रिय, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ धर्म को त्याग नहीं करता है। वह प्रियधर्मी एवं दृढ़धर्मी होता है।

बाईस परिषह

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशव
धयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि।। (9)

क्षुधा, तृष्णा, शीत,उष्ण, दंशमशक, नग्नता, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या,शय्या, आक्रोध, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन इन नाम वाले परीषह है।

बाह्य और आभ्यन्तर कारणों से जो शारीरिक और मानसिक पीड़ा के कारणाभूत क्षुधादि परीषह है, उसे मोक्षमार्ग के पथिक को साम्य भाव से सहन करना चाहिए तथा जीतना चाहिए। क्योंकि परीषहों को नहीं जीतने पर और जब सहन नहीं होते हैं तब उसके विविध कर्मबंध हो जाते हैं। परिषह एवं उपसर्ग भी पूर्वोपार्जित कर्म से आते है। उस कष्ट को साम्य भाव से सहन करने से पूर्वापार्जित कर्म की प्रचुर निर्जरा होती है। इसलिये ज्ञानी पूर्वोपार्जित कर्मों की निर्जरा करते के लिए एवं रत्नत्रय से च्युत नहीं होने के लिए कष्टों को साम्य भाव से सहन करते हैं।

सुखं दुखं या स्यादिह विहितकर्मोदयवशात्।
कुतः प्रीतिस्तापः कुतः इति विकल्पाद्यादि भवेत्।। (262)
उदासीनस्तस्य प्रगलित पुराणं न हि नवं।
समास्कन्दत्येषु स्फुरति सुविदग्धो मणिरिव।। (263) आत्मा.

संसार में पूर्वकृत कर्म के उदय से जो भी सुख अथवा दुःख होता है, उससे प्रीति क्यों और खेद भी क्यों, इस प्रकार के विचार से यदि जीव उदासीन होता है राग और द्वेष से रहित होता है तो उसका पुराना कर्म तो निर्जीण होता है और नवीन कर्म निश्चय से बंध को प्राप्त नहीं होता है। ऐसी अवस्थाओं में यह संवर और निर्जरा से सहित जीव अत्यन्त निर्मल मणि के समान प्रकाशमान होता है -स्व और पर को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान से सुशोभित होता है।

जो साधक होते हैं उनके जीवन में अनेक विपरीत परिस्थितियां भी आती है। साधक इन विपरीत परिस्थितियों से घबराकर पलायनवादी नहीं बनता है परन्तु उन परिस्थितियों का सामना करता है। कवि ने कहा भी है-

जीवन में आये आँधी, आये घोर तूफान।
सुमेरू सा अचल रहे, यही साधु पहचान।
उत्तर रामचरित में भवभूति ने कहा भी है-
व्रजादपि कठोराणि, मृदुनि कुसुमान्यपि।
लोकोत्तराणि चेत्तांसि, को वा विज्ञातुमर्हति।।

कर्त्तव्य पालन, कष्ट सहन में वज्र के समान कठोर परन्तु हृदय से कुसुम से भी कोमल ऐसे महान् पुरुष के हृदय को कौन जान सकता है

भर्तृहरि ने कहा भी है- ''विपदि धैर्य'' अर्थात् विपत्ति में धैर्य रखना महान् पुरुष का लक्षण है। विपत्तियों से अनेक शिक्षा मिलती है, धैर्य बढ़ता है, विवेक जाग्रत होता है, सहनशीलता वृद्धिगत होती है।

अदुःखभावितं ज्ञानं, क्षीयते दुःखसन्निधौ।
तस्माथाबलं दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनिः।। (102) सं.त.

बिना काय-क्लेश की भावना किया गया आत्म स्वरूप का ज्ञान शारीरिक कष्ट आ जाने पर छूट जाता है। इस कारण आत्मध्यानी मुनि यथा-शक्ति परीषह सहन, तथा उपसर्ग सहन आदि शारीरिक कष्टों के साथ आत्म-चिन्तन ध्यान करें।

विषयविरतिःसंगत्यागः कषायविनिग्रहः।
शमयमदमास्त्वाभ्यासस्तपश्चरणोद्यम।
नियमितमनोवृत्तिर्भक्तिर्जिनेषु दयालुता।
भवति कृतिनः संसाराब्धस्तटे निकटे सति।। (224)

इन्द्रिय विषयों से विरक्ति, परिग्रह का त्याग, कषायों का दमन, राग-द्वेष की शांति, यम-नियम,इन्द्रिय दमन, सात तत्त्वों का विचार, तपश्चरण में उद्यम, मन की प्रवृत्ति पर नियंत्रण, जिन भगवान् में भक्ति और प्राणियों पर दयाभाव, ये सब गुण उसी पुण्यात्मा जीव के होते हैं जिसके कि, संसार रूप समुद्र का किनारा निकटमें आ चुका है।

अरति परीषहजय-संयम से रति करना अरति परीषहजय कहलाता है। क्षुधा आदि की बाधा सताने पर संयम की रक्षा में, इन्द्रियों को बड़ी कठिनता से जीतने में, व्रतों के भले प्रकार पालन करने के भार की गुरुता प्राप्त होने पर, सदैव प्रमाद रहित परिणामों की सम्हाल करने में, भिन्न-भिन्न देशभाषाओं के नहीं जानने पर विरह और चपल प्राणियों से भरे भयानक मार्गों से अथवा राज्य के कर्मचारियों आदि से भयानक परिस्थिति में नियत रूप से एकाकी विहार करने आदि से जो अरति (खेद) उत्पन्न होती है उसे वे धैर्य विशेष से निवारण करते हैं। संयम विषयक रति (अनुराग) भावना के बिल से विषय सुख रति की (विषयानुराग को) विषमिश्रित आहार के संयम के समान विपाक में कटु मानने वाले उन परम संयमीजन के रति परीषह बाधा का अभाव होने से अरति परीषहजय होता है।

आक्रोश परीषहजय–अनिष्ट वचनों को सहन-करना आक्रोश परीषहजय है। तीव्र मोहविष्ट, मिथ्यादृष्टि आर्य, म्लेच्छ, खल (दुष्ट)पापाचारी, मत्त(पागल), उद्दृप्त(घमण्डी), शंकित आदि दुष्टजनों के द्वारा प्रयुक्त मा शब्द, धिक्कार शब्द, तिरस्कार अवज्ञा के सूचक कठोर, कर्कश, कानों को बधिर करने वाले, हृदय भेदी, हृदय में शूल के उत्पादक, क्रोधरूपी अग्नि की ज्वालाओं को बढ़ाने वाले और अप्रिय गाली आदि वचनों को सुनकर भी स्थिरचित्त रहने वाले, भस्म करने का सामर्थ्य होते हुए भी परमार्थ (तत्त्व विचार) में अवगाहित चित्त वाले, शब्द मात्र को श्रवण कर कटु शब्दों के अर्थ के विचार से पराङमुख, ''यह मेरे पूर्वोपार्जित अशुभ कर्म का उदय ही है जिससे मेरे प्रति इनका द्वेष है, ''इत्यादि पुण्य भावनाओं के चिन्तन रूप उपायों के द्वारा सुभावित साधु का अनिष्ट वचनों का सहन करना आक्रोश परीषहजय है।

सत्कार पुरस्कार परीषहजय–मान और अपमान में तुल्य भाव होना, सत्कार-पुरस्कार की भावना नहीं होना, सत्कार पुरस्कार परीषहजय है।

प्रज्ञा परीषह विजय– प्रज्ञा (बुद्धि) का विकास होने पर भी प्रज्ञा मद नहीं करना प्रज्ञा परीषह विजय हैं। 'मैं अंग पूर्व प्रकीर्णक आदि में विशारद हूँ, सारे ग्रंथों के अर्थ का ज्ञाता हूँ, अनुत्तरवादी हूँ, त्रिकाल विषयार्थवेदी हूँ, शब्द (व्याकरण), न्याय, अध्यात्म में निपुण हूँ, मेरे समक्ष सूर्य के सामने खद्योत के समान अन्यवादी निस्तेज हो जाते हैं, इस प्रकार विज्ञान का मद नहीं होने देना प्रज्ञा परीषहजय है।'

अज्ञान परीषहजय–अज्ञान के कारण होने वाले अपमान एवं ज्ञान की अभिलाषा को सहन करना अज्ञान परिषहजय है।

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने(13) त.सू.

ज्ञानावरण के सद्भाव में प्रज्ञा और अज्ञान परीषह होती है, प्रज्ञा क्षायोपशमिकी है, अर्थात्, ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होती है, अन्य ज्ञानावरण के उदय के सद्भाव में प्रज्ञा का सद्भाव है अतः क्षायोपशमिक की प्रज्ञा अन्य ज्ञानावरण के उदय में मद उत्पन्न करती है, सर्व ज्ञानावरण कर्म का क्षय हो जाने पर मद नहीं होता। अतः प्रज्ञा और अज्ञान परीषह ज्ञानावरण कर्म के उदय से उत्पन्न होती है अर्थात् इन दोनों परिषहों की उत्पत्ति में ज्ञानावरण कर्म का उदय ही कारण है।

केवल ज्ञानावरण कर्म के क्षय होने पर केवलज्ञान होता है केवलज्ञान होने पर किसी भी प्रकार अहंकार नहीं होता है। जो अत्यंत अज्ञानी है, जैसे-एकेन्द्रिय आदि जीव; इनके विशिष्ट क्षयोपशम नहीं होने से तथा तीव्र ज्ञानावरण का उदय होने पर विशेष ज्ञान न होने के कारण इनके भी प्रज्ञा और अज्ञान परिषह विशेष नहीं होती है। लोकोक्ति भी है - ''रिक्त चना बाजे घना''

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।

ज्ञानलवदूर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति।। (13) (नीतिशतक)

नासमझ को सहज में प्रसन्न किया जा सकता है। समझदार को उससे भी सहज में प्रसन्न किया जा सकता है परन्तु जो न समझदार है, न नासमझ है, ऐसे श्रेणी के मनुष्य को ब्रह्म भी संतुष्ट नहीं कर सकते।

इसीलिये इंग्लिश में कहावत है-A half mind is always dengerous. जो अल्पज्ञ होते हैं वे भयंकर होते हैं।

"The little mind is proud of own condition." संकीर्ण मन एवं कम बुद्धि वाले अधिक अहंकारी होते है। अल्पज्ञ लोग अहंकार से स्वयं को सर्वज्ञ मानकर सत्य को इंकार करते हैं।

मूर्खस्य पंच चिह्नानि गर्वी दुर्वचनी तथा।

हठी चाप्रियवादी च परोक्त नैव मन्यते।। चाणक्य

मूर्खो के निम्नलिखित पाँच चिह्न हैं।

(1) अहंकारी होना (2) अपशब्द बोलना (3) हठग्राही (4) अप्रिय बोलना (5) दूसरों के द्वारा कहा हुआ हित सत्य नहीं मानना।

सत्संयमहारामं यमप्रशमजीवितम्।

देहिनां निर्दहत्येव क्रोधवह्निः समुत्थितः।। 1 ज्ञानार्णव

जीवों के यम, नियम तथा प्रशम (शान्त भाव) ही है जीवन जिसका ऐसे उत्कृष्ट संयमरूपी उपवन (बाग) को प्रज्वलित हुई क्रोधरूपी अग्नि भस्म कर देती है।

दृग्बोधादिगुणानर्घ्यरत्नप्रचयसंचितम्।

भाण्डागारं दहत्येव क्रोधवह्निः समुत्थितः।।2।।

तथा यह क्रोधरूपी अग्नि होने पर सम्यग्दर्शनज्ञानादि अमूल्य रत्नों के समूहों से संचित किये गुणरूपी भंडार को दग्ध कर देती है।

संयमोत्तमपीयूषं सर्वाभिमतसिद्धिदम्।

कषायविषसेकोऽयं निःसारीकुरुते क्षणात्।।3।।

इस कषायरूपी विष का सिंचन करना सर्व मनोवांछित सिद्धि के देने वाले संयमरूपी उत्तम अमृत को भी क्षणमात्र में निःसार कर देता है।

तपःश्रुतयमाधारं वृत्तविज्ञानवर्द्धितम्।

भस्मीभवति रोषेण पुंसां धर्मात्मकं वपुः।।4।।

चारित्र और विशिष्ट ज्ञान से बढ़ाया हुआ तथा तप, स्वाध्याय और संयम का आधार जो पुरुषों का धर्मरूपी शरीर है सो क्रोधरूपी अग्नि से भस्म हो जाता है।

अयं समुत्थितः क्रोधो धर्मसारं सुरक्षितम्।

निर्दहत्येव निःशङ्कं शुष्कारण्यमिवानलः।।5।।

प्रगट हुआ यह क्रोध सूखे वन को अग्नि के समान सुरक्षित धर्मरूपी सार कहिये जल अथवा धन को निःसंदेह दग्ध कर देता है।

पूर्वमात्मानमेवासौ क्रोधान्धो दहति ध्रुवम्।

पश्चदन्यत्र वा लोको विवेकविकलाशयः।।6।।

क्रोध से अन्धा हुआ विवेक रहित यह लोक प्रथम तो आपको निश्चय करके जला देता है, तत्पश्चात् दूसरों को जलावे अथवा नहीं भी जलावें, किन्तु पहिले अपने समीचीन परिणामों का घात तो कर ही लेता है।

कुर्वन्ति यतयोऽप्यत्र क्रुद्धास्तत्कर्म निन्दितम्।

हत्वा लोकद्वयं येन विशन्ति धरणीतलम्।।7।।

क्रोधित हुए मुनि भी इस जगत् में ऐसा निन्दित कार्य करते हैं कि जिससे दोनों लोग नष्ट करके नरक में पड़ जाते हैं फिर अन्य सामान्य जन का तो कहना ही क्या ?

क्रोधाद्दीपायनेनापि कृतं कर्मातिगर्हितम्।

दग्ध्वा द्वारावती नाम पूः स्वर्गनगरीनिभा।।8।।

देखो! दीपायन नाम के मुनि ने क्रोध से ऐसा निन्द्य कार्य किया कि स्वर्ग के समान सुन्दर द्वारिकापुरी भस्म कर दी।

लोकद्वयविनाशाय पापाय नरकाय च।

स्वपरस्यापकाराय क्रोधः शत्रुः शरीरिणाम्।।9।।

जीवों के क्रोध रूपी शत्रु इस लोक और परलोक को नष्ट करने वाला हैं तथा नरक में ले जाने वाला और पाप को करने वाला एवं निजपर अर्थात् दोनों का अपकार करने वाला है।

अनादिकालसंभूतः कषायविषमग्रहः।
स एवानन्तदुर्वारदुःखसंपादनक्षमः।।10।।

यह कषायरूपी विषय ग्रह अनादिकाल से इस प्राणी के पीछे लगा हुआ है और यही अनन्त दुर्निवार दुःखों को प्राप्त कराने में समर्थ है।

तस्मात्प्रशममालम्ब्य क्रोधवैरी निवार्यताम्।
जिनागममहाम्भोधेरवगाहश्च सेव्यताम्।।11

आचार्य उपदेश करते हैं कि हे आत्मन्! तू शान्त भावका अवलम्बन करके क्रोधरूपी वैरी को निवारण कर और जिनागमरूपी महासुमद्र का अवगाहन कर, क्योंकि क्रोध निवारण करने का यही एक उपाय है।

क्रोधवह्नेः क्षमैकेयं प्रशान्तौ जलवाहिनी।
उद्दामसंयमारामवृत्तिर्वाऽत्यन्तनिर्भरा।।12।।

क्रोधरूपी अग्नि को शान्त करने के लिये क्षमा ही अद्वितीय नदी है, क्षमा से क्रोधाग्नि बुझती है तथा क्षमा ही उत्कृष्ट संयमरूपी बाग की रक्षा करने के लिये अतिशय बाड है।

जयन्ति यमिनः क्रोधं लोकद्वयविरोधकं।
तन्निमित्तेऽपि संप्राप्ते भजन्तो भावनामिमां।।13।।

इस लोक और परलोक के बिगाड़ने वाले क्रोध को मुनिगण ही जीतते हैं, क्योंकि वे क्रोध के कारण प्राप्त होने पर इस प्रकार भावना करते हैं जो कि आगे कहते हैं।

यद्यद्य कुरुते कोऽपि मां स्वस्थं कर्मपीडितम्।
चिकित्सित्वा स्फुटं दोषं स एवाकृत्रिमः सुहृत्।।14।।

मुनि ऐसी भावना करते हैं कि मैं कर्म से पीड़ित हूँ, कर्मोदय से मुझमें कोई दोष उत्पन्न हुआ है सो उस दोष को अभी कोई प्रगट करे और मुझे आत्मानुभव में स्थापित करके स्वस्थ करे वही मेरा अकृत्रिम (स्वयं प्राप्त) मित्र (हितैषी) है। **भावार्थ**-जो मेरे किसी कर्म के उदय से दोष लगा हो तो उसे काढ कर जो सावधान करता है, वही

मेरा परम मित्र है, क्योंकि उसके प्रकट कराने से मैं उस दोष को छोड़ दूँगा, अतः उससे मुक्त हो जाऊँगा; इस प्रकार भावना करने से दोष करने वाले से क्रोध नहीं उपजता।

हत्वा स्वपुण्यसन्तानं मद्दोषं यो निकृन्तति।
तस्मै यदिह रुष्यामि मदन्यः कोऽधमस्तदा।।15।।

पुनः ऐसी भावना करते हैं कि जो कोई अपने पुण्य का क्षय करके मेरे दोषों को काढता(कहता) है उससे यदि मैं रोष करूँ तो इस जगत् में मेरे समान नीच वा पापी कौन है ? **भावार्थ**-जैसे कोई अपना धनादिक व्यय करके परका उपकार करता है, उसी प्रकार जो अपने पुण्यरूपी परिणामों को बिगाड़कर मेरे दोष कहे अर्थात् मुझे सावधान करके मेरे दोष काढे तो ऐसे उपकारी पर क्रोध करना कृतघ्नता ही है।

आक्रुष्टोऽहं हतो नैव हतो वा न द्विधाकृतः।
मारितो न हतो धर्मो मदीयोऽनेन बन्धुना।।16।।

यदि कोई अपने को दुर्वचन कहे तो मुनि महाराज ऐसा विचार करते हैं कि इसने दुर्वचना ही तो कहे हैं, मेरा घात तो नहीं किया ? और यदि कोई घात भी करे (अर्थात्) लाठी वगैरह से मारे) तो ऐसा विचारते हैं कि इसने मुझे केवल मारा ही तो है, काट कर दो खंड तो नहीं किये ? यदि कोई काटने ही लगे तो मुनिमहाराज विचारते हैं कि यह मुझे मारता (काटता) है परंतु मेरा धर्म तो नष्ट नहीं करता ? मेरा धर्म तो मेरे साथ ही रहेगा; अथवा ऐसा विचार करते हैं कि यह मेरा बड़ा हितैषी है, क्योंकि मैं चैतन्यस्वरूप शुद्धात्मा इस शरीररूपी कारागार में रुद्ध (कैद) हूँ सो यह इस शरीर (कारागार) को तोड़कर मुझे कैदखाने से छुड़ाता है, अतः यह मेरा बड़ा उपकार कर रहा है। इत्यादि विचारने से किसी पर भी क्रोध नहीं होता।

संभवन्ति महाविघ्ना इह निःश्रेयसार्थिनाम्।
ते चेत् किल समायाताः समत्वं संश्रयाम्यतः।।17।।

जो मोक्षाभिलाषी हैं उन्हें इस लोक में बड़े-बड़े विघ्न होने संभव हैं, यह प्रसिद्ध है; वे ही विघ्न यदि मेरे आवें तो इसमें आश्चर्य क्या हुआ ? इस कारण अब मैं समभाव का आश्रय करता हूँ, मेरा किसी पर भी राग द्वेष नहीं है।

चेन्मामुद्दिश्य भ्रश्यन्ति शीलशैलात्तपस्विनः।
अमी अतोऽत्र मज्जन्म परक्लेशाय केवलम्।।18।।

फिर ऐसा भी विचार करते हैं कि यदि मैं क्रोध करूँ तो मुझे देखकर अन्यान्य तपस्वी मुनि अपने शीलस्वभाव से च्युत(भ्रष्ट) हो जायेंगे, तो फिर लोक में मेरा जन्म केवल परके अपकारार्थ वा क्लेश के लिये ही हुआ, इस कारण मुझे क्रोध करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है।

प्राङ् मया यत्कृतं कर्म तन्मयैवोपभुज्यते।

मन्ये निमित्तमात्रोऽन्यः सुखदुःखोद्यतो जनः।।19।।

फिर ऐसा विचार करते हैं कि मैंने पूर्वजन्म में जो कुछ बुरे भले कर्म किये हैं उनका फल मुझे ही भोगना पडेगा; सो जो कोई मुझे सुख दुःख देने के लिये तत्पर हैं वे तो केवल मात्र बाह्य निमित्त हैं, ऐसा मैं मानता हूँ, तब इनसे क्रोध क्यों करना चाहिये ?

मदीयमपि चेच्चेतः क्रोधाद्यैर्विप्रलुप्यते।

अज्ञातज्ञाततत्त्वानां को विशेषस्तदा भवेत्।।20।।

फिर ऐसा विचार करते हैं कि मैं मुनि हूँ, तत्त्वज्ञानी हूँ; यदि क्रोधादिक से मेरा भी चित्त बिगड़ जायगा तो फिर अज्ञानी तथा तत्त्वज्ञानी में विशेष(भेद) ही क्या रहा ? मैं भी अज्ञानी के समान हुआ; इस प्रकार विचार करके क्रोधादिरूप से नहीं परिणमते।।

न्यायमार्गे प्रपन्नेऽस्मिन्कर्मपाके पुरःस्थिते।

विवेकी कस्तदात्मानं क्रोधादीनां वशं नयेत्।।21

फिर ऐसा विचारते हैं कि यह जो कर्मों का उदय है सो न्यायमार्ग में प्राप्त है; इसके निकट होने (आगे आने) पर ऐसा कौन विवेकी है जो अपने को क्रोधादिक के वश में होने दें? **भावार्थ-** जो कोई अपना बिगाड़ करता है सो अपने पूर्वजन्म के कर्म के उदय अनुसार है; कर्म बाँधते हैं, सो उनका उदय आना न्यायमार्ग है; इस कारण कर्मोदय के होने पर क्रोध करना युक्त नहीं है, क्रोध करने से फिर नये कर्मों की उत्पत्ति होती है और आगे को सन्तति चलती है।

सहस्य प्राक्तनासातफलं स्वस्थेन चेतसा।

निष्प्रतीकारमालोक्य भविष्यद्दुःखशङ्कितः।।22।।

हे आत्मन्! तूने पूर्वजन्म में असाता कर्म बाँधा था उसक फल यह दुर्वचनादिक है सो इनको उपाय रहित समझकर आगामी दुःख की शान्ति के लिये स्वस्थ चित्त से अर्थात् चित्त को आत्मा में लगा कर सहन कर। **भावार्थ-** जो दुर्वचनादि पूर्वोपार्जित

असाता कर्म का फल है सो उसको भोगने से ही छुटकारा है; इसका अन्य कोई इलाज नहीं है। चित्त को क्रोधादियुक्त करने से भविष्यत् में दुःख होगा इस कारण समभावों से सहना ही उचित है।

उद्दीपयन्तो रोषाग्निं बहु विक्रम्य विद्विषः।
मन्ये विलोपयिष्यन्ति कचिन्मत्तः शमश्रियम्।।23।।

फिर विचारते हैं कि पूर्वकृत कर्म मेरे वैरी हैं सो मैं ऐसा मानता हूँ कि वे सब शत्रु अपने उदय रूप पराक्रम से क्रोधादि के उत्पन्न करने वाले निमित्तों को मिलाकर मेरे क्रोधरूप अग्नि उद्दीपन करते हुए मेरी उपशमभावरूपी लक्ष्मी को लुटेंगे। **भावार्थ**-जैसे शत्रु घर में अग्नि लगाकर संपदा लूटता है, उसी प्रकार कर्मरूपी वैरी क्रोधाग्नि लगाकर मेरी शमभावरूपी संपदा को नष्ट करेंगे ऐसा विचार करते हैं।

अप्यसह्ये समुत्पन्ने महाक्लेशसमुत्करे।
तुष्यत्यपि च विज्ञानी प्राक्कर्मविलयोद्यतः।।24।।

फिर ऐसा विचारते हैं कि जो विज्ञानी पूर्वोपार्जित कर्मों को नाश करने में उद्यत (तत्पर) हुआ है, वह असह्य बडे-बडे क्लेशों के प्राप्त होने पर भी सन्तोष ही करता है, क्योंकि जो पूर्वजन्म में कर्म उपार्जन किये थे उनका उदय अवश्य होना है, अब उदय आकर खिर गये तो अच्छा हुआ; इस प्रकार संतोष कर लेते हैं।

यदि वाक्कण्टकैर्विद्धो नावलम्बे क्षमामहम्।
ममाप्याक्रोशकादस्मात्मको विशेषस्तदा भवेत्।।25।।

दुर्वचन कहने वाले पुरुषों ने मुझे वचनरूपी काँटों से वींधा (पीडित किया), अब यदि मैं क्षमा धारण नहीं करूँगा तो मेरे और दुर्वचन कहने वाले में क्या विशेषता होगी ? मैं यदि इसे दुर्वचन कहूँगा तो मैं भी इसके समान हो जाऊँगा, इस कारण क्षमा करना ही योग्य है।

विचित्रैर्वधबन्धादिप्रयोगैर्न चिकित्सति।
यद्यसौ मां तदा क्व स्यात्संचितासातनिकिनिष्क्रयः।।26।।

यदि कोई मेरा अनेक प्रकार के वधबन्धादि प्रयोगों से इलाज नहीं करें तो मेरे पूर्वजन्म के संचित किये असाता कर्मरूपी रोग का नाश कैसे हो ? **भावार्थ**-जो मुझे वधबन्धनादिक से पीडित करता है वह मेरे पूर्वोपार्जित कर्मरूपी रोगों को नष्ट करने

वाला वैद्य है, उसका तो उपकार ही मानना योग्य है, किन्तु उसे क्रोध करना कृतघ्नता है।

यःशमः प्राक्समभ्यस्तो विवेकज्ञानपूर्वकः।

तस्यैतेऽद्य परीक्षार्थं प्रत्यनीकाः समुत्थिताः।।27।।

जो ये दुर्वचन कहने वाले वा वधबन्धनादि करने वाले शत्रु उत्पन्न हुए हैं, वे मानो मैंने भेदज्ञानपूर्वक शमभाव का अभ्यास किया है, उसकी आज परीक्षा करने को ही आये हैं, सो देखते हैं कि इसके शमभाव अब है कि नहीं ? ऐसा विचार करना किन्तु क्रोधरूप न होना।

यदि प्रशममर्यादां भित्वा रुष्यामि शत्रवे।

उपयोगः कदाऽस्य स्यात्तदा मे ज्ञानचक्षुषः।।28।।

यदि मैं प्रशमभाव की मर्यादा का उल्लंघन करके वधबन्धनादि करने वाले शत्रु से क्रोध करूँगा तो इस ज्ञानरूपी नेत्र का उपयोग कौन से काल में होगा ? अर्थात् यह ज्ञानाभ्यास ऐसे ही काल के लिये किया था, सो अब शमभाव से रहना ही योग्य है, इस प्रकार विचारते हैं।।

अयत्नेनापि सैवेयं संजाता कर्मनिर्जरा।

चित्रोपायैर्ममानेन यत्कृता भर्त्स्ययातना।।29।।

फिर मुनि महाराज ऐसा विचार करते हैं कि इस शत्रु ने मेरा अनेक प्रकार के उपायों से तिरस्कार करके जो तीव्र यातना (पीडा) दी इससे यह बड़ा भारी लाभ हुआ कि बिना यत्न किये ही मेरे पापकर्मों की निर्जरा सहज में ही हो गई है। यह उपकार ही मानना क्रोध क्यों करना ?

''ममपि चेद्द्रोहमुपैति मानसं परेषु सद्यः प्रतिकूलवर्तिषु।

अपारसंसारपरायणात्मनां किमस्ति तेषां मम वा विशेषणम्।।1

अर्थ- जो प्रतिकूल वर्तने वाले (उपसर्ग करने वाले शत्रु) हैं उनमें मेरा मन तत्काल जो द्रोह को प्राप्त होता है इस अपार संसार में जिनका आत्मा तत्पर है उन शत्रुओं में और मुझमें क्या भेद रहा ? अर्थात् मैं उनसे भिन्न मोक्षार्थी कहलाता हूँ, सो उनसे मेरी समानता ही हुई अर्थात् मैं भी उनके समान संसार में भ्रमण करूँगा।

असमीचीन कार्यों में प्रवर्तन वाले अन्य पुरुषों को उपदेश करके रोकने में

असमर्थ हो तो क्या वह पंडित पुरुष भी असदाचरण करने लग जाय ? नहीं, कदापि नहीं। जैसे कोई पुरुष विष पी ले और उसकी चिकित्सा करने में वैद्य असमर्थ हो जाय तो ऐसा वैद्य पंडित कौन है जो आप भी विष पी ले ? अर्थात् ज्ञानी पंडित तो कोई नहीं पियेगा, यदि पिये तो वह अज्ञानी मूर्ख हैं। इसी प्रकार मुनि विचारते हैं कि किसी ने अपने परिणाम बिगाड़ कर मेरा बुरा करना चाहा और मैं उसको निवारण करने (समझाने) में समर्थ न होऊँ तो क्या अपने परिणाम बिगाड़कर उसी के समान बुरा करना उचित है ? कदापि नहीं।।3।।

यदि मुनि को कोई दुष्ट दुर्वचनादिक उपसर्ग करे तो वह इस प्रकार विचार करता रहे कि यदि वह दुर्वचन कहने वाला मुझे पापों से भय नहीं उपजावे तो मैं शान्तभावों के लिये अधिक प्रयत्न नहीं करूँ; इस कारण इसने मुझे सावधान किया है कि मैंने पूर्वकाल में जो क्रोधादि पाप किये थे उसी का यह उपसर्ग फल है, सो मुझे यह बड़ा भारी लाभ हुआ; इस प्रकार के विचार में आरूढ होकर मुनिमहाराज निश्चल रहते हैं।

परपरितोषनिमित्तं त्यजन्ति केचिद्धनं शरीरं वा।
दुर्वचनबन्धनाद्यैर्वयं रुषन्तो न लज्जामः।।32।।

फिर मुनि महाराज ऐसा विचार करते हैं कि पर को सन्तुष्ट करने के लिये अनेक जन अपने धन व शरीर को छोड़ देते हैं, और हम दूसरों के दुर्वचन वध बन्धनादिक से रोष करते हुए क्यों लज्जित नहीं होते ? **भावार्थ-** यदि हमको उपसर्ग करने से पर को सन्तोष होता है तो अच्छा ही है; हमको क्रोध न करने से हमारी क्या हानि है ? उलटा लाभ ही है, क्योंकि क्रोध करने से तो पापबन्ध होगा।

हन्तुर्हानिर्ममात्मार्थसिद्धिः स्यान्नात्र संशयः।
हतो यदि न रुष्यामि रोषश्चेद् व्यत्ययस्तदा।।33।।

किसी ने मुझे मारा और यदि मैं रोष नहीं करूँ तो मारने वाले की तो हानि हुई अर्थात् पापबन्ध हुआ, परन्तु मेरे आत्मा के अर्थ की सिद्धि हुई अर्थात् पाप नहीं बँधा किन्तु पूर्व के किये पापों की निर्जरा हुई, इसमें कोई संदेह नहीं है और मेरे कदाचित् रोष उपजे तो मेरी द्विगुण हानि हो अर्थात् एक तो पापबन्ध हो, दूसरे पूर्व कर्मों की निर्जरा नहीं हो; इत्यादि विचार करे।

प्राणात्येऽपि सम्पन्ने प्रत्यनीकप्रतिक्रिया।

मता सद्भिः स्वसिद्धयर्थं क्षमैका स्वस्थचेतसाम्।।34।।

अपने प्राण का नाश होने पर भी उपसर्ग करने वाले शत्रु का इलाज स्वस्थचित्त पुरुषों का अपनी सिद्धि के लिये एकमात्र क्षमा करना ही सत्पुरुषों ने माना है। **भावार्थ**-उपसर्ग करने वाला अपना प्राण नाश करे तो भी मुनि को क्षमा ही करनी चाहिये, सत्पुरुषों ने इसका उपाय यह कहा है, किन्तु क्रोध करना समीचीन नहीं है।

इयं निकषभूरद्य सम्पन्ना पुण्ययोगतः।

शमत्वं किं प्रपन्नोऽस्मि न वेत्यद्य परीक्ष्यते।।35।।

यह क्षमा है सो इस समय मेरी परीक्षा करने की जगह है और पुण्य योग से मुझे प्राप्त हुई है, सो मेरी परीक्षा करके देखती है कि मैं शान्तभाव को प्राप्त हूँ कि नहीं। **भावार्थ**- यदि उपसर्ग आने पर क्षमा कर दे तो जानना कि इसके शान्तभाव है, यदि क्षमा नहीं करे तो शान्तभाव नहीं; इस प्रकार परीक्षा क्षमा से ही होती है क्षमादि इसकी कसौटी है।

स एवं प्रशमःश्लाघ्यः स च श्रेयोनिबन्धनम्।

अदयैर्हन्तुकामैर्यो न पुंसाः कश्मलीकृतः।।36।।

पुरुषों के वही प्रशम भाव प्रशंसनीय हैं और वही कल्याण का कारण है, जो मारने की इच्छा करके निर्दय पुरुषों ने मलिन नहीं किया। **भावार्थ**- उपसर्ग आने पर क्रोधरूपी मैल से मलिन न हो वही प्रशम भाव सराहने योग्य है।

चिराभ्यस्तेन किं तेन शमेनास्त्रेण वा फलम्।

व्यर्थीभवति सत्कार्ये समुत्पन्ने शरीरिणाम्।।37।।

जीवों के चिरकाल से अभ्यास किये हुए शमभाव और शस्त्र चलाने का अभ्यास काम पड़ने पर व्यर्थ हो जाय तो उस शमभाव या शस्त्रविद्या सीखने से क्या फल। **भावार्थ**-उपसर्ग आने पर क्षमा नहीं की और शत्रु के सन्मुख आने पर शस्त्रविद्या का प्रयोग नहीं किया तो उनका अभ्यास करना व्यर्थ ही हुआ।

प्रत्यीनके समुत्पन्ने यद्धैर्यं तद्धि शस्यते।

स्यात्सर्वोऽपि जनः स्वस्थः सत्यशौचक्षमास्पदः।।38।।

स्वस्थ चित्त वाले तो सब ही प्रायः सत्य शौच क्षमादि युक्त होते हैं, परन्तु उपसर्ग करने वाले शत्रु के आने पर धैर्य रखना यह धैर्यगुण ही प्रशंसा करने योग्य है।

वासीचन्दनतुल्यान्तर्वृत्तिमालब्य केवलम्।
आरब्धं सिद्धिमानीतं प्राचीनैर्मुनिसत्तमैः।।39।।

प्राचीन बड़े-बड़े मुनिमहाराजों ने प्रारंभ किये हुए मोक्ष कार्य को साधन किया है सो केवल वसूले और चंदन के समान अन्तर्वृत्ति (शमभावरूप वृत्ति) को आलंबन करके ही साधना किया है। **भावार्थ**-कुठार से चंदन काटा जाय तो वह चंदनवृक्ष जिस प्रकार कुठार की धारको सुगंधित करता है अथवा काटने वाले को सुगंध प्रदान से प्रसन्न करता है, उसी प्रकार मुनि महाराज कोई भी उपसर्ग करता हो तो उसका हित ही चाहते हैं, अहित कदापि नहीं चाहते, इस वृत्ति से ही रहने से मुक्ति की सिद्धि होती है।

कृतैर्वान्यैः स्वयं जातैरुपसर्गैः कलङ्कितम्।
येषां चेतः कदाचितैर्न प्राप्ताः स्वेष्टसम्पदः।।40।।

जिनका चित्त अन्य के किये उपसर्ग तथा अचेतन पदार्थों से स्वयमेव प्राप्त हुए उपसर्ग वा परीषह से कलंकित (दूषित) हुआ उन्होंने अपने इष्ट कार्य की सम्पदा की प्राप्ति कदापि नहीं की। **भावार्थ**-यह प्रसिद्ध है कि जो उपसर्ग वा परीषहो के आने पर मुनिमार्ग से च्युत हो गये उनके कभी सिद्धि नहीं हुई ।

प्राकृताय न रुष्यन्ति कर्मणे निर्विवेकिनः।
तस्मिन्नपि च क्रुध्यन्ति यस्तदेव चिकित्सति।।41

विवेकरहित अज्ञानी पुरुष पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों (पापों) के लिये तो रोष करते नहीं है और जो पुरुष क्रोध के निमित्त मिला कर उन पाप कर्मों की निर्जरा करता है, अर्थात् वैद्य के समान चिकित्सा करता है उसके ऊपर क्रोध करते हैं सो यह किसी प्रकार भी युक्त नहीं है, क्योंकि अपने कर्म की निर्जरा करावे वह तो वैद्य के समान उपकारी है, उसका तो उपकार मानना चाहिये, उस पर क्रोध करना बड़ी भारी भूल वा कृतघ्नता है।

यःश्वभ्रान्मां समाकृष्य क्षिप्यत्यात्मानमस्तधीः।
वधबन्धनिमित्तेऽपि कस्तस्मै विप्रियं चरेत्।।42।।

जो कोई निर्बुद्धि वधबन्धनादिक उपसर्ग का निमित्त मिला कर मुझे तो नरक जाने से बचाता है अर्थात् पूर्व कर्मों की निर्जरा करने का निमित्त बनता है और अपने को नरक में डालता है, उसके लिये कौन बुरा आचरण करें ? उसका तो उपकार

मानना उचित है।

यस्यैव कर्मणो नाशाज्जन्मदाहः प्रशाम्यति।
तच्चेद्भुक्तिसमायातं सिद्धं तर्ह्यद्य वांछितम्।।43।।

जिस कर्म के नाश होने से संसार का आताप नष्ट हो उस कर्म का उदय उसी काल में भोगने में आ गया तो यह वांछित कार्य सिद्ध हुआ ऐसा समझना चाहिए, क्योंकि कर्म का नाश तो करना ही था, सहज ही उपसर्ग आने से और उसके सह लेने मात्र से निर्जरा हुई तो यह वांछित सिद्धि क्यों न हुई ?

अनन्तक्लेशसप्तार्चिः प्रदीप्तेयं भवाटवी।
तत्रोत्पन्नैर्न किं सह्यास्तदुत्थो व्यसनोत्करः।।44।।

यह संसार रूपी अटवी है सो अनन्त प्रकार के क्लेशरूपी अग्नि से जलती है सो उसमें उत्पन्न होने वाले जीव क्या उस संसार रूप वन में उत्पन्न हुए दुःखों के समूह को नहीं सहते हैं ? अर्थात् सहते ही हैं, तब मैं यदि उपसर्गजनित अल्प दुःखों को सह लूँगा तो फिर संसार के अनन्त दुःख नहीं होंगे; ऐसा विचार करना चाहिये।

यदि इस जगत् में सम्यग्ज्ञान और विवेक से शून्य चित्तवाले, सिद्धान्तशास्त्र के द्वेषी, निर्दय, परलोक को नहीं मानने वाले नास्तिक, मोहरूपी अग्नि से जलने वाले, दुर्जनतादि कलंक से कलंकित मनुष्य नहीं होते तो उन्नत बुद्धि वाले मुनिगण तीव्र तपस्यादिक करके मोक्षरूपी लक्ष्मी को क्यों चाहते ? **भावार्थ-** उक्त प्रकार के दुष्ट पुरुष अनेक हैं, तप करने से उपसर्ग करेंगे, उस उपसर्ग को जीतेंगे तब ही हमें मोक्ष की सिद्धि होगी ऐसा विचार करके ही मानों मुनिगण मोक्ष के अर्थ तीव्र तपस्या करते हैं।

मुनि विचार करते हैं कि इस जगत् में हम परमात्मा के ध्यान में चित्त लगाने वाले हैं, पदार्थों के स्वरूप जानने वाले और संसारमार्ग के त्यागी हैं, यदि हम ऐसे होकर भी उपसर्ग परीषहों की कसौटी से परीक्षा में असमर्थ हो जावें, अर्थात् इस समय यदि हम अपने उपशमभावों की परीक्षा नहीं करें तो हमारा मुनिधर्म धारण करने का समस्त प्रयास व्यर्थ हो जायेगा, क्योंकि जब उपसर्ग आने पर शमभाव रहे तब ही उपशमभाव की प्रशंसा होती है।

अहो देखो! अनेक मुनिगणों ने संसार से भयभीत होकर प्रबल (तीव्र) तपादिक से उदय में लाकर समस्त कर्मों को शीघ्र ही नष्ट कर दिया; वे कर्म आदि

उपसर्गादि के निमित्त से अपनी स्थिति पूरी करके स्वयं उदय में आये हैं तो अमूल्य मोक्षसुख की सिद्धि के लिये उद्यम करने वाले धीर पुरुषों को मनोभिलाषपूर्वक क्या उपसर्गादि नहीं सहने चाहिये ? अर्थात् अवश्य ही सहने चाहिये। क्योंकि जिन कर्मों को तीव्र तप करके नष्ट करना है वे स्वयं स्थिति पूरी करके उदय में आये हैं तो उनका फल सह लेने से सहज में ही उनकी निर्जरा हो जाती है सो यह तो उत्तम लाभ है। सो हर्षपूर्वक सहना चाहिये। तभी मोक्षसिद्धि का उद्यम सफल हो सकता है।

मोही ही महापापी/मोही ही निगोदिया बनते/मोह की अनंत शक्ति

(मोही जीव विश्व में सब से महापापी पंचपाप सप्तव्यसन बिना भी) (स्व (मैं) को व देवशास्त्र गुरु को नहीं मानने वाले मोही होते)

(चालः- गंगा तेरा पानी अमृत....)

मोह! तेरी अनंतशक्ति सर्वज्ञ ही जान पाते।
तेरे कारण ही अनंतजीव अनंत दुःख पाते।। ध्रुव।।
तेरे अनेक नाम प्रसिद्ध है, मिथ्यात्व, अंधश्रद्धा, नास्तिक।
मिथ्यादर्शन, कुश्रद्धान, बहिरात्मदृष्टि, विपरीत श्रद्धान।।
तेरे कारण ही ज्ञान भी होता है कुज्ञान, जो कि विपरीतज्ञान।
सत्य को असत्य जाने हित को अहित, ग्राह्य को भी अग्राह्य।।(1)

दोनों से युक्त चारित्र भी होता कुचारित्र जो हैं विपरीत चारित्र।
धर्म भी अधर्म, पुण्य भी पाप जिससे मिले संसार में त्रास।।
ऐसे जीव न जानते न मानते मैं भी हूँ आत्मद्रव्य।
तन मन इंद्रिय सत्ता सम्पत्ति परे शुद्ध बुद्ध जीव द्रव्य।। (2)

शरीर को ही मैं मानते न श्रद्धान, करते देवशास्त्र गुरु।
आध्यात्मिक गुणों को नहीं जानते करते राग द्वेष मोहादि।।
शरीर कुटुंब धन जनमान को ही मानते हैं मैं व मेरा।
इस हेतु ही सदा सोचते रहते, करते 'अहंकार' 'ममकार' पूरा।।(3)

मन वचन काय व कृत कारित अनुमत से करते उपरोक्त काम।

अनंतानुबंधी क्रोधमानमायालोभ से संज्वलन व नोकषाय संयुक्त।।
ऐसे जीव भले बाह्य रूप से नहीं करते हो पंचपाप सप्त व्यसन।
तथापि वे देवशास्त्र गुरु निंदा से निगोद तक में लेते जन्म।।(4)

मांसभक्षी सिंह व्याघ्र से ले नारकी से ही महापापी निगोद।
''भावकलंक सुप्रचुरा'' से सब से महापापी व दुःख सहते काल अनंत।।
मलमूत्र से ले जमीकंद आदि में भी होते हैं निगोदिया जीव।
एकश्वास में अठारह बार जन्म मरण(36 बार) करते निम्नतम वे जीव।।(5)
संज्ञी पंचेद्रिय मांसभक्षी पशु व सप्तव्यसन पंचपाप युक्त जीव।
विरोधी हिंसा करने वाले मानव से भी महापापी होते निगोदिया जीव।।
ऐसे जीव तो तद्भव में सम्यग्दृष्टि श्रावक भी हो सकते हैं।
मनुष्य होने पर उस ही भव में साधु से ले अरिहंत सिद्ध हो सकते हैं।।(6)
किंतु निगोदिया में ये न संभव है, अनंत भव तक में।
स्थूल पंचपाप सप्तव्यसन सेवन बिन भी महापापी विश्व में।।
इस से मुझे शिक्षा मिलती है! मोह तुम को मैं पूर्णतः क्षय करूँ।
मोहक्षय से ही मोक्ष मिलेगा ''कनकसूरी'' मैं मोह को नाश करूँ।।(7)

ग.पु. का.दि. 05.06.2019 रात्रि 09:33

संदर्भ

मिथ्यात्व में बंध :-

''मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाय योगः बंधहेतवः''।।

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग बंध के हेतु है क्योंकि इन कारण पूर्वक ही बंध होता है। 'त एते पञ्च बंध हेतवः, समस्ता व्यस्ताश्च भवन्ति। तद्यथा मिथ्यादृष्टेः पञ्चपि समुदिता बंध हेतवो भवन्ति'' ये पाँचों स्वतंत्र बंध के हेतु हैं और समुदाय से भी बंध के कारण है। जैसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के पाँचों बंध के लिये कारण है। सासादन, मिश्र, असंयतसम्यग्दृष्टि इन तीन स्थान में मिथ्यात्व गुणस्थान में मिथ्यात्व प्रकृति उदय में रहती है तब तक मिथ्यात्वादि 16 प्रकृतियों का बंध होता है। उसके आगे बंध व्युच्छित हो जाती है।

मिच्छत हुंड संढाऽसंपत्तेयक्ख थावरादावं।

सहुमतियं वियलिंदिय णिरयदु णिरयाउंग मिच्छे।। (95)।। कर्म.

मिथ्यात्व, हुण्डक-संस्थान, नपुंसकवेद, असम्प्राप्तासपाटिका संहनन, एकेन्द्रियजाति, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, विकलत्रय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु इन 16 प्रकृतियों की बंध व्युच्छित मिथ्यात्व गुणस्थान के अंत में होती है।

सामण्ण पच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो।

मिच्छत्तं अविरमणंकसायं जोगा य बोद्धव्वा।। (10) (समयसार)

सामान्य से मिथ्यात्व, अविरति कषाय और योग ये चार बंध के कर्त्ता है। अर्थात् जिस समय में मिथ्यात्व कर्म का उदय होता है उस सयम उदयगत मिथ्यात्व कर्म के कारण जो भाव होता है उसके माध्यम से पुनः नवीन कर्म बंध होता है। इसी प्रकार अविरति आदि से जानना चाहिये। यहाँ पर प्रमाद को आचार्यश्री ने नहीं गिनाया है तो क्या प्रमाद बंध के लिये कारण नहीं है ? अवश्य कारण है किन्तु प्रमाद को कषाय में अन्तर्भूत कर दिया है क्योंकि कषाय के कारण प्रमाद होता है। द्रव्य संग्रह में ''जोगा पयडि पदेसा ट्ठिदि कसायदो होदि'' इसमें कषाय को ही स्थिति और अनुभाग का कारण बताया है। तो क्या मिथ्यात्व और अविरति बंध के कारण नहीं है ? अवश्य है, किन्तु संक्षेप से कषाय में मिथ्यात्वादि को अन्तभूर्त कर दिया है। यहाँ पर कषाय प्रत्यय अंत-दीपक है, इसलिये उसके पहले पहले के सभी कारण उससे ग्रहण किये गये हैं।

सूत्रः-

सव्वतिव्वाणुभागा मिच्छातस्स उक्कस्साणु भागुदीरणा।

अणंताणुबंधीणमण्णदा उक्कस्साणुभागुदीरणा तुल्ला अणंत गुण हीणा।।

(जय ध.पु.11)

सबसे मिथ्यात्व की उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा तीव्र वाली है अर्थात् सबसे तीव्र शक्ति से संयुक्त है। उससे अनंतानुबंधियों की अन्यतर (कोई एक) उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा परस्पर समान होकर मिथ्यात्व की उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा से अनंतगुणी हीन है।

शंका : मिथ्यात्व की उत्कृष्ट उदीरणा सबसे तीव्र क्यों है ?

समाधान : 'सव्वदव्व विसय सद्दहण गुण पडि बंधित्तादो।''

अर्थ : सर्व द्रव्य, विषय श्रद्धान गुण का प्रतिबंधन मिथ्यात्व कर्म करता है।

मिच्छत्तपच्चयो खलु बन्धो अवसाम यस्स बोधव्वो।
उवसंते सासणे तेण परं होदि भयणिज्जो।। (धवलः)

मिथ्यात्व की उपशांत अवस्था में और सासादन गुणस्थान में मिथ्यात्व निमित्तक बंध नहीं होता है, अन्य स्थान भी भजनीय है अर्थात् मिथ्यात्व को प्राप्त हुए जीव को मिथ्यात्व निमित्तक बंध होता है। अन्य गुणस्थान प्राप्त जीव को बंध नहीं होता। (एक विचारणीय विषय है कि 40 कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति वाला चारित्र मोहनीय (अनंतानुबंधी आदि) 70 कोड़ाकोड़ी सागर स्थित प्रमाण दर्शनमोहनीय को कैसे बंध कर सकता है। यदि केवल कषाय को ही स्थिति-बंध का कारण मानेंगे तो दर्शनमोहनीय का स्थितिबंध मात्र कषाय के द्वारा होने पर 70 कोड़ा कोड़ी सागर का और मिथ्यात्व में 16 प्रकृतियों का जो बंध होता है वह नहीं हो सकता है। अनंतानुबंधी भी मिथ्यात्व के सहाय से ही अनंतसंसार का कारण हो सकती है अन्यथा नहीं।

अनतानुबंधी क्रोध,मान, माया, लोभ कषाय आत्मनः, सम्यक्त्व परिणामं कषन्ति अनंत संसार कारणत्वात् अनन्त-मिथ्यात्व, अनंतभव संस्कार कालं वा अनुबंधन्ति सुघटयन्तीत्यनन्तानुबन्धिन इति।। (गो. सार.)

अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ कषाय आत्मा के सम्यक्त्व परिणाम को घातती है क्योंकि अनंतसंसार का कारण होने से मिथ्यात्व कर्म को अनंत कहते है। इस अनंतभव के संस्कार काल को बाँधती है इसलिये उसे अनंतानुबंधी कहते हैं। एक क्षण के लिये भी सम्यक्त्व हो जाता है तो संसार अनंत नहीं रहता है संसार परीत हो जाता है जो अर्ध पुद्गल परिवर्तन मात्र है। अतः-

न सम्यक्त्वं समं किञ्चित् त्रैकाल्यं त्रिजगत्यपि।
श्रयोऽश्रेयञ्च मिथ्यात्व समं नान्यत्तनुभृताम्।। (34)।। (र.श्रा.)

in the three periods of time and three worlds there is nothing more auspicious than right Faith for the living beings, not anything more inquacious than a false conviction.

तीन जगत् में तीन काल में सम्यक्त्व के समान श्रेयस्कर जीवों के लिये अन्य कुछ नहीं है एवं मिथ्यात्व के समान अश्रेयस्कर अन्य कुछ नहीं है।

अनन्तबार दुःख प्राप्ति के कारण

गाथा- संसारभमणगमणं कुणंत आराहिदो ण जिणधम्मो।
तेणविणा वरं दुक्खं पत्तोसि अणंतवाराइं।। (3) कल्याण.
पद्य - संसार भ्रमण करते हुए नहीं आराधना की जिनधर्म।
इसके बिना महान् दुःख प्राप्त किये तूने अनन्तबार।।

समीक्षा-

अनन्त संसार में किया रे! तूने अनन्त जन्म व मरण।
अनन्त संयोग व वियोग किया किया हर प्रकार के काम।।
किन्तु आत्मास्वभावमय जैनधर्म की नहीं कि तूने आराधना।
जिससे आत्मविशुद्धि बिन पाया है अनन्त दुःख यातना।।
अभी जो एक काम नहीं किया वह करो स्व-आत्मकल्याण।
स्व-आत्मकल्याण करना ही है परम उत्कृष्टतम काम।।

अनन्तबार मरण

संसारे णिवसंता अणंतमरणाइ पाओसि तुमं।
केवलिणा विण तेसिं संखापज्जत्ति णो हवदि।। (4) (कल्याण आ.)
पद्यभावानुवाद :- (चाल :- आत्मशक्ति)
हे ! जीव तुमने प्राप्त किया अनन्त मरण संसार में रहते।
केवली के बिना उसकी संख्या न प्राप्त होती अन्य से।।
समीक्षा-- अनादि काल से यह संसार है अनन्त काल हो गया अभी तक।
अतएव अनन्त बार जन्म हुये अनन्त पंचपरिवर्तन में।।
अनन्त जन्म होने से अनन्त बार भी हुए हैं मरण भी।
इसकी संख्या केवल जानते हैं सर्वज्ञ भगवान् ही।।

सिद्धों से एक निगोद शरीर के जीव अनंतगुणे हैं। अतएव सभी अतीत काल के द्वारा एक निगोद शरीर के जीव भी सिद्ध नहीं होते हैं। उन निगोदों में जो जीव स्थित हैं वे दो प्रकार के हैं चतुर्गति और नित्यनिगोद। जो देव, नारकी, तिर्यंच और मनुष्यों में उत्पन्न होकर पुनः निगोद में प्रवेश करते रहते हैं वे चतुर्गति निगोद जीव हैं। अतीत काल में त्रसपने को प्राप्त हुए जीव यदि बहुत अधिक होते हैं तो अतीत काल

से असंख्यातगुणे ही होते हैं। अंतर्मुहूर्त काल के द्वारा यदि प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण जीव त्रसों में उत्पन्न होते हैं तो अतीत काल में कितने प्राप्त होंगे ? इस प्रकार फलराशि से गुणित इच्छाराशि में प्रमाणराशि का भाग देने पर अतीत काल से असंख्यातगुणी त्रस राशि होती है। इससे जाना जाता है कि अतीत काल में त्रस भाव को नहीं प्राप्त हुए जीवों का अस्तित्त्व है और जीवों के सिद्ध होने पर भी संसारी जीवों का विच्छेद नहीं होता।

अतीत काल में त्रसभाव को नहीं प्राप्त हुए जीवों का अर्थात् नित्यनिगोद जीवों का अस्तित्त्व है और संसारी जीवों का विच्छेद नहीं होता, यह एक गाथा द्वारा कहा जाता है-

नित्यनिगोद का लक्षण

अत्थि अणंता-जीवा जेहिं ण पत्तो तसाण परिणामो।
भावकलंक-सुपउरा णिगोदवासं ण मुंचति।। (197)

गाथार्थ-जिन्होंने त्रसभाव को नहीं प्राप्त किया है, ऐसे अनंत जीव हैं, क्योंकि वे भावकलंक प्रचुर है इसलिए निगोदवास को नहीं त्यागते।

There are infinite souls which have never (so far) attained the condition of mobiles, Being thickly beset with inpure thought activities, they do not leave the residence in Nigoda.

commentary : Although three are such souls who on account of their immense inpure thought activity, would never leave their stay in Nigoda. still the genefal rule that 608 souls leave Nigoda in 6 month 8 instants and onther 608 human souls attain liberation must be kept in mind.

विशेषार्थ :- जिन्होंने अतीत काल में कदाचित् भी त्रस-परिणाम नहीं प्राप्त किया हैं ऐसे अनंतजीव नियम से है। अन्यथा संसार में भव्य जीवों का अभाव प्राप्त होता। उनका अभाव है नहीं, क्योंकि उनका (भव्य जीवों का) अभाव होने पर अभव्य जीवों का भी अभाव प्राप्त होता है। और वह भी है नहीं, क्योंकि उनका (भव्य और अभव्य जीवों का) अभाव होने पर संसारी जीवों का भी अभाव प्राप्त होता है(क्योंकि संसारी जीव भव्य और अभव्य दो ही प्रकार के हैं) और संसारी जीवों का अभाव भी नहीं है क्योंकि संसारी जीवों का अभाव होने पर असंसारी

(मुक्त) जीवों के भी अभाव का प्रसंग आता है।

शंका- संसारी जीवों का अभाव होने पर असंसारी (मुक्त) जीवों का अभाव कैसे संभव है ?

समाधान- संसारी जीवों का अभाव होने पर असंसारी जीव भी नहीं हो सकते, क्योंकि सब सप्रतिपक्ष पदार्थों की उपलब्धि अन्यथा नहीं बन सकती।

इसलिए सिद्ध होता है कि अतीत काल में त्रसभाव को नहीं प्राप्त हुए अनंत जीव हैं। यहाँ पर उपर्युक्त गाथा इस प्रकार है-

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंत पज्जाया।
भंगुप्पायधुत्ता सप्पडिवक्खा हवइ एक्का।। (18)

सत्ता सब पदार्थों में स्थित है, विश्वरूप है, अनंत पर्याय वाली है, व्यय-उत्पाद और ध्रुवत्व से युक्त है, सप्रतिपक्ष है और एक है।

वे त्रस परिणाम को क्यों नहीं प्राप्त हुए हैं? इसके समाधान में सूत्रगाथा के उत्तरार्ध में कहा गया है 'भावकलंकसुपउरा' अर्थात् भावकलंक (संक्लेश); उसकी यहाँ अत्यंत प्रचुरता है। एकेन्द्रिय जाति में उत्पत्ति का हेतु 'भावकलंक' यह उक्त कथन का तात्पर्य है। उसकी प्रचुरता होने से यहाँ के जीवों ने निगोदवास को नहीं त्यागा है अर्थात् नहीं छोड़ा है, यह उक्त कथन का तात्पर्य है। इस प्रकार नित्यनिगोद जीवों का लक्षण भी कहा गया है।

जीवों की पूर्णता एवं अपूर्णता

जह पुण्णापुण्णाइं, गिहघडवत्थादियाइं दव्वाइं।
तह पुणिणदरा जीवा, पज्जत्तिदरा मुणेयव्वा।। (118)

गाथार्थ- जिस प्रकार गृह घट और वस्त्र आदि अचेतन द्रव्य पूर्ण और अपूर्ण दोनों प्रकार के होते हैं, उसी प्रकार जीव भी पूर्ण और अपूर्ण दो प्रकारों के होते हैं। पूर्ण जीव पर्याप्तक और अपूर्ण जीव अपर्याप्तक कहलाते हैं।

As there are complete and uncomplete houses, pots cloth, and such thing , similarly (mundane) should (in their capacities) when complete (i.e. incomplete) should be understood to be development (paryapta) of otherwise (non-developable aparyapta)

विशेषार्थ-सम्पूर्णता के हेतु को पर्याप्ति कहते हैं। आहार, शरीर,इन्द्रिय,

आनपान, भाषा और मनरूप शक्तियों की पूर्णता को पयाप्ति कहते हैं। इन शक्तियों की अपूर्णता को अपर्याप्ति कहते हैं। इस पर्याप्ति और अपर्याप्तिके भेद से जीव भी दो प्रकार के हो जाते हैं। पर्याप्त जीव और अपर्याप्त जीव। पर्याप्त नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुई शक्ति से जिन जीवों की अपने-अपने योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करने रूप अवस्था विशेष प्रगट हो गई है, उन्हें पर्याप्त जीव कहते हैं। अपर्याप्त नाम कर्म के उदय से उत्पन्न हुई शक्ति से जिन जीवो को शरीर पर्याप्ति पूर्ण न करके मरने रूप अवस्था विशेष उत्पन्न हो जाती है उन्हें अपर्याप्त जीव कहते हैं। सभी जीव शरीर पर्याप्ति के निष्पन्न होने पर पर्याप्त कहे जाते हैं। जिन जीवों की पर्याप्ति पूर्ण नहीं हुई है, किन्तु पर्याप्त नामकर्म का उदय है वे जीव भी पर्याप्त कहलाते हैं, क्योंकि भविष्य में उनकी पर्याप्ति नियम से पूर्ण होगी। होने वाले कार्य में यह कार्य हो गया इस प्रकार उपचार कर लेने से इनकी 'पर्याप्त' संज्ञा करने में कोई विरोध नहीं आता। अथवा पर्याप्त नाम कर्मोदय से पर्याप्त संज्ञा दी गई।

पर्याप्तियों के भेद तथा उनके स्वामी

आहारसरीरिंदिय-पज्जत्ती आणपाणभासमणो
चत्तारि पंच छप्पि य, एइंदिय-वियलसण्णीणं।। (119)

गाथार्थ-आहारपर्याप्ति, शरीरपर्यापित, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और मनःपर्याप्ति। एकेन्द्रियजीवों के इनमें से पहली चार पर्याप्तियाँ होती हैं। विकलचतुष्क के पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं। संज्ञी जीवों के दह पर्याप्तियाँ होती हैं।

विकलेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय लब्ध्य पर्याप्तों के क्षुद्रभव

वियलिंदिये असीदी सट्ठी चालीसमेव जाणेहिं।
पंचेंदिय चउवीसं खुद्दभवंतोमुहूत्तस्स।। (6) कल्याण आ.)
पद्य - विलेन्द्रियों के क्रमशः अस्सी-साठ चालीस ही ज्ञेय।
पंचेन्द्रिय चउवीस क्षुद्र भव है अन्तर्मुहूर्त मध्य में।।

समीक्षा-इन्द्रियों के अस्सी त्रीन्द्रिय के साठ व चौ इन्द्रियों के चालीस पञ्चेन्द्रियों के चउबीस क्षुद्रभव अन्तर्मुहूर्त मध्य में।

आर्यखण्ड में, म्लेच्छखण्ड में, भोगभूमि में और कुभोगभूमि में मनुष्य होते हैं। ये चारों ही प्रकार के मनुष्य पर्याप्त और निवृत्त्यपर्याप्त के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

भावार्थ-आर्यखण्ड,म्लेच्छखण्ड, भोगभूमि और कुभोगभूमि की अपेक्षा मनुष्य चार प्रकार के होते हैं। तथा ये चारों ही प्रकार के मनुष्य निवृत्यपर्याप्त भी होते हैं और पर्याप्त भी होते हैं। इसका खुलासा इस प्रकार है-आर्यखण्ड 170 हैं- पाँच भरत संबंधी 5, पाँच ऐरावत संबंधी 5, और पाँच विदेह संबंधी 160 क्योंकि एक-एक महाविदेह 32-32 उपविदेह होते हैं। तथा आठ सौ पचास (850) म्लेच्छखण्ड है; क्योंकि प्रत्येक भरत, प्रत्येक ऐरावत और प्रत्येक उपविदेह क्षेत्र के छः छः खण्ड होते हैं। जिनमें से एक आर्यखण्ड होता है और शेष 5 म्लेच्छखण्ड होते हैं। अतः एक सौ सत्तर आर्यखण्डों से पाँच गुने म्लेच्छखण्ड होते हैं। इससे 170 × 5 =850 आठ सौ पचास म्लेच्छखण्ड हैं। और तीस भोगभूमियाँ हैं जिसमें 5 हैमवत और पाँच (5) हैरण्यवत् ये दस जघन्य भोगभूमियाँ हैं। 5 हरिवर्ष और 5 रम्यकवर्ष ये दस मध्यम भोगभूमियाँ हैं। और पाँच देवकुरु और पाँच उत्तरकुरु ये दस उत्कृष्ट भोगभूमियाँ हैं। इस तरह कुल तीस भोगभूमियाँ हैं। तथा लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र में 96 अंतर्द्वीप हैं जिनमें से 24 अंतद्वीप लवण समुद्र के जंबुद्वीप संबधी तट के करीब में हैं और 24 अंतर्द्वीप धातकी खण्ड संबंधी तट के निकट हैं। इस तरह 48 अंतर्द्वीप तो लवण समुद्र में हैं और इसी 48 अंतर्द्वीप कालोदधि समुद्र में हैं, जिनमें से चौबीस-अभ्यंतर तट के करीब हैं और 24 बाह्य तट के करीब हैं। इन 96 अंतर्द्वीप में कुभोगभूमि हैं। अतः 96 कुभोगभूमियाँ हैं। इन 170 आर्यखण्ड में 850 म्लेच्छखण्डों में, 30 भोगभूमियों में और 96 कभोगभूमियाँ में रहने वाले मनुष्य निवृत्यपर्याप्तक और पर्याप्तक के भेद से दो प्रकार के होते हैं। इस तरह मनुष्यों के आठ भेद होते हैं।

लब्ध्यपर्याप्तक मानव, नारकी देव

समुच्छिया मणुस्सा अज्जव-खंडेसु होंति णियमेणा।
त पुण लद्धि-अपुण्णा णारय-देवा वि ते दुविहाण (133) का.प्रे.

अर्थ- सम्मूर्छन मनुष्य नियम से आर्यखण्डों में ही होते हैं, और वे लब्ध्यपर्याप्तक ही होते हैं। तथा नारकी और देव निवृत्त्ययपर्याप्तक और पर्याप्तक के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

भावार्थ-एक सौ सत्तर आर्यखण्डों में ही सम्मूर्छन मनुष्य नियम से होते हैं, आर्यखण्ड के सिवा अन्य भोगभूमि आदि में नहीं होते। तथा वे सम्मूर्छन मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक ही होते हैं। वे सम्मूर्छन मनुष्य कहाँ उत्पन्न होते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर

भगवती आराधना में देते हुए बतलाया है कि वीर्य में, नाक के सिंघाणकों में, कफ में, दाँत के मैल में, कान के मैल में और शरीर के अत्यंत गंदे प्रदेशों में तुरन्त ही सम्मूर्छन जीव पैदा हो जाते हैं। अस्तु, इस प्रकार मनुष्य की अपेक्षा जीवसमास के तथा नारकी भी पर्याप्त और निवृत्त्यपर्याप्त की अपेक्षा दो प्रकार के होते हैं। और भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क और कल्पवासी देव भी पर्याप्त और निवृत्त्यपर्याप्त की अपेक्षा दो प्रकार के होते हैं। इस तरह तिर्यंचों के पिचासी, मनुष्यों के नौ और नारकी तथा देवों के चार ये सब मिलकर जीवसमास के 98 अठानवें भेद होते हैं। जिनके द्वारा अथवा जिनमें जीवों का संक्षेप से संग्रह किया जाता है उन्हें जीवसमास कहते हैं सो इन 98 जीवसमासों में सब जीवों(संसारी) का समावेश हो जाता है।

पर्याप्ति के भेद एवं लक्षण

आहार-सरीरिंदिय-णिस्सासुस्सासं भास-मणसाणं।
परिणइ-वावारेसु य जाओ छच्चेव सत्तीओ।। (137) का.प्रे.

अर्थ-आहार, शरीर, इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन के व्यापारों में परिणमन करने की जो शक्तियाँ हैं वे छः ही हैं।

अशुभ नामकर्म के आस्रव के हेतु

मनोवाक्कायवक्रत्वं विसंवादनशीलता।
मिथ्यात्वं कूटसाक्षित्वं पिशुनास्थिरचित्तता।।(44)
विषक्रियेष्टकापाकदावाग्नीनां प्रवर्तनम्।
प्रतिमायतनोद्यानप्रतिश्रयविनाशनम्।। (45)
चैत्यस्य च तथा गन्धमालयधुपादिमोषणम्।
अतितीव्रकषायत्वं पापकर्मोपजीवनम्।। (46)
परूषासह्यवादित्वं सौभाग्यकारणं तथा।
अशुभस्येति निर्दिष्टा नाम्न आस्रवहेतवः।। (47) (तत्त्वार्थसार)

मन, वचन, काय की कुटिलता, विसंवाद करने का स्वभाव, मिथ्यात्व, झूठी गवाही देना, चुगली करना, चित्त का अस्थिर रहना, विष के प्रयोग, ईंट पकाना तथा दावाग्नि-वन में आग लगाने की प्रवृत्ति चलाना, मंदिर सम्बन्धी उद्यान के भवन का विनाश करना, प्रतिमा को चढ़ाने योग्य गन्ध, माला तथा धूप आदि की चोरी करना, अत्यन्त

तीव्र कषाय करना, पाप कार्यों से जीविका करना, कठोर और असह्य वचन बोलना तथा सौभाग्य वृद्धि के लिये वशीकरण आदि उपायों को मिलाना ये सब अशुभ नामकर्म के आस्रव के हेतु हैं।

योगवक्रताविसंवादनं चाऽशुभस्यःनाम्नः।। (122) (तत्त्वार्थवार्तिक)

मन, वचन और काय की कुटिल वृत्ति रूप योगवक्रता तथा विसंवादन ये अशुभ नामकर्म के आस्रव के कारण है।

मिथ्यादर्शन- पिशुनताऽस्थिरचित्तस्वभावता-कूटमानतुलाकरणसुवर्णमणिरत्नाद्यनुकृत्ति-कुटिलसाक्षित्वाऽङ्गोपाङ्गच्यावन-वर्णगन्धरसस्पर्शान्यथाभावनयन्त्रपञ्जरक्रियाद्रव्यान्तरविषयसंबन्धनिकृतिभूयिष्ठता। परनिन्दात्मप्रशंसाऽनृतवचनपरद्रव्यादान-महारम्भपरिग्रहउज्ज्वलवेषमद परुषासभ्यप्रलाप-आक्रोश-मौखर्य-सौभाग्योपयोगवशी-करणप्रयोग-परकुतूहलोत्पादनाऽलङ्कारादरचैत्यप्रदेशगन्ध-माल्यधूपादिमोषण-विलम्ब नोपहासइष्टिकापाकदवाग्नियोग-प्रतिमायतनप्रतिश्रयारामोद्यानविनाशन तीव्रक्रोधमान-मायालोभपापकर्मोपजीवनादि लक्षणः। स एष सर्वोऽशुभस्य नाम आस्रवः।

मिथ्यादर्शन, पिशुनता, अस्थिर चित्त स्वभावता, कूटमान तुलाकरण (झूठे बाट, तराजू रखना)कृत्रिम सुवर्ण मणि रत्न आदि बनाना, झूठी साक्षी देना, अंग उपाङ्ग का छेदन करना, वर्ण,गन्ध,रस,स्पर्श का विपरीतपना अर्थात् स्वरूपविकृति कर देना, यन्त्र पिंजरा आदि पीड़ा कारक पदार्थ बनाना, एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य का विषय सम्बन्ध करना, माया की बहुलता, परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, मिथ्याभाषण,परद्रव्यहरण, महारम्भ, महापरिग्रह,उज्जवल वेष और रूप का घमण्ड करना, कठोर और असभ्य भाषण करना क्रोध भाव रखने और अधिक बकवाद करने में अपने सौभाग्य का उपभोग करना, दूसरों को वश करने के प्रयोग करना, दूसरे में कुतूहल उत्पन्न करना, बढ़िया-बढ़िया आभूषण पहनने की चाह रखना जिनमंदिर चैत्यालय से गन्ध (चन्दन)माल्य, धूप, आदि को चुरा लेना, किसी की विडम्बना करना, उपहास करना, ईंट चूने का भट्टा लगाना, वन में अग्नि लगाना, प्रतिमा का प्रतिमा के आयतन का अर्थात् चैत्यालय का और जिनकी छाया में विश्राम लिया जाये ऐसे बाग-बगीचों

का विनाश करना, तीव्र, क्रोध,मान,माया और लोभ करना तथा पाप कर्म जिसमें हो ऐसी आजीविका करना इत्यादि बातों से भी अशुभ नामकर्म का आस्रव होता है। ये सब अशुभ नामकर्म के आस्रव के हेतु हैं।

तिर्यग्गति के योग्य कर्म

मायाविनोऽतिकौटिल्यकर्मकोटिविधायिनः।
परश्रीहरणसक्ता अष्टप्रहरभक्षकाः।। (73)।।
महामूर्खाः कुशास्त्रज्ञाः पशुवृक्षादिसेविनः।।
नित्यस्नानकराःशुद्धयै कृतीर्थगमनोद्यताः।। (74)।।
जिनधर्मबहिर्भूता व्रतशीलादिदूरगाः।
निन्द्याः कपोतलेश्याढया आर्तध्यानकराःसदा।। (75)।।
इत्याद्यपरदुष्कर्मरता ये मूढमानसाः।
आर्तध्यानेन ते प्राप्य मरणं दुःखविह्वलाः।। (76)।।
तिर्यग्गतीः प्रगच्छन्ति बह्वीर्दुःखखनीर्दुतम्।
मरणोत्पत्तिसंपूर्णाः पराधीनाः सुखच्युताः।। (77)।। (तत्त्वार्थसार)

जो मायाचारी है, अतिकुटिलता युक्त, कोटि-कोटि कार्यों के विधायक हैं, पर लक्ष्मी के अपहरण करने में आसक्त हैं, दिन-रात के आठों प्रहरों में खाते-पीते रहते हैं, महामूर्ख है, खोटे शास्त्रों के ज्ञाता है, धर्म मानकर पशुओं और वृक्षों की सेवा पूजा करते हैं। शुद्धि के लिये नित्य स्नान करते है, कुतीर्थों की यात्रार्थ जाने को उद्यत रहते हैं जिन धर्म से बहिर्भूत हैं, व्रत शीलादि से दूर रहते हैं, निन्दनीय है, कपोत लेश्या से युक्त हैं, सदा आर्त्तध्यान करते रहते हैं, तथा इसी प्रकार के अन्य दृष्कर्मों के करने से जो मूढ़चित्त पुरुष संलग्न रहते हैं, वे आर्त्तध्यान से मरण कर दुःखों से विह्वल होकर बहुत दुःखों की खानरूप तिर्यग्गति में जाते हैं, जहाँ पर वे उत्पत्ति से लेकर मरण-पर्यन्त पराधीन और दुःखी रहते हैं। (श्री-वीरवर्धमानचरिते)

निगोद के योग्य कर्म

नास्तिका ये दुराचाराःपरलोकं वृषं तपः।
वृत्तं जिनेन्द्राशास्त्रादीन् मन्यन्ते न च दुर्धियः।। (78)।।
तेऽत्यन्तविषयासक्तास्तीव्र मिथ्यात्वपूरिताः

अन्तातीतं निकोतं प्रयान्ति दुःखकैसागरम्।। (79)।।
अनन्तकालपर्यन्तं महादुखं वचोऽतिगम्।
भुञ्जन्ति तत्र ते पापान्मरणोत्पत्तिजं खलाः।। (80)।।

जो नास्तिक हैं, दुराचारी है, परलोक, धर्म, तप, चारित्र, जिनेन्द्र शास्त्र आदि को नहीं मानते हैं, दुर्बुद्धि हैं, विषयों में अत्यन्त आसक्त हैं, तीव्र मिथ्यात्व से भरे हुए हैं, ऐसे जीव अनन्त दुःखों के सागर ऐसे निगोद को जाते हैं। और वहाँ पर वे पापी अपने पाप से अनन्त काल पर्यन्त वचनातीत जन्म-मरण-जनित महादुःखों को भोगते हैं।

नेःशील्य निर्व्रत्वं च मिथ्यात्व परवञ्चनम्।
मिथ्यात्वसमवेतानामधर्माणां देशनम्।। (35)
कृत्रिमागुरुकर्पूरकुङ्कमोत्पादनं तथा।
तथा मानतुलादीनां कूटादीनां प्रवर्तनम्।। (36)
सुवर्णमौक्तिकादीनां प्रतिरूपकनिर्मितः।
वर्णगन्धरसादीनामन्यथापादनं तथा।। (37)।।
तक्रक्षीरघृतादीनामन्य द्रव्यविमिश्रणम्।
वाचान्यदुत्काकरणमन्यस्य क्रियया तथा।। (38)।।
कापोतनीललेश्यात्वमार्त्तध्यानं च दारुणम्।
तैर्यग्योनायुषो ज्ञेया माया चास्रवहेतवः।। (39)।।

शील रहित होना, व्रत रहित होना, मिथ्यात्व धारण करना, दूसरों को ठगना मिथ्यात्व से रहित अधर्म का उपदेश देना, कृत्रिम अगुरु, कपूर और केशर को बनाना, झूठे नापतौल के बाट, तराजू तथा कूट आदि को चलाना, नकली स्वर्ण तथा मोती आदि को बनाना, वर्ण,गन्ध, रस आदि को बदलकर अन्यरूप देना,छाँछ दूध तथा घी आदि में अन्य पदार्थों को मिलाना, वाणी तथा क्रिया द्वारा दूसरों की विषयाभिलाषा को उत्पन्न करना, कपोत लेश्या से युक्त होना तीव्र आर्त्तध्यान करना और मायाचार करना ये सब तिर्यञ्च आयु के आस्रव के हेतु जानना चाहिये।

कौआ, गीध, सुअर में जन्म लेने का कर्म

यश्य मांसप्रियो नित्यं काकगृधान्, स संस्पृशेत्।
सुरापःसततं मर्त्यः सूकरत्वं व्रजेद् ध्रुवम्।

जो प्रतिदिन मांस के लिये लालायित रहता है वह कौओं और गीधों की योनि में जन्म लेता है। सदा शराब पीने वाला मनुष्य निश्चय ही सुअर होता है।

कौआ, प्रेत होने का कर्म

अभक्ष्यभक्षणो मर्त्यः काकजातिषु जायते।
आत्मघ्नो यो नरः कोपात् प्रेतजातिषु तिष्ठति।।

अभक्ष्य भक्षण करने वाला मनुष्य कौए के कुल में उत्पन्न होता है तथा क्रोधपूर्वक आत्महत्या करने वाला पुरुष प्रेत योनि में पड़ा रहता है।

मुर्गा, मृग होने का कर्म

पैशुन्यात् परिवादच्च कुक्कुटत्वमवाप्नुयात्।
नास्तिकश्चैव यो मूर्खो मृगजातिं स गच्छति।।

दूसरों की चुगली और निन्दा करने से मुर्गे की योनि में जन्म लेना पड़ता है। जो मूर्ख नास्तिक होता है, वह मृग-जाति में जन्म ग्रहण करता है।

कीड़ा, गधा होने का कर्म

हिंसाविहारस्तु नरःकृमिकीटेषु जायते।
अतिमानयुतो नित्यं प्रेत्य गर्दभतां व्रजेत्।।

हिंसा या शिकार के लिए भ्रमण करने वाला मानव कीड़ों की योनि में जन्म लेता है। अत्यन्त अभिमान युक्त पुरुष सदा मृत्यु के पश्चात गधे की योनि में जन्म पाता है।

चूहा होने का कर्म

आगम्यागमनाच्चैव परदारनिषेवणात्।
मूषिकत्वं व्रजेन्मर्त्यो नास्ति तत्र विचारणा।।

अगम्या-गमन और परस्त्रीसेवन करने से मनुष्य चूहा होता है, इसमें शङ्का करने की आवश्यकता नहीं है।

सियार, भेड़िया, स्थावर होने का कर्म

कृतघ्नो मित्रघाती च शृगालवृकजातिषु।
कृतघ्नः पुत्राघाती च स्थावरेष्वथ तिष्ठति।।

कृतघ्न और मित्रघाती मनुष्य सियार और भेड़ियों की योनि में जन्म लेता है।

दूसरों के किए हुए उपकार को न मानने वाला और पुत्रघाती मनुष्य स्थावर योनि में जन्म लेता है।

सर्पादि गति प्राप्त योग्य कर्म

वितरन्ति न दानां ये पात्रेभ्यः कृपणाः क्वचित्।
धनं न जिनपूजायै त्रिजगच्छीसुखार्थिनः।। (162)।।
ते दुर्गतौ चिरं भ्रान्त्वा तीव्रलोभाकुला ह्याघात्।
पुनः सर्पादिगत्याप्त्यै जायन्ते कृपणा भुवि।। (163)।।

जो कृपण पुरुष क्वचित् कदाचित् भी पात्रों के लिये दान नहीं देते हैं और तीन लोक की लक्ष्मी और सुख के इच्छुक होकर भी जिनपूजा के लिये धन नहीं देते हैं वे कृपण अपने इस पाप के द्वारा तीव्र लोभ से आकुलित होकर चिरकाल तक दुर्गतियों में परिभ्रमण कर पुनः सर्प आदि की गति पाने वाले होते हैं। (श्रीवीरवर्धमान चरिते)

आत्मन्! स्वशुद्धात्मा श्रद्धान बिना सभी धर्म संसार वर्धक

(स्व-शुद्धात्मा श्रद्धान बिन व्रत-नियम-तप-त्याग-कष्ट सहन आदि संसार बीज-संसार वर्द्धक)

(चाल :- मन रे! तू काहे....सायोनारा....) -आचार्य कनकनन्दी

आत्मन्! तू स्व-शुद्धात्मा श्रद्धान करऽऽऽ
इससे ही होता है सम्यग्ज्ञान...जिससे होता सम्यक् आचरणऽऽऽ(ध्रुव)
तीनों मय ही होता शुद्धात्मा स्वरूप...यह ही है मोक्षमार्ग रूपऽऽऽ
इसकी पूर्णता ही है मोक्षस्वरूप...जो आत्मा का परम रूपऽऽऽ
यह ही धर्म का सार रूपऽऽऽ आत्मन्!(1)

इस हेतु ही करो देव-शास्त्र-गुरु श्रद्धा...तत्त्वार्थ श्रद्धान भी इस हेतुऽऽ
निश्चय-व्यवहार धर्म-पालन भी...श्रावक व श्रमणधर्म पालन भीऽऽऽ
तप-त्याग व व्रत नियम भीऽऽऽ आत्मन्!(2)

आत्मश्रद्धान बिना सभी ही व्यर्थ...सभी ही संसार वर्द्धक कामऽऽऽ
कठोर तप या परिषह जयादि...सभी ही धर्म-कर्म भी भव बीजऽऽऽ
विपरीत गति से लक्ष्य दूर समऽऽऽ

मिथ्या श्रद्धा-प्रज्ञा-चर्या-संहार-मार्गऽऽऽ आत्मन्!(3)

णवि जाणइ जिणसिद्धसरूवं तिविहेण तह णियप्पाणं।
जो तिव्वं कुणइ तवं सो हिंडइ दीहसंसारे।। (124)(र.सा.)
णिच्छयववहारसरूवं जो रयणत्तय ण जाणइ सो।
जं कीरइ तं मिच्छारूवं सव्वं जिणुद्दिट्ठं ।। (125)
किं जाणिऊण सयलं तच्चं किच्चा तवं च किं बहुलं।
सम्मविसोहि विहीणं णाणं तवं जाण भवबीयं।। (126)
वय गुण सील परिसहजयं च चरियं च तवं सडावसयं।
ज्झाणझयण सव्वं सम्मविणा जाण भववीय।। (127)
खाई पूया लाहं सक्काराइं किमिच्छसे जोई।
इच्छइ जइ परलोयं तेहिं किं तव परलोयं।। (128)
कम्मइ विहाव सहावगुणं जो भाविऊण भावेण।
णियसुद्धप्पा रुच्चइ तस्स य णियमेण होइ णिव्वाणं।। (129)
बिना बीज यथा न होता है वृक्ष...तथाहि स्व-श्रद्धा बिना न धर्मऽऽऽ
आत्मा बिन यथा शरीर है शव...तथाहि स्व-श्रद्धा बिना न मोक्षऽऽऽ
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गःऽऽऽ
सम्यग्दर्शन से प्रारंभ मोक्षमार्गऽऽऽ आत्मन्(4)

स्व का श्रद्धान करो जीव द्रव्यमय...निश्चय से शुद्ध-बुद्ध-आनन्दऽऽऽ
कर्मबन्ध से बना तू अशुद्ध जीव...द्रव्य-भाव-नोकर्म से सम्बन्धऽऽऽ
कर्मक्षय से बनो शुद्ध-बुद्धऽऽऽ आत्मन्(5)

कर्मक्षय हेतु ही करो साधना...समता-शान्ति-निस्पृहता से ऽऽऽ
ख्याति-पूजा-लाभ-वर्चस्व त्यागो...संकल्प-विकल्प-संक्लेश आदिऽऽऽ
भोगाकांक्षा निदान से रहित ऽऽऽ आत्मन्(6)

आत्मविशुद्धि हेतु ही ध्यान-अध्ययन...तप-त्याग व धर्म प्रभावनाऽऽऽ
अध्यापन-प्रवचन-लेखन-चिन्तन...सभी में ही करो आत्मा की आराधना
'कनक' स्व में ही स्व की साधनाऽऽऽ
तू बनो शुद्ध-बुद्ध-परमात्माऽऽऽ आत्मन्(7)

''क्योंकि, ''राल्स्टन ने कहा, ''कई लोग आपसे कम उम्र में अनाथ हो जाते हैं। आपने अपनी माँ के साथ काफी, लंबा समय गुज़रा है और इसके अलावा वे अब भी अपने पास हैं। आप उन्हें दोबारा देख पायेंगी। वे अब भी आपके पास है और वे हमेशा आपके पास रहेंगी। शायद, ''उसने कहा, ''वे यहाँ पर हम दोनों के पास है हम दोनों के पास, जब हम बातें कर रहे हैं।''(सकारात्मक सोच की शक्ति)

सुबकियाँ थम गई और आँसू सूख गये। राल्सटन की दयालुता का पुत्री पर भी वही प्रभाव पड़ा जो कि उसकी माँ पर पड़ा था। इस बड़े स्टेशन पर जहाँ हज़ारों लोग पास से गुज़र रहे थे उन दोनों को उस विराट उपस्थिति का अनुभव हुआ जिसने इस अद्भुत पोर्टर को इस तरीक़े से प्रेम का संदेश फैलाने के लिये प्रेरित किया था।

टॉलस्टाय ने कहा, ''जहाँ प्रेम है, वहाँ ईश्वर है।'' और हम इसमें यह जोड़ सकते हैं, कि जहाँ ईश्वर और प्रेम हैं, वही सुख भी है। तो सुखी रहने के लिये व्यावहारिक सिद्धांत यह है कि प्रेम का अभ्यास करें।

मेरा एक दोस्त एच.सी. मैटर्न वास्तव में सुखी इन्सान है जो अपने काम के सिलसिले में अपनी उतनी ही सुखी पत्नी मैरी के साथ देश भर में यात्रा करते हैं। मैटर्न की बिज़नेस कार्ड अद्भुत है। उसके पीछे की तरफ़ ऐसी फ़िलॉसफी दी हुई है जिसने उन्हें और उनकी पत्नी को सुखी बनाया है और उन सैंकड़ों लोगों को भी जो इतने भाग्यशाली थे कि वे उनके संपर्क में आये।

इस कार्ड में लिखा है : ''सुख का रास्ताः नफ़रत को दिल से निकाल दें, चिंता को दिमाग से निकाल दें। सादगी से रहें। कम की उम्मीद रखें, ज़्यादा दो। अपने जीवन को प्रेम से भर दो। खुशी बाँटते चले। खुद को भूल जायें, दूसरों के बारे में सोचें। दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करें, जैसा आप अपने लिये चाहते हैं। इसे एक सप्ताह तक करके देखें और आप हैरान रह जायेंगे।''

इन शब्दों को पढ़ने के बाद शायद आप यह करें, ''इसमें कुछ भी नया नहीं है।'' सच बात हैं परंतु यह भी सच है कि अगर आपने अब तक इसे कभी आज़माया नहीं है तो इसमें कुछ तो नया है। जब आप इसका अभ्यास करेंगे, तो आप इसे सुखी और सफल जीवन का सबसे नया, सबसे ताज़ा और सबसे आश्चर्यजनक तरीक़ा पायेंगे। इन सिद्धांतों का महत्त्व ही क्या है, अगर आपको यह सिद्धांत हमेशा से मालूम हों, परंतु आपने कभी इनका उपयोग न किया हो ? जीवन में इस तरह की

चूक बहुत दुखद है। ग़रीबी में जिंदगी भर क्यों रहा पाये, जब आपके दरबारी की चौखट पर सोने की ईंटे रखी हुई हो ? यह तो जीने का कोई समझदारीपूर्ण तरीक़ा नहीं है। यह आसान फ़िलॉसफ़ी सुख की राह है। इन सिद्धांतों पर सिर्फ़ एक सप्ताह चलकर, देखें,जैसा मैटर्न ने सुझाव दिया है और अगर इनसे आपको सच्चा सुख मिलना शुरू नहीं होता, तो आपका दुख बहुत ही गहराई में बैठा हुआ है।

ज़ाहिर है कि सुख के इन सिद्धांतों को शक्ति देने और उन्हें असरदार बनाने के लिये मानसिक गुणों द्वारा समर्थन देना होगा। आध्यात्मिक शक्ति के बिना इन आध्यात्मिक सिद्धांतों से भी आपको प्रभावी परिणाम मिलने की संभावना नहीं है। जब व्यक्ति अंदर से आध्यात्मिक परिवर्तन का अनुभव करता है तो सुख प्रदान करने वाले विचारों में सफलता अत्यधिक आसान हो जाती है। अगर आप आध्यात्मिक सिद्धांतों का प्रयोग करना शुरू करते हैं, चाहे शुरुआत में आप ऐसा अजीब तरीक़े से करें परंतु धीरे-धीरे अंदर से आप आध्यात्मिक शक्ति का अनुभव करना शुरू करेंगे। मैं आपको आश्वस्त कर सकता हूँ कि यह आपको सुख का महानतम अनुभव देगा। जो आपको अब तक नहीं मिला, होगा। यह आपके साथ तब तक बना रहेगा जब तक आप ईश्वर द्वारा बनायी गयी इसी दुनिया में रहेंगे।

देश में अपनी यात्राओं में वास्तव में सुखी व्यक्तियों से बढ़ती हुई संख्या में मिल रहा हूँ। यह वे लोग हैं जो इस पुस्तक में बतायी गयी तकनीकों का अभ्यास कर रहे हैं, जिनका मैंने आपनी दूसरी पुस्तकों, चर्चाओं और लेखन में उल्लेख किया है और जो दूसरे लेखक और वक्ता भी ग्रहणशील व्यक्तियों को सिखा रहे हैं। यह आश्चर्यजनक है कि आध्यात्मिक परिवर्तन को सिखा रहे हैं। यह आश्चर्यजनक है कि आध्यात्मिक परिवर्तन के आंतरिक अनुभव द्वारा किस तरह लोगों को सुख का इंजेक्शन लगाया जा सकता है। हर जगह पर हर तरह के लोग आज इस अनुभव का लाभ उठा रहे हैं। वास्तव में, यह हमारे युग की सबसे लोकप्रिय घटना बन चुकी है और अगर यह विकसित होती है और फैलती है तो वह व्यक्ति जिसे आध्यात्मिक अनुभव नहीं हुआ है उसे जल्दी ही पुराने जमाने का समझ लिया जायेगा जो समय से पीछे चल रह रहा है। अब आध्यात्मिक रूप से जीवन बिताने को स्मार्ट समझा जा रहा है। यह दकियानूसी है कि आप सुख का निर्माण करने वाले रूपांतरण के प्रति अज्ञानी हो जब इस समय हर जगह लोग इसका आनंद ले रहे हो।

हाल ही मैं एक शहर में लेक्चर ख़त्म करने के बाद एक लंबा-तगडा और आकर्षक व्यक्ति मेरे पास आया। उसने मुझे कंधें पर इतनी ज़ोर से हाथ मारा कि मैं लगभग गिर ही गया।

''डॉक्टर,'' उसने गूँजती हुई आवाज़ में कहा, ''गैंग के साथ चलने के बारे में आपका क्या विचार है ? हम लोग स्मिथ के घर पर एक बड़ी पार्टी मना रहे हैं और हम चाहते हैं कि आप भी हमारे साथ चलें। यह बहुत ही शानदान पार्टी रहेगी और आपको इसमें चलना ही चाहिये।'' उसने तेज़ रफ़्तार से मुझे इस तरह आमंत्रण दिया।

ज़ाहिर है कि इससे ऐसा आभास नहीं हो रहा था कि यह पार्टी किसी उपदेशक के लिये सही तरह की पार्टी होगी और इसलिये मैं झिझका। मुझे डर था कि मैं वहाँ बैठे लोगों को असहज बना दूँगा इसलिये मैं बहाने बनाने लगा।

''अरे, भूल जाइये,'' मेरे मित्र ने मुझसे कहा। ''चिंता न करें, यह आपकी ही तरह की पार्टी है। आपको हैरानी होगी। हमारे साथ चलिये। आपको इसमें जीवन का आनंद आ जायेगा।''

इस पर मैं सहमत हो गया और मेरे ज़िंदादिल और बातूनी मित्र के साथ चल दिया। वह मेरे द्वारा देखे गये सबसे संक्रामक व्यक्तियों में से एक था। जल्दी ही हम एक बड़े घर में आ गये जो पेड़ों के बीच बना था और जिसके अगले द्वार पर एक चौड़ा मार्ग बना था। खुली खिड़कियों से आती आवाज़ों से स्पष्ट था कि पार्टी ज़ोर-शोर से चल रही थी और मैं सोचने लगा कि मैं न जाने कहाँ जा रहा हूँ। मेरे मेज़बान ने ज़ोर से चिल्लाते हुये मुझे कमरे में खींचा और हमें काफ़ी समय तक हाथ मिलाने की प्रक्रिया से गुजरना पड़ा और उसने मेरा परिचय प्रफुल्लित और खुशनुमा लोगों के एक बड़े समूह से कराया। वे बहुत ही सुखी और खुश लोग थे।

मैंने चारों तरफ़ देखा कि बार कहाँ है, परंतु वहाँ पर कोई बार नहीं था। वहाँ पर जो चीज़ें मिल रही थी वे थीं कॉफ़ी, फलों का जूस, जिंजर, एल, सैंडविच और आइसक्रीम और वे बहुत बड़ी तादाद में थी।

मैंने अपने दोस्त से कहा, ''यह लोग यहाँ आने से पहले रास्ते में कहीं, पर रुक गये होंगे।''

उसे झटका लगा, उसने कहा, ''कहीं रुक गये होंगे ? नहीं, नहीं आप समझ नहीं रहे हैं। इन लोगों में जोश तो हैं, परंतु उस तरह का जोश नहीं है जो शराब से

मिलता है। आपके सोचने के तरीक़े पर मुझे हैरानी है, ''उसने कहा। ''क्या आपको यह एहसास नहीं है कि इस भीड़ के इतने सुखी होने का कारण क्या है? वे लोग आध्यात्मिक रूप से नये बन गये हैं। उन्हें कुछ मिल गया है। उन्हें अपने आप से मुक्ति मिल गयी है। उन्हें जीवित महत्त्वपूर्ण और सच्चे यथार्थ के रूप में ईश्वर मिल गया है। हाँ,'' उसने कहा, ''उनमें जोश तो है, परंतु उस तरह का जोश नहीं है जो किसी बोतल में मिलता है। उनका जोश उनके दिलों से निकला हैं।''

फिर मैंने देखा कि उसका क्या आशय था। यह दुःखी चेहरे वाले नीरस लोगों की भीड़ नहीं थी। यह लोग उस शहर के लीडर्स थे- बिजनेसमैन, वकील, डॉक्टर, शिक्षक, समाज के महत्त्वपूर्ण लोग और उनके अलावा बहुत से आम लोग भी और वे लोग इस पार्टी का पूरा आनंद ले रहे थे- वे ईश्वर के बारे में बातें कर रहे थे और वे ऐसा सबसे स्वाभाविक तरीक़े से कर रहे थे। वे एक-दूसरे को उन परिवर्तनों के बारे में बता रहे थे जो उनके अंदर आध्यात्मिक शक्ति द्वारा घटित हुये थे।

जिन लोगों को यह भ्रम है कि अगर आप धार्मिक हैं तो आप हँस नहीं सकते या जोशीले नहीं हो सकते, उन्हें उस पार्टी में होना चाहिये था।

तो, मैं उस पार्टी से जब लौटा तो मेरे दिमाग़ में बाइबल की एक पंक्ति घुमड़ रही थी : ''उसी में जीवन था; और वह जीवन लोगों की रोशनी बन गया।''(जॉन 1:4) मैंने इस सुखी लोगों के चेहरों पर उसी रोशनी को देखा। उनके चेहरों पर बाहर उसी आंतरिक रोशनी की झलक थी और यह किसी जोशीले आध्यात्मिक स्रोत से आयी थी जिसे उन्होंने अपने अंदर बिठा लिया था। जीवन का अर्थ है जीवंतता और यह लोग स्पष्ट रूप से ईश्वर से अपनी जीवंतता प्राप्त कर रहे थे। उन्होंने वह शक्ति पा ली थी जो सुख का निर्माण करती है।

यह कोई अकेली घटना नहीं है। मैं यह कहना चाहूँगा कि आपके अपने समुदाय में, अगर आप अपने चारों तरफ़ उनकी खोज करें, तो आपको इस तरह के बहुत से लोग मिल सकते हैं। अगर आपको अपने शहर में ऐसे लोग न मिलें तो आप न्यूयॉर्क में मार्बल कॉलोजियेट चर्च में आ जायें और यहाँ वे आपको सैंकड़ों की तादाद में मिलेंगे। परंतु आप भी इस पुस्तक को पढ़कर अपने अंदर इसी तरह की भावना विकसित कर सकते हैं बशर्ते आप इसमें दिये गये आसान सिद्धांतों का अभ्यास करें।

जब आप यह पुस्तक पढ़ें तो जो लिखा है उसमें विश्वास करें क्योंकि यह सच

है। फिर इस पुस्तक में दिये गये व्यावहारिक सुझावों पर काम करना शुरू कर दें और आपको भी वह आध्यात्मिक अनुभव होगा जो सुख देगा। मैं जानता हूँ कि ऐसा होता है क्योंकि मैंने जिन कई लोगों का उल्लेख किया है और जिनका मैं बाद में आने वाले अध्यायों में उल्लेख करूँगा, उन सभी ने इसी तरीक़े से अपना महत्त्वपूर्ण नया जीवन प्राप्त किया है। फिर जब आप अंदर से बदल जायें तो आप अपने दुःख का नहीं, बल्कि सुख का निर्माण करेंगे और वह इस क्वालिटी और चरित्र का होगा, कि आपको यक़ीन ही नहीं होगा कि आप उसी दुनिया में रह रहे हैं। सच तो यह है कि यह वही दुनिया नहीं होगी क्योंकि आप वहं नहीं रहे, और आप ही उस दुनिया को निर्धारित करते हैं जिसमें आप रहते हैं। तो जब आप बदल जाते हैं तो आपकी दुनिया भी बदल जाती है।

अगर सुख हमारे विचारों से निर्धारित होता है तो आवश्यक है कि हम ऐसे विचारों को दूर भगा दें जो निराश या हताश करते हों। ऐसा किया जा सकता है अगर पहले आप सिर्फ़ ऐसा करने का निश्चय कर लें; दूसरे आप एक आसानी से अमल में आने वाली तकनीक का प्रयोग करें जिसका सुझाव मैंने एक बिजनेसमैन को दिया था। मैं उससे लंच के दौरान मिला था और मैंने शायद ही कभी इतनी निराशा भरी बातें सुनी होंगी। उसकी चर्चा अत्यधिक निराशाजनक थी और अगर मैं तैयार नहीं होता तो इसने मुझे भी प्रभावित कर दिया होता। उसका हर शब्द निराश से भरा हुआ था। उसकी बातों को सुनकर आप यही सोचते कि हर चीज़ बर्बादी की तरफ़ बढ़ रही है। ज़ाहिर है यह व्यक्ति थका हुआ था। एकत्रित होती समस्यायें उसके दिमाग़ में भरी हुई थी और वे दुनिया से भागकर उसकें मस्तिष्क में शरण ले चुकी थी। उसकी कम ऊर्जा का कारण यही था कि वह इस दुनिया का सामना करने के बजाय इसे कोसने में लगा हुआ था। उसकी प्रमुख समस्या उसका निराशावादी चिंतन था। उसे प्रकाश और आस्था की दया की जरूरत थी।

संदर्भ-

सम्यक्त्व की आत्मकथा

(सम्यक्त्व व मिथ्यात्व का स्वरूप व फल)

चालः 1. जीना यहाँ मरना यहाँ...2. जिया बेकरार है...

सम्यक्त्व मेरा नाम है...सत्यदर्शन काम है...

आत्मविशुद्धि से मेरा जन्म...आत्मविश्वास परिणाम है...(ध्रुव)...
मेरे विविध नाम भी होते...सम्यग्दर्शन, रूचि, श्रद्धान...
तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं...आत्म प्रतीति उत्तम काम...
निकटभव्य को ही प्राप्त होता हूँ...पञ्च लब्धियाँ प्राप्त कर...
देशनालब्धि विशुद्धि लब्धि...सुद्रव्यक्षेत्रकाल भाव पाकर...(1)...

अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया...लोभ मोह कर्म के उपशम से...
प्रथम उपशम सम्यक्त्व रूप से...जन्म लेता हूँ (मैं) भव्यों में...
उक्त कर्मों के क्षयोपशम से...जन्मूँ क्षयोपशम सम्यक्त्व में...
उक्त कर्मों के क्षय के कारण...जन्मूँ क्षायिक सम्यक्त्व में...(2)...

मेरे जन्म के अनन्तर सहगामी...सम्यग्ज्ञान का भी प्रादुर्भाव...
दोनों के कारण से ही सम्भव...सम्यक्चारित्र व मोक्षमार्ग...
''जैसी दृष्टि वैसी ही सृष्टि...इसे करूँ मैं चरितार्थ...
मुझसे ही प्रारम्भ मोक्षमार्ग...मुझ बिन संसार परिभ्रमण...(3)...

मुझ से ही धर्म सुधर्म होता...मुझ बिन धर्म भी कुधर्म है...
मुझसे ही पुण्य सातिशय होता...मुझ बिन (पुण्य) पापानुबन्धी है...
मेरे कारण ही होता आत्मश्रद्धान...मैं हूँ निश्चय से शुद्ध बुद्ध...
अनादि मिथ्यात्व के कारण ही...जीव माने स्वयं को देहमय...(4)...

धनजन बन्धु कुटुम्ब आदि में...जीव 'अहंकार' 'ममकार' करते...
ऐसे मैं व मेरा के कारण जीव...अन्याय से ले पापाचार करते...
अष्टमद सप्तव्यसनादि सेवते...आत्महित-अहित न जानते...
सङ्कीर्णकट्टर रूढ़ि परम्परा माने...ख्याति पूजादि निमित्त धर्म करते...(5)

मेरे कारण जीव सुदृष्टि बनकर...स्व (मैं) को परमात्मा बनाने हेतु तत्पर
आत्मविशुद्धि से परमात्मा बनते...'कनक' परमात्मा बनने हेतु तत्पर (6)

ग.पु. कॉलोनी, दि. 12.6.2019, रात्रि 9.16

दंसणमूलो धम्मो, उपइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं।
तं सोऊण सकण्णे, दंसणहीणो ण वंदिव्वो।। 2।।

श्री जिनेंद्र भगवान् ने शिष्यों के लिए दर्शनमूल धर्म का उपदेश दिया है इसलिए उसे अपने कानों से सुनो। जो सम्यग्दर्शन से रहित है वह वंदना करने योग्य नहीं।

दंसणभट्टा भट्टा, दंसणभट्टसस णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरियभट्टा, दंसणभट्टा ण सिज्झंति।।3।।

जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं वे वास्तव में भ्रष्ट हैं, क्योंकि सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट मनुष्य मोक्ष को प्राप्त नहीं होता। जो सम्यक्चारित्र से भ्रष्ट हैं वे सिद्ध हो जाते हैं परंतु जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं वे सिद्ध नहीं हो सकते।

सम्मत्तरयणभट्टा, जाणंता बहुविहाई सत्थाइं।
आराहणविरहिया, भमंति तत्थेव तत्थेव।।4।।

जो सम्यक्त्व रत्न से भ्रष्ट हैं वे बहुत प्रकार के शास्त्रों को जानते हुए भी आराधनाओं से रहित होने के कारण उसी संसार में भ्रमण करते रहते हैं।

सम्मत्तविरहियाणं, सुट्ठु वि उग्गं तवं चरंताणं।
ण लहंति बोहिलाहं, अवि वाससहस्सकोडीहिं।।5।।

जो मनुष्य सम्यग्दर्शन से रहित हैं वे भले ही करोड़ों वर्षों तक उत्तमपूर्वक कठिन तत्पश्चरण करें तो भी उन्हें रत्नत्रय प्राप्त नहीं होता हैं।

सम्मत्तणाणदंसणबलवीरियवड्ढमाण जे सव्वे।
कलिकलुसपावरहिया, बरणाणी होंति अइरेण।।6।।

जो पुरुष सम्यक्त्व,ज्ञान, दर्शन, बल और वीर्य से वृद्धि को प्राप्त हैं तथा कलिकाल संबंधी मलिन पाप से रहित हैं वे सब शीघ्र ही उत्कृष्ट ज्ञानी हो जाते हैं।

सम्मत्तसलिलपवहे, णिच्चं हियए पवट्टए जस्स।
कम्मं वालुयवरणं, बंधुच्चिय णासए तस्स।।7।।

जिस मनुष्य के हृदय में सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह निरंतर प्रवाहित होता है उसका पूर्वबंध से संचित कर्मरूपी बालूका आवरण नष्ट हो जाता है।

जे दंसणेसु भट्टा, णाणे भट्टा चरित्तभट्टा य।
ऐदे भट्टविभट्टा, सेसं पि जणं विणासंति।।8।।

जो मनुष्य दर्शन से भ्रष्ट है, ज्ञान से भ्रष्ट हैं और चारित्र से भ्रष्ट हैं वे भ्रष्टों में भ्रष्ट हैं अत्यंत भ्रष्ट हैं तथा अन्य जनों को भी भ्रष्ट करते हैं।

जो कोवि धम्मसीलो, संजमतवणियमजोयगुणधारी।

तस्स य दोस कहंता, भग्गा भग्गत्तणं दिंति।।9।।

जो कोई धर्मात्मा संयम, तप, नियम और योग आदि गुणों के धारक हैं उसके दोषों को कहते हुए क्षुद्र मनुष्य स्वयं भ्रष्ट हैं तथा दूसरों की भ्रष्टता प्रदान करते हैं।

जह मूलम्मि विणट्ठे, दुम्मस परिवार णत्थि परवड्ढी।

तह जिणदंसणभट्ठा, मूलविणट्ठा ण सिज्झंति।। 10।।

जैसे जड़ के नष्ट हो जाने पर वृक्ष के परिवार की वृद्धि नहीं होती वैसे ही जो पुरुष जिनदर्शन से भ्रष्ट हैं वे मूल से विनष्ट है उनका मूल धर्म नष्ट हो चुका है, अतः ऐसे जीव सिद्ध अवस्था को प्राप्त नहीं हो पाते हैं।

जह मूलाओ खंधो, साहापरिवार बहुगुणो होई।

तह जिणदंसणमूलो, णिद्दिट्ठो मोक्खमग्गस।।11

जिस प्रकार वृक्ष की जड़ से शाखा आदि परिवार से युक्त कई गुणा स्कंध उत्पन्न होता है उसी प्रकार मोक्षमार्ग की जड़ जिनदर्शन जिनधर्म का श्रद्धान है ऐसा कहा गया है।

जे दंसणेसु भट्ठा, पाए पाडंति दंसणधराणं।

ते होंति लुल्लमूआ, बोही पुण दुल्लहा तेसिं।।12।।

जो मनुष्य स्वयं सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट होकर अपने चरणों में सम्यग्दृष्टियों को पाड़ते हैं अर्थात् सम्यग्दृष्टियों से अपने चरणों में नमस्कार कराते हैं वे लूले और गूँगे होते हैं तथा उन्हें रत्नत्रय अत्यंत दुर्लभ रहता है। यहाँ लूले और गूँगे से तात्पर्य स्थावर जीवों से है क्योंकि यथार्थ में वे ही गतिरहित तथा शब्दहीन होते हैं।

जे वि पडंति च तेसिं, जाणंता लज्जगारवभयेण।

तेसिं पि णत्थि बोही, पावं अणुमोयमाणाणं।। 13।।

जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य मिथ्यादृष्टियों को जानते हुए भी लज्जा, गौरव और भय से उनके चरणों में पड़ते हैं वे भी पाप की अनुमोदन करते हैं अतःउन्हें रत्नत्रय की प्राप्ति नहीं होती।

दुविहं पि गंधचायं, तीसुवि जोएसु संजमो ठादि।

णाणम्मि करणसुद्धे, उब्भसणे दंसणं होई।।14।।

जहाँ अंतरंग और बहिरंग के भेद से दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग होता है,

मन वचन काय इन तीनों योगों में संयम स्थित रहता है, ज्ञान कृत, कारित, अनुमोदना से शुद्ध रहता है और खड़े होकर भोजन किया जाता है वहाँ सम्यग्दर्शन होता है।

सम्मत्तादो णाणं, णाणादो सव्वभाव उवलद्धी।
उवलद्धपयत्थे पुण, सोयासेयं वियोणदि।।15।।

सम्यग्दर्शन से सम्यग्ज्ञान होता है, सम्यग्ज्ञान से समस्त पदार्थ की उपलब्धि होती है और समस्त पदार्थों की उपलब्धि होने से यह जीव सेव्य तथा असेव्य को कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को जानने लगता है।

सेयासेयविदण्हू, उद्धददुस्सील सीलवंतो वि।
सीलफलेणब्भुदयं तत्तो पुण लहइ णिव्वाणं।।16।।

सेव्य और असेव्य को जानने वाला पुरुष अपने मिथ्या स्वभाव को नष्ट कर शीलवान् हो जाता है तथा शील के फलस्वरूप स्वर्गादि अभ्युदय को पाकर फिर निर्वाण को प्राप्त हो जाता है।

जिणवयणमोसहमिणं, विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं।
जरमरणवाहिहरणं, खयकरणं सव्वदुक्खाणं।।17।।

यह जिनवचनरूपी औषधि विषय सुख को दूर करने वाली है, अमृतरूप है, बुढापा, मरण आदि की पीड़ा हरने वाली है तथा समस्त दुःखों को क्षय करने वाली है।

छह दव्व णव पयत्था, पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।
सद्दहइ ताण रूवं, सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो।।19।।

छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्त्व कहे गये हैं। जो उनके स्वरूप का श्रद्धान करता है उसे सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

जीवादी सद्दहणं, सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो, अप्पाणं हवइ सम्मत्तं।।20।।

जिनेंद्र भगवान् ने सात तत्त्वों के श्रद्धान को व्यवहार सम्यक्त्व कहा है और शुद्ध आत्मा के श्रद्धान को निश्चय सम्यक्त्व बतलाया है।

एवं जिणपण्णत्तं दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणत्तय, सोवाणं पढम मोक्खस्स।।21।।

इस प्रकार जिनेंद्र भगवान् के द्वारा कहा हुआ सम्यग्दर्शन साररूप है और मोक्ष की पहली सीढ़ी है, इसलिए हे भव्य जीवों! उसे अच्छे अभिप्राय से धारण करो।

जं सक्कइ तं कीरइ, जं च ण सक्कइ तं च सद्दहणं।

केवलिजिणेहि भणियं, सद्दहमाणस्स सम्मत्तं।।22।।

जितना चारित्र धारण किया जा सकता है उतना धारण करना चाहिए और जितना धारण नहीं किया जा सकता उसका श्रद्धान करना चाहिए, क्योंकि केवलज्ञानी जिनेंद्र देवने श्रद्धान करने वालों के सम्यग्दर्शन बतलाया है।

दंसणणाणचरित्ते, तवविणये णिच्चकालसुपसत्था।

एदे दु वंदणीया, जे गुणवादी गुणधराणं।। 23।।

जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप तथा विनय में निरंतर लीन रहते हैं और गुणों के धारक आचार्य आदि का गुणगान करते हैं वे वंदना करने योग्य पूज्य हैं।

सहजुप्पणं रूवं, दट्ठुं जो मण्णए ण मच्छरिओ।

सो संजमपडिवण्णो, मिच्छाइट्ठी हवइ एसो।।24।।

मात्सर्य भाव से भरा हुआ जो पुरुष जिनेंद्र भगवान् के सहजोत्पन्न दिगंबर रूप को देखने योग्य नहीं मानता वह संयमी होने पर मिथ्यादृष्टि है।

अमराणं वंदियाणं, रूवं दट्ठूण सीलसहियाणं।

ये गारवं करंति य, सम्मत्तविवज्जिया होंति।25।।

शील सहित तथा देवों के द्वारा वंदनीय जिनेंद्र रूप को देखकर जो अपना गौरव करते हैं-अपने को बड़ा मानते हैं वे भी सम्यग्दर्शन रहित हैं।

ण वि देहो वंदिज्जइ, ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुत्तो।

को वंदमि गुणहीणो,णहु सवणो णेव सावओ होइ।।27।।

न शरीर की वंदना की जाती है, न कुल की वंदना की जाती है और न जाति संयुक्त की वंदना की जाती है। गुणहीन की कौन वंदना करता है ? क्योंकि गुणों के बिना न मुनि होता है और न श्रावक होता है।

वंदमि तवसावण्णा, सीलं च गुणं च बंभचेरं च।

सिद्धिगमणयं च तेसिं, सम्मत्तेण सुद्धभावेण।। 28।।

मैं तपस्वी साधुओं को, उनके शील को, मूलोत्तर गुणों को, ब्रह्मचर्य को और मुक्तिगमन को सम्यक्त्व सहित शुद्ध भावना से वंदना करता हूँ।

णाणेण दंसणेण य, तवेण चरियेण संजमगुणेण।

चउहिं पि समाजोग्गे, मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो।।30।।

ज्ञान, दर्शन, तप और चारित्र इन चार गुणों से संयम होता है और इन चारों का समागम होने पर मोक्ष होता है ऐसा जिनशासन में कहा है।

णाणं णरस्स सारो, सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।

सम्मत्ताओ चरणं, चरणाओ होइ णिव्वाणं।। 31

सर्वप्रथम मनुष्य के लिए ज्ञान सार है और ज्ञान से भी अधिक सार सम्यग्दर्शन है, क्योंकि सम्यग्दर्शन से सम्यक् चारित्र होता है और सम्यक्चारित्र से निर्वाण होता है।

णाणम्मि दंसणम्मि य, तवेण चरियेण सम्मसहियेण।

चोण्हं हि समाजोगे, सिद्धा जीवा ण संदेहो।।32।।

ज्ञान दर्शन, सम्यक्त्वसहित तप और चारित्र इन चारों के समागम होने पर ही जीव सिद्ध हुए हैं इसमें संदेह नहीं है।

सम्यगदृष्टि जीव निःशंक तथा निर्भय होता

सम्माद्दिट्ठी जीवा, णिस्संका होंति णिब्भया तेण।

सत्तभयविप्पमुक्का, जम्हा तम्हा दु णिस्संका।। 228।। समयसार

सम्यग्दृष्टि जीव चूँकि शंकारहित होते हैं इसलिए निर्भय हैं और चूँकि सप्तभय से रहित हैं इसलिए शंकारहित हैं।

भावार्थ- निर्भयता और निःशंकपने में परस्पर कार्यकारण भाव है।

निःशंकित अंग का स्वरूप

जो चत्तारिवि पाए, छिंदति ते कम्मबंधमोहकरे।

सो णिस्संको चेदा, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।।229।।

जो आत्मा कर्मबंध के कारण मोह के करने वाले उन मिथ्यात्व आदि पापों को काटता है उसे निःशंक सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

निःकाक्षित अंग का स्वरूप

जो दुण करेदि कंखं,कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु।

सो णिक्कंखो चेदा, सम्मदिट्ठी मुणेयव्वो।। 230।।

जो आत्मा कर्मों के फलों में तथा वस्तु के स्वभावभूत समस्त धर्मों में वांछा नहीं करता है उसे निःकांक्षित सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

निर्विचिकित्सत अंग का स्वरूप

जो ण करेदि जुगुप्पं, चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं।

सो खलु णिव्विदिगिच्छो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।।231

जो जीव वस्तु के सभी धर्मों में ग्लानि नहीं करता उसे निश्चय से निर्विचिकित्सित सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

अमूढदृष्टि अंग

जो हवइ असंमूढो, चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु।

सो खलु अमूढदिट्ठी, सम्मादिट्ठीमुणेयव्वो।।232।।

जो जीव सब भावों में मूढ़ नहीं होता हुआ यथार्थ दृष्टि वाला होता है उसे निश्चय से अमूढ़दृष्टि सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

उपगूहन अंग का लक्षण

जो सिद्धभत्तिजुत्तो, उवगूहणगो सुव्वधम्माणं।

सो उवगूहणकारी, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।।233।।

जो सिद्धभक्ति से युक्त हो समस्त धर्मों का उपगूहन करने वाला हो उसे उपगूहन अंग का धारी सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

स्थितिकरण अंग का लक्षण

उम्मंगं गच्छंतं, संगपि मग्गे ठवेदि जो चेदा।

सो ठिदिकरणाजुत्तो, सम्मदिट्ठी मुणेयव्वो।।234।।

जो जीव न केवल पर को किंतु उन्मार्ग में जाने वाले अपने आत्मा को भी समीचीन मार्ग में स्थापित करता है उसे स्थितिकरण अंग से युक्त सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

वात्सल्य अंग का स्वरूप

जो कुणदि वच्छलत्तं, तियेह सहूण मोक्खमग्गम्मि।

सो वच्छलभावजुदो, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।।235।।

जो जीव, आचार्य उपाध्याय तथा साधुरूप मुनियों के त्रिक में और सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र स्वरूप मोक्षमार्ग में वत्सलता करता है उसे वात्सल्य भाव से युक्त सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए। 235।

प्रभावना अंग का स्वरूप

विज्जारहमारूढो, मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा।
सो जिणणाणपहावी, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।।236।।

जो जीव विद्यारूपी रथ पर आरूढ होकर मनरूपी रथ के मार्ग में भ्रमण करता है उसे जिनेंद्रदेव के ज्ञान की प्रभावना करने वाला सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

आध्यात्मिक शक्ति बढाने हेतु...

(बुद्धिलब्धि-संवेदनशीलता-आध्यात्मिकता की वृद्धि हेतु...)

(साधु बनने के कारण)

(चालः- 1. आत्मशक्ति....2. क्या मिलिए....) - आचार्य कनकनन्दी

लाखों जिज्ञासायें बाल्यकाल से मेरी उत्पन्न हो रही हैं।
अनेक जिज्ञासायें समाधान हुई अन्य भी धीरे धीरे हो रही हैं।।
तीर्थंकर बुद्ध ऋषि मुनि आदि क्यों त्याग करते हैं राज्य वैभव ?
एकान्त मौन में जंगल में क्यों करते निस्पृहता से आत्मध्यान।।
इस का समाधान अभी तक मुझे जो आगम से ले अनुभव में हो रहा।
उसका कुछ वर्णन कर रहा हूँ जो विज्ञान में भी सिद्ध हो रहा।।
राज्य वैभव से ले भोगोपभोग हेतु जो होते संकल्प-विकल्प।
उससे जायमान संक्लेश दूर हेतु भी मुनि बनकर एकान्त में करते आत्मध्यान
गृहस्थ सम्बन्धी आरंभ परिग्रह हेतु जो करना होता है काम।
उससे भी नवकोटि से निवृत्ति हेतु त्याग करे सम्पूर्ण गृहस्थी के काम।
कुछ तो होते हैं बालब्रह्मचारी कुछ होते है विवाह सुधा।
किन्तु सम्पूर्ण परिवार त्यागकर दोनों ही बनते हैं निस्पृह सदा।।
अन्यथा परिवार के कारण होती हैं अनेक विध समस्यायें।
जन्ममरण से ले विवाह व जीविका-अर्जन हेतु अनेक समस्यायें।
सगा सम्बंधी कुटुम्ब समाज सचित्त-अचित्त मित्र परिग्रह।
उनके भरणपोषण लालन पालन व आधी व्याधी की समस्यायें
युवराज से ले चक्रवर्ती होने पर और भी होती समस्यायें।
प्रजापालन से ले राज्य रक्षण हेतु युद्ध विग्रह से न्यायिक समस्यायें

उपरोक्त सभी कार्य व समस्या हेतु होते हैं आर्त्त-रौद्र ध्यान।
समता शान्ति से आत्मसाधना हेतु नहीं हो पाते उत्तम परिणाम।।
उक्त सभी काम से निवृत्त होकर होते उन सभी समस्या से निवृत्त।
उन से जायमान संकल्प-विकल्प संक्लेशों से भी होते निवृत्त।।
इससे उन में आती समता-शान्ति निस्पृहता से ले आत्मविशुद्धि
जिससे आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती जिससे श्रद्धा-प्रज्ञा-चर्या बढ़ती।।
इसलिए तो तद्भव मोक्षगामी तीर्थंकर जब दीक्षा ग्रहण करते।
अन्तर्मुहूर्त में ही मनःपर्याय ज्ञान सहित चउसठ ऋद्धियाँ प्राप्त करते
गृहस्थ अवस्था में दशकों से लाखों वर्ष में जिसे न प्राप्त कर सके।
दीक्षा ग्रहण करने के अनन्तर अन्तर्मुहूर्त में ही उसे वे प्राप्त कर सके।
बुद्धिलब्धि से ले कार्यक्षमता बढ़ाने हेतु चाहिए शान्ति से ले एकाग्रता
विज्ञान अभी यह सिद्ध कर रहा है 'सूरी कनक' बाल्यकाल से करे ऐसी साधना।

ग.पु. का. 13.6.2019 रात्रि 11.25

एवं पणमिय सिद्धे, जिणवरवसहे पुणो पुणो समणे।
पडिवज्जद सामण्णं, जदि इच्छदि दुक्खपरिमोक्खं।।1 प्र.सार

हे भव्यजीवों! यदि आप लोग दुःखों से छूटकारा चाहते हैं तो इस प्रकार सिद्धों को, जिनवरों में श्रेष्ठ तीर्थंकर अर्हंतको और आचार्योंपाध्याय सर्व साधुरूप मुनियों को बार-बार प्रणाम कर मुनिपद को प्राप्त करें।

मुनि होने का इच्छुक पुरुष पहले क्या करे

आपिच्छ बंधुवग्गं, विमोइदो गुरुकलत्तपुत्तेहिं।
आसिज्ज णाणदंसण, चरित्ततववीरियायारं।।2।।
समणं गणिं गुणड्ढं, कुलरूववयोसिट्ठमिट्ठदरं।
समणेहि तं पि पणदो, पडिच्छ मं चेदि अणुगहिदो।।3।।

जो मुनि होना चाहता है वह सर्वप्रथम अपने बंधुवर्ग से पूछकर गुरु, स्त्री तथा पुत्रों से छूटकारा प्राप्त करे। फिर ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य इन पाँच आचारों को प्राप्त होकर ऐसे आचार्य के पास पहुँचे जो कि अनेक गुणों से सहित हो, कुल रूप

तथा अवस्था से विशिष्ट हों और अन्य मुनि जिसे अत्यंत चाहते हों। उनके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम करता हुआ यह कहे कि हे प्रभो! मुझे अंगीकार कीजिए। अनंतर उनके द्वारा अनुगृहीत होकर निम्नांकित भावना प्रकट करे।

णाहं होमि परेसिं, ण मे परे णत्थि मज्झमिह किंचि।
इदि णिच्छिदो जिदिंदो, जादो जधजादरूवधरो।।4।।

'मैं दूसरों का नहीं हूँ, दूसरे मेरे नहीं हैं और न इस लोक में मेरा कुछ है।' इस प्रकार निश्चित होकर जितेंद्रिय होता हुआ सद्योजात बालक के समान दिगंबर रूप को धारण करे।

सिद्धि के कारणभूत बाह्य लिंग और अंतरंग लिंग

'जधजादरूवजादं, उप्पाडिदकेसमंसुगं सुद्धं।
रहितं हिंसादीदो, अपडिकम्मं हवदि लिंगं।।5।।
मुच्छारंभविजुत्तं, जुत्तं उवजोगजोगसुद्धीहिं।
लिंगं ण परावेक्खं, अपुणब्भवकारणं जोण्हं ।।6।। जुगलं।।।

जो सद्योजात बालक के समान निर्विकार निर्ग्रंथ रूप के धारण करने से उत्पन्न होता है, जिसमें शिर तथा दाढ़ी-मूँछ के बाल उखाड़ दिये जाते हैं, जो शुद्ध है-निर्विकार है, हिंसादि पापों से रहित है और शरीर की सँभाल तथा सजावट से रहित है बाह्य लिंग है। तथा जो मूर्च्छा परपदार्थ में ममता परिणाम और आरंभ से रहित है, उपयोग और योग की शुद्धि से सहित है, पर की अपेक्षा से दूर है एवं मोक्ष का कारण है वह श्रीजिनेंद्रदेव के द्वारा कहा हुआ अंतरंगलिंग भावलिंग है।

जैनागम में बहिरंग लिंग और अंतरंग लिंग-दोनों ही लिंग परस्पर सापेक्ष रहकर ही कार्य के साधक बतलाये हैं। अंतरंग लिंग के बिना बहिरंग केवल नट के समान वेष मात्र है, उससे आत्मा का कुछ भी कल्याण साध्य नहीं है और बहिरंग लिंग के बिना अंतरंग लिंग का होना संभव नहीं है। क्योंकि जब तक बाह्य परिग्रह का त्याग होकर यथार्थ निर्ग्रंथ अवस्था प्रकट नहीं हो जाती तब तक मूर्च्छा या आरंभरूप आभ्यंतर परिग्रह का त्याग नहीं हो सकता और जब तक हिंसादि पापों का अभाव तथा शरीरासक्ति का भाव दूर नहीं हो जाता तब तक उपयोग और योग की शुद्धि नहीं हो सकती। इस प्रकार उक्त दोनों लिंग ही अपुनर्भव फिर से जन्म धारण नहीं करता अर्थात् मोक्ष के कारण हैं।

श्रमण कौन होता है ?

आदाय तंपि गुरुणा, परमेण तं णमंसित्ता।

सोच्चा सवयं किरियं, उवट्ठिदो होदि सो समणो।।7।।

जो परमभट्टारक अर्हंत परमेश्वर अथवा दीक्षागुरु से पूर्वोक्त दोनों लिंगों को ग्रहण कर उन्हें नमस्कार करता है और व्रत सहित आचार विधि को सुनकर शुद्ध आत्मस्वरूप में उपस्थित रहता है अपने उपयोग को अन्य पदार्थों से हटाकर शुद्ध आत्मस्वरूप के चिंतन में लीन रहता है वह श्रमण होता है।

भत्ते वा खवणे वा, आवसधे वा पुणो विहारे वा।

उवधिम्मिवा णिबद्धं, णेच्छदि समणम्मि विकधम्मि।।15।।

उत्तम मुनि भोजन में अथवा उपवास में अथवा गृह आदि निवास स्थान में अथवा विहार कार्य में अथवा शरीर रूप परिग्रह में अथवा साथ रहने वाले अन्य मुनियों में अथवा विकथा में ममत्वपूर्वक संबंध की इच्छा नहीं करता है।

प्रमादपूर्ण प्रवृत्ति ही मुनिपद का भंग है

अपयत्ता वा चरिया, सयणासणठाणचंकमादीसु।

समणस्स[4] सव्वकालं, हिंसा सा संततत्ति मदा।।16।।

सोना, बैठना, खड़ा होना तथा विवाह करना आदि क्रियाओं में साधु की जो प्रयत्न रहित स्वच्छंद प्रवृत्ति है वह निरंतर अखंड प्रवाह से चलने वाली हिंसा है ऐसा माना गया है।

प्रमादपूर्ण प्रवृत्ति से हिंसा होती है और हिंसा से मुनि पद का भंग होता है अतः मुनि को चाहिए कि वह सदा प्रमाद रहित प्रवृत्ति करे।

मुनिपद का भंग अंतरंग और बहिरंग के भेद से दो प्रकार का होता है

मरदु व जिवदु व जीवो, अयादाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।

पयदस्स णत्थि बंधो, हिंसामेत्तेणसमिदीसु।।17।।

दूसरा जीव मरे अथवा न मरे, परंतु अयत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करने वाले के हिंसा निश्चित है अर्थात् वह नियम से हिंसा करने वाला है तथा जो पाँचों समितियों में प्रयत्नशील रहता है अर्थात् यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करता है उसके बाह्य हिंसामात्र से बंध नहीं होता है।

आत्मा में प्रमाद की उत्पत्ति होना भाव हिंसा है और शरीर के द्वारा किसी प्राणी

का विघात होना द्रव्यहिंसा है। भाव हिंसा से मुनिपद का अंतरंग भंग होता है और द्रव्यहिंसा से बहिरंग भंग होता है। बाह्य में जीव चाहे न मरे परंतु जो मुनि अयत्नाचारपूर्वक गमनागमनादि करता है उसके प्रमाद के कारण भावहिंसा होने से मुनि पद का अंतरंग भंग निश्चित रूप से होता है और जो मुनि प्रमाद रहित प्रवृत्ति करता है उसके बाह्य जीवों का विघात होने पर भी प्रमाद के अभाव में भावहिंसा न होने से हिंसाजन्य पापबंध नहीं होता है। भाव हिंसा के साथ होने वाली द्रव्य हिंसा ही पापबंध का कारण है। केवल द्रव्य हिंसा से पापबंध नहीं होता, परंतु भावहिंसा हिंसा की अपेक्षा नहीं रखती। वह हो अथवा न भी हो, परंतु भाव हिंसा के होने पर नियम से पापबंध होता है। इसलिए निरंतर प्रमाद रहित ही प्रवृति करनी चाहिए।

भाव हिंसा रूप अंतरंग भंग (छेद) का सर्व प्रकार से त्याग करना चाहिए

अयदाचारो समणो, छस्सुवि कायेसु [2]बंधगोत्ति मदो।
चरदि जदं जदि णिच्चं, कमलं व जले णिरुवलेवो।।18।।

अयत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करने वाला साधु काया के विषय में बंध करने वाला है ऐसा माना गया है और वही साधु यदि निरंतर यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करता है तो जल में कमल की तरह कर्मबंधरूप लेप से रहित होता है।

अंतरंग छेद का कारण होने से परिग्रह का सर्वथा त्याग करना चाहिए

हवदि व ण हवदि बंधो, मदे हि जीवेऽध कायचेट्ठम्मि।
बंधो धुवमुवधीदो, इदि समणा छंडिया सव्वं।।19।।

गमन रूप शरीर की चेष्टा में जीव के मरने पर कर्म का बंध होता भी है और नहीं भी होता है, परंतु परिग्रह से कर्मबंध निश्चित होता है इसलिए मुनि सब प्रकार के परिग्रह का त्याग करते हैं।

यदि अंतरंग में प्रमाद परिणति है तो बाह्य में जीववध कर्मबंध का कारण होता है अन्यथा नहीं। इसलिए कहा है कि शरीर की चेष्टा में जो त्रस स्थावर जीवों का विघात होता है उससे कर्मबंध होता भी है और नहीं भी होता है। परंतु परिग्रह अंतरंग के मूर्च्छा परिणाम के बिना नहीं होता अतः उसके रहते हुए कर्मबंध जारी ही रहता है। यह विचार कर मुनि सब प्रकार के परिग्रह का त्याग कर चुकते हैं। यहाँ तक कि वस्त्र तथा भोजन पात्र वगैरह कुछ भी अपने पास नहीं रखते हैं।

मुनि का जो बाह्य परिग्रह त्याग है, वह अंतरंग लालसा से रहित होता है

ण हि णिरवेक्खो चाओ, ण हवदि भिक्खुस्स आसयविसुद्धी।
अविसुद्धस्स च चित्ते, कहं णु कम्मक्खओ विहिओ।।20।।

मुनि का त्याग यदि निरपेक्ष नहीं है अंतरंग की लालसा से रहित नहीं है तो उसके आशय उपयोग की विशुद्धि नहीं हो सकती और जिसके आशय में विशुद्धता नहीं है उसके कर्मों का क्षय कैसे हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता।

जिस प्रकार जब तक धान का छिलका दूर नहीं हो जाता तब तक उसके भीतर रहने वाले चावल की लालिमा दूर नहीं की जा सकती इसी प्रकार जब तक बाह्य परिग्रह का त्याग नहीं हो जाता तब तक अंतरंग में निर्मलता नहीं आ सकती और जब तक अंतरंग में निर्मलता नहीं आ जाती तब तक कर्मों का क्षय किस प्रकार हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता। अभिप्राय यह है कि कर्म क्षय के लिए अंतरंग की विशुद्धि आवश्यक है और अंतरंग की विशुद्धि के लिये बाह्य परिग्रह का त्याग आवश्यक है। जहाँ बाह्य परिग्रह के त्याग का उपदेश है वहाँ अंतरंग की लालसा का त्याग भी स्वतःसिद्ध है, क्योंकि उसके बिना केवल बाह्य त्याग से आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता यह निश्चित है।

अंतरंग संयम का घात परिग्रह से होता है

किध तम्मि णत्थि मूच्छा, आरंभो असंजमो तस्स।
तथ परदव्वम्मि रदो, कधमप्पाणं पसाधयदि।।21

उस परिग्रह की आकांक्षा रखने वाले पुरुष में मूर्च्छा ममता परिणाम, आरंभ तथा संयम का विघात किस प्रकार नहीं हो ? अर्थात् सब प्रकार से हो। तथा जो साधु परद्रव्यमें रत रहता है वह आत्मा का प्रसाधन कैसे कर सकता है-आत्मा को उज्ज्वल कैसे बना सकता है ?

यदि कोई ऐसा कहे कि हम बाह्य परिग्रह रखते हुए भी उसमें मूर्च्छा परिणाम नहीं करते हैं इसलिए हमारी उससे कोई हानि नहीं होती है। इसके उत्तर में श्री कुंदकुंद स्वामी कहते हैं कि जिसके पास परिग्रह है उसकी उस परिग्रह में मूर्च्छा न हो, तज्जन्य आरंभ न हो और उन दोनों के निमित्त से उसके संयम में कोई बाधा न हो यह संभव नहीं है। जहाँ परिग्रह होगा वहाँ मूर्च्छा, आरंभ और असंयम नियम से रहते हैं। इसके सिवाय जो शुद्ध आत्मा द्रव्य को छोड़कर परद्रव्य में रत रहता है वह

अपनी आत्मा का प्रसाधन नहीं कर पाता,क्योंकि उसके लिए उपयोग का तन्मयैक भाव आवश्यक है और वह तब तक संभव नहीं होता जब तक परिग्रह में आसक्ति बनी रहती है। इसलिए अंतरंग संयम का घातक समझकर साधु को परिग्रह दूर से ही छोड़ देना चाहिए।

परमोपेक्षारूप संयम धारण करने की शक्ति न होने पर आहार तथा संयम, शौच और ज्ञान के उपकरण मुनि ग्रहण कर सकते हैं।

छदो जेण ण विज्जदि, गहणविसग्गेसुसेवमाणस्स।
समणो तेणिह वट्टदु, कालं खेत्तं वियाणत्ता।।22।।

ग्रहण करते तथा छोड़ते समय धारण करने वाले मुनि के जिस परिग्रह से संयम का घात न हो, मुनि, काल तथा क्षेत्र का विचार कर उस परिग्रह से इस लोक में प्रवृत्ति कर सकता है।

यद्यपि जहाँ समस्त परिग्रह का त्याग होता है ऐसा परमोपेक्षारूप संयम ही आत्मा का धर्म है। यही उत्सर्गमार्ग हैं, परंतु अब क्षेत्र और काल के दोष से मनुष्य हीन शक्ति के धारक होने लगे हैं अतः परमोपेक्षारूप संयम के धारक मुनि अत्यल्प रह गये हैं। हीन शक्ति के धारक मुनियों को शरीर की रक्षा के लिए आहार ग्रहण करना पड़ता है, विहारादि के समय शारीरिक शुद्धि के लिए कमंडलू रखना पड़ता है, उठते-बैठते समय जीवों का विघात बचाने के लिए मयूरपिच्छी रखनी पड़ती है तथा उपयोग की स्थिरता और ज्ञान की वृद्धि के लिए शास्त्र रखना होता है। यद्यपि ये परिग्रह हैं और परमोपेक्षारूप संयम के धारक मुनि के इनका अभाव होता है, परंतु अल्प शक्ति के धारक मुनियों का इनके बिना निर्वाह नहीं हो सकता इसलिए कुंदकुंद स्वामी अपवाद मार्ग के रूप में इनके ग्रहण करने की आज्ञा प्रदान करते हैं। इनके ग्रहण करते समय मुनि को इस बात का विचार अवश्य करना चाहिए कि हमारे द्वारा स्वीकृत उपकरणों में कोई उपकरण संयम का विघात करने वाला तो नहीं है। यदि हो तो उसका परित्याग करना चाहिए।

अपवादमार्गी मुनि के द्वारा ग्रहण करने योग्य परिग्रह का स्पष्ट वर्णन

अप्पडिकुट्ठं उवधि, अपत्थजिणज्जं असंजदजणेहिं।
मुच्छादिजणणरहिदं, गेण्हदुसमणो जदि वियप्पं।।23।।

अपवाद मार्गी उस परिग्रह को ग्रहण करे जो कि कर्मबंध का साधक न होने से

अप्रतिक्रुष्ट हो अनिंदित हो, असंयमी मनुष्य जिसे पाने की इच्छा न करते हों, ममत्व आदि की उत्पत्ति से रहित हो और थोड़ा हो।

उत्सर्ग मार्ग ही वस्तुधर्म है अपवाद मार्ग नहीं

किं किंचण त्ति तक्कं, अपुणब्भवकामिणोध देहेवि।
संगति जिणवरिंदा, अप्पडिकम्मत्तिमुद्दिट्ठा।।24।।

जब मोक्ष के अभिलाषी मुनि के, शरीर में यह परिग्रह है, ऐसा जानकर श्री जिनेंद्र देव ने अप्रतिकर्मत्व अर्थात् ममत्व भाव सहित शरीर की क्रिया के त्याग का उपदेश दिया है तब मुनि के क्या अन्य कुछ भी परिग्रह है ऐसा विचार होता है।

तब श्री जिनेन्द्र देव ने शरीर को भी परिग्रह बतलाकर उसमें ममतामयी क्रियाओं के त्याग का उपदेश दिया है तब अन्य परिग्रह मुनि कैसे रख सकते हैं ?

यथार्थ में उपकरण कौन है ?

उवयरणं जिणमग्गे, लिंगं जहजादरूवमिदि भणिदं।
गुरुवयणं पि य विणओ, सुत्तज्झयणं च पण्णत्तं।।25।।

जिन मार्ग में यथार्थजातरूप-निर्ग्रंथ मुद्रा, गुरुओं के वचन, उनकी विनय और शास्त्रों का अध्ययन ये उपकरण कहे गये हैं।

जिनके द्वारा परम वीतरागरूप शुद्ध आत्मदशा की प्राप्ति में सहयोग प्राप्त हो उन्हें उपकरण कहते हैं। ऐसे उपकरण जिनशासन में निम्नलिखित 4 माने गये हैं। 1. सद्योजात बालक के समान निर्विकार दिगंबर मुद्रा, 2. पूज्य गुरुओं के वचनानुसार प्रवृत्ति करना, 3. गुण तथा गुणाधिक मुनियों की विनय करना और 4. शास्त्र अध्ययन करना। यथार्थ में आत्मा की शुद्ध दशाकी प्राप्ति में इन्हीं कारणों से साक्षात् सहयोग प्राप्त होता है इसलिए ये ही वास्तविक उपकरण हैं। परंतु ये चारों ही सहजानंदरूप शुद्धात्मद्रव्य से बहिर्भूत शरीर रूप पुद्गल द्रव्य के आश्रित हैं अतः परिग्रह हैं और त्याज्य हैं।

मुनि के शरीर मात्र परिग्रह होता है। अब आगे उसके पालन की विधि का उपदेश

इह लोगणिरावेक्खो, 1अप्पडिबद्धो परम्मि लोयम्मि।
जुत्ताहारविहारो, रहिदकसाओ हवे समणो।।26।।

इस लोक से निरपेक्ष और परलोक की आकांक्षा से रहित साधु कषाय रहित होता हुआ योग्य आहार विहार करने वाला हो।

मुनि इस लोकसंबंधी मनुष्य पर्याय से निरपेक्ष रहता है और परलोक में प्राप्त होने वाले देवादि पर्याय संबंधी आकांक्षा नहीं करता है इसलिए इष्टानिष्ट सामग्री के संयोग से होने वाले कषाय भाव पर विजय प्राप्त करता हुआ योग्य आहार ग्रहण करता है तथा ईर्यासमितिपूर्वक आवश्यक विहार भी करता है।।26।।

योग्य आहारविहार करने वाला साधु आहारविहार से रहित होता है

जस्स अणेसणमप्पा, तंपि तओ[3] तप्पडिच्छगा समणा।

अण्णं भिक्खमणेसणमध[4] ते समणा अणाहारा।।27।।

मुनि की आत्मा परद्रव्य का ग्रहण करने से निराहार स्वभाव वाली है, वही उनका अंतरंग तप है। मुनि निरंतर उसी अंतरंग तप की इच्छा करते हैं और एषणा के दोषों रहित जो भिक्षावृत्ति करते हैं उसे सदा अन्य अर्थात् भिन्न समझते हैं, इसलिए वे आहार ग्रहण करते हुए भी निराहार हैं ऐसा समझना चाहिए।

इसी प्रकार विकार रहित स्वभाव होने के कारण विहार करते हुए भी विहार रहित होते हैं ऐसा जानना चाहिए।

मुनि के मुक्ताहारपन कैसे होता है

केवलदेहो समणो, देहे ण ममेत्तिरहिदपरम्मो।

आउत्तो तं तवसा, अणिगूहं अप्पणो सत्तिं।।28।।

श्रमण केवल शरीर रूप परिग्रह युक्त होता है, शरीर में भी 'यह मेरा नहीं है' ऐसा विचार कर सजावट रहित होता है, और अपनी शक्ति को न छुपाकर उसे तप से युक्त करता है अर्थात् तप में लगाता है।

उत्सर्गमार्ग और अपवाद मार्ग के विरोध से चारित्र में स्थिरता नहीं आ सकती है

आहारे व विहारे, देसं कालं समं खमं उवधिं।

जाणित्ता ते समणो, वट्टदि जदि अप्पलेवी सो।।31

मुनि, देश काल श्रम और शरीर रूप परिग्रह को अच्छी तरह जानकर आहार तथा विहार में प्रवृत्ति करता है। यद्यपि ऐसा करने से अल्प कर्मबंध होता है तो भी वह आहारादि में उक्त प्रकार से प्रवृत्ति करता है।

एकाग्रतारूप मोक्ष मार्ग का कथन करते हैं -

एयग्गगदो समणो, एयग्गं णिच्छिदस्स अत्थेसु।
णिच्छित्ती आगमदो, आगमचेट्ठा तदो जेट्ठा।।32।।

श्रमण वही है जो एकाग्रता को प्राप्त है, एकाग्रता उसी के होती है जो जीवाजीवादि पदार्थों के विषय में निश्चित है अर्थात् संशय विपर्ययादि रहित सम्यग्ज्ञान का धारक है और पदार्थों का निश्चय आगम से होता है इसलिए आगम के विषयों में चेष्टा करना। आगम का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उद्योग करना श्रेष्ठ है।

आगम से हीन मुनि कर्मों का क्षय नहीं कर सकता -

आगमहीणो समणो, णेवप्पाणं परं वियाणादि।
अविजाणंतो अत्थे, खवेदि कम्माणि किध भिक्खू।।33।।

आगम से हीन मुनि न आत्मा को जानता है और न आत्मा से भिन्न शरीरादि पर पदार्थों को। स्व-पर पदार्थों को नहीं जानने वाला भिक्षु कर्मों का क्षय कैसे कर सकता है ?

मोक्षमार्ग में गमन करने वाले साधु के आगम ही चक्षु है -

आगमचक्खू साहू, इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि।
देवा य ओहिचक्खू, सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू।।34।।

मुनि आगमरूपी नेत्रों के धारक है, संसार के समस्त प्राणी इंद्रियरूपी चक्षुओं से सहित हैं, देव अवधि ज्ञान रूपी नेत्र से युक्त हैं और अष्टकर्मरहित सिद्ध भगवान् सब ओर से चक्षु वाले हैं अर्थात् केवलज्ञान के द्वारा समस्त पदार्थों को युगपत् जानने वाले हैं।

आगमरूपी चक्षु के द्वारा ही सब पदार्थ जाने जाते हैं -

सव्वे आगमसिद्धा, अत्था गुणपज्जएहिं चित्तेहिं।
जाणंति आगमेण हि पछित्ता तेवि ते समणा।।35।।

विविध गुण पर्यायों से सहित जीवाजीवादि समस्त पदार्थ आगम से सिद्ध हैं। निश्चय से उन पदार्थों को वे महामुनि आगम के द्वारा ही जानते हैं।

जिसे आगमज्ञान नहीं है वह मुनि ही नहीं है

आगमपुव्वा दिट्ठी, ण भवदि जस्सेह संजमो तस्स।
णत्थित्ति भणइ सुत्तं, असंजदो हवदि किध समणो।। 36।।

इस लोक में जिसके आगमज्ञानपूर्वक सम्यग्दर्शन नहीं होता है उसके संयम नहीं होता है ऐसा सिद्धांत कहते हैं। फिर जिसके संयम नहीं है वह मुनि कैसे हो सकता है ?

जिस पुरुष के प्रथम ही आगम को जानकर पदार्थों का श्रद्धान न हुआ उस पुरुष के संयम भाव भी नहीं होता है यह निश्चय है और जिसके संयम नहीं है वह मुनि कैसे हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता है। मुनि बनने के लिए आगमज्ञान, सम्यग्दर्शन और तीनों संयम की प्राप्ति आवश्यक है।

जब तक आगमज्ञान, तत्त्वार्थ श्रद्धान और संयम तीनों की एकता नहीं होती तब तक मोक्षमार्ग प्रकट नहीं होता

ण हि आगमेण सिज्झदि, सद्दहणं जदि ण अत्थि अत्थेसु।
सद्दहमाणो अत्थे, असंजदो वा ण णिव्वादि।।37।।

यदि जीवाजीवादि पदार्थों में श्रद्धान नहीं तो मात्र आगम के जान लेने से ही जीव सिद्ध नहीं होता है। अथवा पदार्थों का श्रद्धान करता हुआ भी यदि असयंत हो तो भी निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकता है।

सिद्ध होने के लिए आगमज्ञान, पदार्थश्रद्धान और संयम तीनों का युगपत् एक समय प्राप्त होना ही समर्थ कारण है।

आत्मज्ञानी जीव की महत्ता

जं अण्णाणी कम्मं, खवेइ भवसयहस्सकोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ उस्सासमेत्तेण।।38।।

अज्ञानी जीव, जिस कर्म को लाखों-करोड़ों पर्यायों द्वारा क्षपित करता है, तीन गुप्तियों से गुप्त आत्मज्ञानी जीव उस कर्म को उच्छ्वासमात्र में क्षपित कर देता है।

ज्ञानकी और खासकर आत्मज्ञान की बड़ी महिमा है।

आत्मज्ञानशून्य पुरुष के आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान और संयम भाव की एकता भी कार्यकारी नहीं

परमाणुपमाणं वा, मुच्छा देहादियेसु जस्स पुणो।
विज्जदि जदि सो सिद्धिं, ण लहदि सव्वागमधरोवि।।39।।

जिसके शरीरादि पर पदार्थों में परमाणु प्रमाण भी ममता भाव विद्यमान है वह

समस्त आगम का धारक होकर भी सिद्धि को प्राप्त नहीं होता है।

जो शुद्धात्म द्रव्य से अतिरिक्त शरीरादि पर पदार्थों में थोड़ी भी मूर्च्छा रखता है उन्हें अपना मानता है वह समस्त आगम का जानने वाला होकर भी आत्मज्ञान से शून्य है और जो आत्मज्ञान से शून्य है वह मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता है यह निश्चय है।

कैसा मुनि संयत कहलाता है

पंचसमिदो तिगुत्तो, पचेंदियसंवुडो जिदकसाओ।

दंसणणाणसमग्गा, समणो सो संजदो भणिदो।।40।।

जो ईर्यादि पाँच समितियों से सहित है, कायगुप्ति वचन गुप्ति मनोगुप्ति इन तीना गुप्तियों से युक्त है, स्पर्शनादि पाँच इंद्रियों को रोकने वाला है, क्रोधादि कषायों को जीतने वाला है और सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान से पूर्ण है संपन्न है ऐसा साधु ही संयत कहा गया है।

श्रमण अर्थात् साधु का लक्षण

समसत्तुबंधुवग्गो, समसुहदुक्खो पसंसणिंदसमो।

समलोट्ठकंचरणो पुण,जीविदमरणे समो समणो।।41।।

जिसे शत्रु और मित्रों का समूह एक समान हो, सुख और दुःख एक समान हो, प्रशंसा और निंदा एक समान हों, पत्थर के ढेले और सुवर्ण एक समान हों तथा जो जीवन और मरण में समभाव वाला हो वह श्रमण अर्थात् साधु है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में एक साथ प्रवृत्ति करने वाला मुनि ही एकाग्रता को प्राप्त होता है।

दंसणणाणचरित्तेसु, तीसु जुगवं समुट्ठिदो जो दु।

एयग्गदोत्ति मदो, सामण्णं तस्स ˙परिपुण्णं।।42।।

जो साधु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों में एक साथ उद्यत रहता है वह एकाग्रमन है तथा उसी का मुनिपद पूर्णता को प्राप्त होता है ऐसा माना गया है।

एकाग्रता का अभाव मोक्षमार्ग नहीं है

मुज्झदि वा रज्जदि वा, दुस्सदि वा दव्वमण्णमासेज्ज।

जदि समणो अण्णाणी, बज्झदि कम्मेहिं विविहेहिं।।43।।

यदि साधु अन्य द्रव्य को पाकर मोह करता है अथवा राग करता है अथवा द्वेष करता है तो वह अज्ञानी है तथा विविध कर्मों से बद्ध होता है।

शुद्धात्मद्रव्य को छोड़कर पर पदार्थ में आत्मबुद्धि करना तथा इष्ट-अनिष्ट वस्तु में रागद्वेष करना मोहोदय के कार्य हैं। जब तक जीव के मोह का उदय रहता है तब तक वह अज्ञानी रहता है और अनेक प्रकार का कर्मबंध उसके जारी रहता है।

एकाग्रता ही मोक्ष का मार्ग है

अत्थेसु जो ण मुज्झदि, ण हि रज्जदि णेव दोसमुपयादि।
समणो जदि सो णियदं, खवेदि कम्माणि विविधाणि।।44।।

जो मुनि बाह्य पदार्थों में न मोह करता है, न राग करता है और न द्वेष करता है वह निश्चित ही अनेक कर्मों का क्षय करता है।

समणा सुद्धुवजुत्ता, सुहोवजुत्ता य होंति समयम्मि।
तेसुवि सुद्धवउत्ता, अणासवा सासवा सेसा।।45।।

मुनि परमागम में शुद्धोपयोगी और शुभोपयोगी के भेद से दो प्रकार के कहे गये हैं। उनमें से शुद्धोपयोगी आस्रव रहित और शेष शुभोपयोगी आस्रव से सहित है।

आत्म-अनुशासन और मानसिक शांति

''लोग अपने हालात को तो बेहतर बनाना चाहते हैं, लेकिन खुद को बेहतर नहीं बनाना चाहते; इसलिए वे हमेशा बंधन में रहेंगे। जो व्यक्ति आत्म-त्याग के लिए तत्पर रहता है, वह अपनी मनचाही वस्तु को पाने में कभी असफल नहीं हो सकता। वह भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही चीज़ों के बारे में सत्य है। जिस मनुष्य का उद्देश्य दौलत हासिल करना है,उसे भी अपना लक्ष्य प्राप्त करने से पहले बड़े व्यक्तिगत त्याग करने के लिए तैयार रहना चाहिए। सशक्त और संतुलित जीवन हासिल करने के लिए तो उसे और ज़्यादा त्याग करने होंगे।'

यदि आप अपने सभी आंतरिक संसाधनों को विकसित करना चाहते हैं और अपनी सच्ची संभावना को साकार करना चाहते हैं, तो इसके लिए आपको आत्म-अनुशासन के ऊँचे स्तर की ज़रूरत होती है। युगों-युगों से सभी धर्मों और दर्शनों में सर्वोच्च मानवीय हित या विचार मानसिक शांति पाना रहा है। मानसिक शांति पाने की क्षमता ही आपकी सफलता का सच्चा पैमाना है और यही आपकी खुशी को सबसे ज़्यादा तय करती है।

आध्यात्मिक विकास करने और पूरी तरह उपयोगी व्यक्ति बनने के लिए आपको नियमित रूप से अपने विचारों, भावनाओं और कार्यों में आत्म-अनुशासन व आत्म-नियंत्रण का इस्तेमाल करना होगा। आध्यात्मिक विकास, आंतरिक शांति और खुशी के अनुभव के लिए आत्म-विजय व आत्म-नियंत्रण की आवश्यकता होती है।

बाहरी बनाम आंतरिक सफलता

''बाहरी संसार'' में सफल होने के लिए आपको ख़ुद को इस बात के लिए अनुशासित करना ही होगा कि आप एकाग्रचित्त बने, अपने पेशे में कड़ी मेहनत करें, अपने लक्ष्यों की दिशा में सतत कार्य करते रहें और अपने जीवन में ऊपर की ओर बढ़ते समय बेहतर और ज़्यादा सक्षम बनें।

बहरहाल, ''आंतरिक संसार' में सफल होने के लिए लगभग विपरीत योग्यताओं की आवश्यकता होती है। आंतरिक शांति प्राप्त करने के लिए आपको खुद को अनुशासित करना होगा कि आप हर उस चीज़ को छोड़ दें, जो आपकी आंतरिक शांति और संतुष्टि के एहसास में बाधा डाल सकती हो।

जैन बौद्ध दर्शन के अनुसार मानवीय कष्ट और दुःख का मूल कारण ''आसक्ति'' है। लोग विचारों, रायों और भौतिक चीज़ों के प्रति आसक्त हो जाते हैं और उन्हें छोड़ना ही नहीं चाहते। कई बार लोग इन बाहरी बातों में इतने उलझ जाते हैं कि इससे उनके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर भी प्रभाव पड़ता है- यहाँ तक कि उनकी रातों की नींद भी उड़ जाती है।

जब आप विरक्ति का अभ्यास करते हैं, ख़ुद को भावनात्मक रूप से चीज़ों या परिणामों से अलग कर लेते हैं, तो नकारात्मक भावनाएँ भी उसी तरह थम जाएँगी, जिस तरह प्लग से अलग करने पर बल्ब की रोशनी बंद हो जाती है।

सही होने की आवश्यकता

अधिकांश लोग दिल की गहराई से यह चाहते हैं कि उनकी बात को सही माना जाए। बहरहाल, जब आप यह परवाह करना छोड़ देते हैं कि आपकी बात को सही माना जाता है या ग़लत, तो सही होने की इस आवश्यकता से जुड़ी सारी भावनाएँ ग़ायब हो जाती हैं। डॉ जेराल्ड जैम्पॉल्स्की ने एक बहुत अच्छा सवाल पूछा थाः ''क्या आप सही साबित होना चाहते हैं या फिर आप खुश रहना चाहते हैं ?''

कुछ लोग अपनी राजनीतिक या धार्मिक मान्यताओं को लेकर जोशीले होते हैं, जो उन्होंने किसी दूसरे से सीखी हैं। लेकिन जब आप इन विचारों को कुछ समय के लिए एक तरफ़ रख देते हैं, तो आपकी भावनाओं को उत्तेजित करने या आपके क्रोध को भड़काने की उनकी क्षमता ख़त्म हो जाती है।

मैं सभी राजनीतिक और धार्मिक विचारों व रायों वाले लोगों से मिलता-जुलता और मित्रता रखता हूं। अधिकांश प्रकरणों में हमारी पटरी अच्छी बैठती है, क्योंकि हम मत भिन्नता वाले मुद्दों को एक तरफ़ रख देते हैं। हम जागरूक और अनुशासित होकर ख़ुद को उन विचारों से विरक्त कर लेते हैं। इसके बजाय हम उन विषयों पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जिन पर हम एकमत हैं और जिनमें हमारी रुचियाँ समान हैं।

किसी को भी किसी चीज़ के लिए दोष न दें

दोषारोपण नकारात्मक भावनाओं का प्रमुख कारण और आंतरिक शांति का मूलभूत हत्यारा है। जैसा कि मैंने इस पुस्तक में पहले जिक्र किया था, किसी चीज के लिए या किसी तरीक़े से किसी व्यक्ति या वस्तु को दोष दिए बिना नकारात्मक भाव रखना संभव हीं नहीं है।

दोष देने के लिए एक या दोनों घटकों का मौजूद होना आवश्यक है। पहला है जुड़ाव। यह तब होता है, जब आप किसी चीज़ को व्यक्तिगत मान बैठते हैंः आप उससे जुड़ जाते हैं। जैसे ही आप यह महसूस करते हैं कि किसी ने कोई ऐसी नकारात्मक चीज़ की या कही है, जिससे आपके व्यक्तिगत हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, तो आप तुरंत नाराज़ हो जाते हैं और उस व्यक्ति को दोष देने लगते हैं।

मान लें, कोई व्यक्ति ऑफ़िस जाने की हड़बड़ी में है, पूरी तरह उलझा हुआ है और अभी-अभी अपने जीवनसाथी से लड़कर आया है। जब वह अचानक ट्रैफ़िक में आपको कट मारता है, तो आप तुरंत उस अजनबी को गाली देने लगते हैं। कारण यह है कि आपने उसके गाड़ी चलाने के व्यवहार को व्यक्तिगत मान लिया है।

लेकिन जब आप में ख़ुद को विरक्त करने का अनुशासन होता है और आप चीज़ों को व्यक्तिगत तौर पर लेना छोड़ देते हैं तो, उस व्यक्ति या घटना से जुड़ा नकारात्मक भावनात्मक आवेश लगभग तत्काल ही ख़त्म हो जाता है। मिसाल के तौर पर,यदि कोई ट्रैफिक़ में आपको कट मारता है, तो आप यह कहकर भावनात्मक दृष्टि

से ख़ुद को विरक्त कर लेते हैं, 'ओह, शायद उसे ऑफिस पहुँचने की जल्दी है। उसे शायद देर हो गई है।''

जिस पल आप ख़ुद से यह कहते हैं, उसी पल घटना से जुड़ी सारी नकारात्मकता ग़ायब हो जाती है और आप दोबारा शांत, आरामदेह तथा सकारात्मक हो जाते हैं।

अपना दुखड़ा छोड़ दें

दोष देने का दूसरा मूल कारण ख़ुद को सही साबित करना है। यह तब होता है जब आप खुद को (और दूसरों को) बताते हैं कि आपको इस स्थिति में क्रोधित या दुखी होने का अधिकार क्यों है।

कई लोग अपने कष्टों से प्रेम करने लगते हैं। उनकी अतीत की समस्याएँ ही उनके जीवन का केंद्र बिंदु बन जाती हैं। वे हर समय पुरानी बातों के बारे में ही सोचते रहते हैं। वे अतीत में चोट पहुँचाने वाले लोगों के साथ दिन-रात ग़ुस्से भरी बातचीत करते रहते हैं, जबकि अब वे लोग आस-पास कहीं भी मौजूद नहीं है।

जब भी कोई बातचीत शुरू होती है, तो वे किसी दुकानदार की तरह अपने कष्ट को हर किसी के सामने प्रदर्शित करने लगते हैं। फिर वे अपने जीवन की दुखद घटनाओं का बखान करने लगते हैं और बताते हैं कि उनके साथ कितना बुरा व्यवहार किया गया और सामने वाला कितना बुरा था, जो उसने इतना ख़राब व्यवहार किया।

बहरहाल, आपमें ख़ुद को इस क्षेत्र में अनुशासित करने की क्षमता है कि आप अपनी नकारात्मक भावनाओं को तर्कसंगत साबित नहीं करेंगे, पुरानी बातें नहीं दोहराएँगे कि सामने वाले ने क्या किया या क्या नहीं किया। जब आप शांति से यह स्वीकार कर लेते हैं कि ''चीजें'' जीवन में होती हैं, तो सामने वाले व्यक्ति या स्थिति से जुड़ी आपकी नकारात्मकता ख़त्म हो जाती है।

क्षमा करने का अभ्यास करें

क्षमा करने का अभ्यास आध्यात्मिक विकास में आत्म-अनुशासन का शिखर है। क्षमा का नियम कहता है कि ''आप उसी हद तक मानसिक और भावनात्मक दृष्टि से स्वस्थ हैं, जिस सीमा तक आप ख़ुद को चोट पहुँचाने वाले किसी व्यक्ति को पूरी तरह क्षमा कर देते हैं।

हर व्यक्ति ने- जिसमें आप शामिल हैं- अपने जीवन में दूसरों की विनाशकारी

आलेचना, नकारात्मक व्यवहार, निर्दयता, बदतमीज़ी, पक्षपात, धोखाधड़ी और बेईमानी का अनुभव किया है। ये घटनाएँ दुर्भाग्यपूर्ण हैं, लेकिन वे मानव जाति का सदस्य होने का अनिवार्य और अवश्यंभावी हिस्सा है, जिससे बचा नहीं जा सकता। व्यस्त समाज में रहने की समस्याओं और मुश्किलों से बचने का एकमात्र तरीक़ा शायद हिमालय की किसी गुफा में जाकर रहने लगना है।

किसी नकारात्मक अनुभव के बाद आपको केवल एक सवाल पूछने और उसका जवाब देने की जरूरत है, ''इस घटना से उबरने और जीवन में आगे बढ़ने में मुझे कितना समय लगेगा ?'' यह एक ऐसा निर्णय है, जिसे सिर्फ़ आप ही ले सकते हैं। यदि आप वाक़ई ख़ुश रहना चाहते हैं, तो यह आपके जीवन के सबसे महत्वपूर्ण निर्णयों में से एक होगा। यही नहीं, यह आपके मानसिक और आध्यात्मिक अनुशासन की सच्ची परीक्षा भी है।

भुलक्कड़पन का ग्राफ़

हर व्यक्ति में एक ''भुलक्कड़पन का ग्राफ'' होता है, जिसे अक्सर ''क्षमा का ग्राफ़'' भी कहा जाता है। यह ग्राफ़ बताता है कि आप कितनी जल्दी किसी नकारात्मक अनुभव को भूलते और क्षमा करते हैं। इससे यह भी तय होता है कि आप मानसिक और भावनात्मक दृष्टि से कितने स्वस्थ हैं।

एक आयताकार चतुर्भुज की कल्पना करें, जिससे बाई ओर शून्य से लेकर सौ तक का पैमाना हो। यह नकारात्मक भाव की गहनता का वह पैमाना है, जिसे आप किसी तरह की भावनात्मक चोट लगने पर अनुभव करते हैं। इस ग्राफ़ के नीचे आपके जीवन के महीने और साल लिखे हैं।

आपका क्षमा का ग्राफ़ सीधी रेखा में भी जा सकता है और यह तेज़ी से नीचे की तरफ़ भी आ सकता है। यदि आपका क्षमा का ग्राफ सीधी रेखा में है, तो इसका मतलब है कि आप काफ़ी समय तक नाराज़ रहते हैं। कई बार तो आप घटना के कई वर्ष या कई दशक बाद भी उतने ही नाराज बने रहते हैं।

ऐसे अनगिनत लोग हैं, जो अब भी किसी ऐसी चीज़ के बारे में नाराज़ हैं, जो उनके माता--पिता ने दशकों पहले उनसे कही थी या उनके साथ की थी। यहीं नहीं, वे मौक़ा मिलते ही आपको इसके बारे में बता भी देते हैं। वे आपको बड़े भावुक अंदाज़ में बताते है कि उनके बचपन में माता-पिता ने उनके साथ अमुक-अमुक बुरा

व्यवहार किया था, जिसके लिए उन्होंने उन्हें अब तक माफ़ नहीं किया है।

दुखी लोगों की चिकित्सा करने वाला हर मनोवैज्ञानिक और मनोचिकित्सक केवल इसी वजह से कमाई कर रहा है, क्योंकि उसके रोगियों का क्षमा का ग्राफ़ सीधी रेखा में है। मनोचिकित्सा में वे आम तौर पर सबसे ज़्यादा बातें यहीं बताते हैं कि अतीत में किसी ने उनके साथ क्या किया या क्या नहीं किया- और वह व्यक्ति उसके बारे में आज भी कितना दुखी है।

इससे उबरें और आगे बढ़ जाएँ

दूसरी ओर, सचमुच स्वस्थ लोगों का क्षमा का ग्राफ़ नीचे की तरफ़ जाता दिखता है। उनके जीवन में भी दूसरी जितनी ही मुश्किलें और समस्याएँ आती है, लेकिन उन्होंने ख़ुद को इस संकल्प के साथ अनुशासित कर लिया है कि वे जल्दी से उन्हें क्षमा करके भूल जाएँगे, ताकि वे अपने जीवन में आगे बढ़ सकें। वे अपनी समस्याओं को बोरे में भरकर अपनी पीठ पर लादे नहीं रखना चाहते। वे तो इसे छोड़ देते हैं और अपना ध्यान सुखद चीज़ों की तरफ़ मोड़ लेते हैं।

क्षमा का अनुशासन आध्यात्मिक साम्राज्य की कुंजी है। मानसिक शांति के उच्च स्तर पर पहुँचना तभी संभव है, जब दूसरों को खुलकर क्षमा करने का अनुशासन और आदत विकसित कर लें, चाहे उन्होंने आपको आहत करने के लिए कोई भी और कितनी ही बड़ी चीज़ की हो।

क्षमा स्वार्थपूर्ण कार्य है

कुछ लोग क्षमा की अवधारणा के बारे में दुविधाग्रस्त रहते हैं। वे सोचते हैं कि चोट पहुँचाने के लिए किसी को क्षमा करने का अर्थ उस तरह के व्यवहार को मान्यता या बढ़ावा देना है। सच्चाई इसके बिलकुल विपरीत है। क्षमा विशुद्ध रूप से स्वार्थपूर्ण कार्य हैं। क्षमा करने का सामने वाले व्यक्ति से कोई लेना-देना नहीं है। आप तो दूसरों को केवल इसलिए क्षमा करते हैं, ताकि आप भावनात्मक रूप से स्वतंत्र रह सकें और आपको यह बोझ अपनी पीठ पर लादें न रखना पड़े।

आपके पास एक अद्भुत मस्तिष्क है। आप अविश्वसनीय रूप से बुद्धिमान और ज्ञानी हैं। आप अपने दिमाग़ का इस्तेमाल ख़ुश और आनंदित रहने के लिए कर सकते हैं या फिर आप इसका इस्तेमाल अपने ही ख़िलाफ कर सकते है। सर्वोच्च स्तर पर अपने मस्तिष्क का उपयोग करके दूसरों को क्षमा करने के कारण खोजें।

किसी पुरानी घटना की खाल उधेड़ने, बहाने खोजने, औचित्य साबित करने और किसी चीज़ को व्यक्तिगत तौर पर लेने के कारण खोजने के बजाय अपनी बुद्धि का इस्तेमाल ज़िम्मेदारी स्वीकार करने के कारण खोजने के लिए करें और नकारात्मक स्थिति को ख़त्म हो जाने दें।

ज़िम्मेदारी स्वीकार करें और क्षमा करें

जिस पल आप किसी चीज़ की ज़िम्मेदारी लेते हैं और चोट पहुँचाने वाले लोगों को क्षमा कर देते हैं, उसी पल आप पूरी तरह से मुक्त हो जाते हैं। आपकी सारी नकरात्मक भावनाएँ ग़ायब हो जाती है। उनके स्थान पर आप आंतरिक शांति, प्रेम, ख़ुशी और आनंद का अनुभव करने लगते हैं।

आत्म-अनुशासन द्वारा क्षमा का निरंतर अभ्यास करने के पुस्कार असाधारण हैं। जब आत्म-नियंत्रण, आत्म-विजय और विरक्ति की अपनी अविश्वसनीय योग्ताओं का उपयोग करके दुखद स्थितियों से अलग हो जाते हैं, तो आपके पूरे जीवन की गुणवत्ता बेहतर और बेहतरीन हो जाती है।

1. क्षमा का परीक्षण करें: क्या आप सही साबित होना चाहते हैं या फिर आप ख़ुश रहना चाहते हैं ?
2. अपने अतीत के ऐसे लोगों को पहचाने, जिन्होंने आपको किसी तरह की चोट पहुँचाई है। आज ही उन लोगों को माफ़ करने का निर्णय लें और नकारात्मक भावनाओं को दिल से निकाल फैंके।
3. दोष या क्रोध की अपनी नकारात्मक भावनाओं को उचित ठहराने के कारण न खोजें। इसके बजाय अपनी बुद्धि का इस्तेमाल करके ज़िम्मेदारी स्वीकार करने के कारण खोजें।
4. मानसिक शांति को अपना सर्वोच्च लक्ष्य बनाएं और फिर विचलित करने वाले प्रत्येक विचार या भावना से उबरने का संकल्प करें।
5. आज ही से हर सुबह कोई आध्यात्मिक और प्रेरक पुस्तक पढ़ना शुरू करें। यह आदत आपकी जिंदगी बदल देगी।
6. आगे से चीज़ों को व्यक्तिगत तौर पर न लें। ख़ुद से पूछें कि आज से पाँच साल बाद इसका कितना महत्व होगा।

7. धन और भौतिक चीज़ों से विरक्ति की जैन बौद्ध तकनीक का अभ्यास करें और किसी चीज़ को लेकर विचलित या चिंतित न हो।
(आत्मानुशासन की शक्ति ब्रायन ट्रेसी)

माँ जिनवाणी से जाना स्व अनन्त विश्वरूप

(चाल : मा मुझे अपने आँचल में छिपा ले.... – आचार्य कनकनन्दी

मा/(जिनवाणी) मुझे बताओ मेरा स्वरूप...मेरा आत्मा स्वरूप..
.जिसे प्राप्त करना है मेरा लक्ष्य....(ध्रुव)....
जिनवाणी सुना रही है मेरा स्वरूप...तू है निश्चय से चैतन्यरूप....
तू है शुद्ध बुद्ध आनन्दरूप...
अष्टकर्म नष्ट से पाओ स्वरूप...तुझे मेरा आशीष...जिसे...(1)...

तुझमें अनन्तानन्त आत्मिक शक्ति...आत्मध्यान से जगाओ तुम स्व शक्ति...
इस हेतु नाश करो रागद्वेष मोह...
संकल्प विकल्प संक्लेश करो क्षय...ख्याति पूजा लाभ से दूर...जिसे...(2)...

उत्तम है तू स्वात्म चिन्तन करो...अधमाधमा पर चिन्ता को छोड़ो...
एकत्व-अन्यत्व भावना करो...
''अहमेक्को खलु सुद्धो'' भावना करो...मैत्री प्रमोद करुणा माध्यस्थ धरो...
जिसे ...(3)...

तू है अनादि अनन्त शाश्वत तत्त्व...स्वयंभू स्वयंपूर्ण तथा स्वतन्त्र
ज्ञानानन्दमय टंकोत्कीर्ण...
स्व स्वरूप में रहो अविचल नित्य...सर्व बन्धनों से बनोगे मुक्त जिसे...(4)

अनन्त विश्व रूपा होगा प्रगट, अनन्त ज्ञान दर्शनसुखवीर्यः
तब बनोगे शुद्ध बुद्ध आनन्द...
यह है तेरा ईश्वरत्व स्वरूप...अजर अमर अमृत स्वरूप...जिसे...(5)...

यह है विश्व का महान् रहस्य...भौतिक वैज्ञानिक दार्शनिक अज्ञात..
इसे पाने हेतु चक्री भी बने सन्त...
सर्वोच्च उपलबि आत्मोपलब्धि...इसके सम न विश्व की सम्पत्ति...जिसे...(6)

जिनवाणी मा से सुनकर स्वरूप...आत्मविश्वा से हुआ ज्ञान उत्कृष्ट स्व स्वरूप प्राप्ति हेतु ही पुरुषार्थ...
जिनवाणी माता का हुआ कृतज्ञ...मैं 'कनक'नहीं हूँ मै हूँ अमृत तत्त्व... (7)
ग.पु. कॉलोनी , दि. 15.6.2019, रात्रि 9.41

संदर्भ

ननु क्रमाक्रमप्रवृत्तानंतधर्ममयस्यात्मनः कथं ज्ञानमात्रत्वम्? परस्परव्यतिरिक्तानंतधर्मसमुदायपरिणतैकज्ञप्तिमात्रभावरूपेण स्वयमेव भवनात्। अत एवास्य ज्ञान मात्रैक्भावांतःपतिन्योऽनंताःशक्तयः उत्प्लवंते। आत्मद्रव्यहेतुभूतचैतन्यमात्रभावधारण लक्षणा जीवत्वशक्तिः 1. अजडत्वात्मिका चितिशक्तिः 2. अनाकारोपयोगमयी दृशि शक्तिः3. साकारोपयोगमयी ज्ञानशक्तिः। 4 अनाकुलत्वलक्षणा सुखशक्तिः5।

(प्रश्न -) जिसमें क्रम और अक्रम से प्रवर्तमान अनन्त धर्म हैं ऐसे आत्मा के ज्ञानमात्रता किस प्रकार है ?

(उत्तर :-) परस्पर भिन्न ऐसे अनन्त धर्मों के समुदाय परिणत एक ज्ञप्तिमात्र भावरूप से स्वयं ही है, इसलिये (अर्थात् परस्पर भिन्न ऐसे अनन्त धर्मों के समुदाय रूप से परिणमित जो एक जानन क्रिया है उसे जानना क्रियामात्र भावरूप से स्वयं ही है इसलिये) आत्मा के ज्ञानमात्रता है। इसीलिये उसके ज्ञानमात्र एक भाव की अन्तःपातिनी (ज्ञानमात्रं एक भाव के भीतर आ जाने वाली) अनंत शक्तियां उछालती हैं। (आत्मा के जितने धर्म हैं उन सबको, लक्षण भेद से होने पर भी, प्रदेशभेद नहीं है; आत्मा के परिणाम में सभी धर्मों का परिणमन रहता है। इसलिये आत्मा के एक ज्ञानमात्र भाव के भीतर अनन्त शक्तियां रहती है। इसलिये ज्ञानमात्र भाव में ज्ञानमात्र भावस्वरूप आत्मा में अनन्त शक्तियां उछलती हैं।) उनमें से कितनी ही शक्तियां निम्न प्रकार है-

आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भाव का धारण जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप ऐसी जीवत्वशक्ति (आत्म द्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भावरूपी भावप्राण का धारण करना जिसका लक्षण है ऐसी जीवात्म नामक शक्ति ज्ञानमात्र भाव में आत्मा में उछलती है)।। अजड़त्वस्वरूप चितिशक्ति (अजड़त्व अर्थात् चेतनत्व जिसका स्वरूप है ऐसी चितिशक्ति)।2। अनाकार उपयोगमयी दृशिशक्ति। (जिसमें

ज्ञेरूरूप आकार अर्थात् विशेष नहीं है दर्शनोपयोगीमयी-सत्तामात्र पदार्थ में उपयुक्त होने रूप दृशिशक्ति अर्थात् दर्शनक्रियारूप शक्ति।) 3. साकार उपयोगमयी ज्ञानशक्ति। (जो ज्ञेय पदार्थों के विशेषरूप आकारों में उपयोगी होती है ऐसी ज्ञानोपयोगमयी ज्ञानशक्ति।) 4 अनाकुलता जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है ऐसी सुखशक्ति ।5

स्वरूपनिर्वर्तनसामथर्यरूपा वीर्यशक्तिः6 ।

अखंडितप्रतापस्वातंत्र्यशालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्तिः7।

सर्वभावव्यापकैकभावरूपाः विभुत्वशक्तिः8। विश्वविश्वसामान्यभाव परिणतात्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्वशक्तिः9।

विश्वविश्वविशेषभावपरिणतात्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्तिः 10

नीरूपात्मप्रदेशप्रकाशमानविशदस्वसंवित्तिमयी प्रकाशक्तिः 12

क्षेत्रकालानवच्छिन्नचिद्विलासात्मिका असंकुचितविकाशत्वशक्तिः13

अन्याक्रियमाणान्याकारकैकद्रव्यात्मिकाअकार्यकारणत्वशक्तिः14

परात्मनिमित्तकज्ञेयज्ञानकारग्रहणग्राहणस्वभावरूपा परिणम्यपरिणामकत्वशक्तिः15 अन्यूनातिरिक्तस्वरूपनियतत्वरूपा

(आत्मस्वरूप की) रचना की सामर्थ्य रूप वीर्यशक्ति।6। जिस का प्रताप अखण्डित है अर्थात् किसी से खण्डित ही नहीं की जा सकती ऐसे स्वातंत्र्य से (स्वाधीनता से) शोभायमानपना जिसका लक्षण है ऐसी प्रभुत्वशक्ति 7। सर्व भावों में व्यापक ऐसे एक भावरूप विभुत्वशक्ति। (जैसे, ज्ञानरूपी एक भाव सर्व भावों में व्याप्त होता है।)। 8। समस्त विश्व के सामान्य भाव को देखने रूप से (अर्थात् सर्व पदार्थों के समूह रूप लोकालोक को सत्तामात्र ग्रहण करने रूप से) परिणामित ऐसे आत्मदर्शनमयी सर्वदशित्वशक्ति।9। समस्त विश्व के विशेष भावों को जानने रूप से परिणमित ऐसे आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्व शक्ति। 10। अमूर्तिक आत्म प्रदेशों में प्रकाशमान लोकालोक के आकारों से मेचक (अर्थात् अनेक आकाररूप) ऐसा उपयोग जिसका लक्षण है ऐसी स्वच्छत्वशक्ति। (जैसे दर्पण की स्वच्छत्वशक्ति से उसकी पर्याय में घटपटादि प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार आत्मा की स्वच्छत्वशक्ति से उसके उपयोग में लोकालोक के आकार प्रकाशित होते हैं।) ।।11स्वयं प्रकाशमान विशद(स्पष्ट) ऐसी स्वसंवेदनमयी(स्वानुभवमयी) प्रकाशशक्ति।12। क्षेत्र और काल से अमर्यादित ऐसी चिद्विलास स्वरूप (चैतन्य के विलासस्वरूप)असंकुचितविकाशत्वशक्ति।13। जो

अन्य से नहीं किया जाता और अन्य को नहीं करता ऐसे एक द्रव्य स्वरूप अकार्यकारणत्वशक्ति।(जो अन्य का कार्य नहीं है और अन्य का कारण नहीं है ऐसा जो एक द्रव्य उस-स्वरूप अकार्यकारणत्व शक्ति।)। 14 पर और स्व जिनके निमित्त है ऐसे ज्ञेयाकारों तथा ज्ञानाकारों को ग्रहण करने के और ग्रहण कराने के स्वभावरूप परिणाम्यपरिणामकत्व शक्ति। (-पर जिनके कारण हैं ऐसे ज्ञेयाकारों को ग्रहण करने के और स्व जिनका कारण है ऐसे ज्ञानाकारों को ग्रहण कराने के स्वभावरूप परिणम्यपरिणामकत्वशक्तिः। 15

त्यागोपादानशून्यत्वशक्तिः16 षट्स्थानपतितवृद्धिहानिपरिणतस्वरूप प्रतिष्ठत्वकारण विशिष्टगुणात्मिका अगुरुलघुत्वशक्तिः 17 क्रमांक्रमवृत्तवृत्तित्वलक्षणा उत्पादव्ययध्रुव त्वशक्ति :।8 द्रव्यस्वभावभूतध्रौव्यव्ययोतपादालिंगितसदृशविसदृशरूपैकास्तित्वमात्र मयी परिणामशक्तिः 19 कर्मबंधव्यपगमव्यंजितसहजस्पर्शादिशून्यात्मप्रदेशात्मिका अमूर्तत्वशक्तिः 20 सकलकर्मकृतज्ञाततृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामकरणो परमामिका अकर्तृत्वशक्तिः 21 सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्त परिणामानुभवोपरमात्मिका

कमबढ़ नहीं होता ऐसे स्वरूप में नियतत्त्वरूप(निश्चित्तया यथावत रहने रूप) त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति। 16। षट्स्थानपतित वृद्धि हानि रूप से परिणमित, स्वरूप प्रतिष्ठत्व का कारणरूप (वस्तु के स्वरूप में रहने के कारण रूप) ऐसा जो विशिष्ट (खास) गुण है उस स्वरूप अगुरुलघुत्व शक्ति। (इस षट्स्थानपतित वृद्धि हानि का स्वरूप 'गोम्मटसार' ग्रन्थ से जानना चाहिये। अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या रूप षट स्थानों में पतित-समाविष्ट वस्तुस्वभाव की वृद्धि हानि जिससे (जिस गुण से) होती है और जो (गुण) वस्तु को स्वरूप में स्थिर होने का कारण है ऐसा कोई गुण आत्मा में है; उसे अगुरुलघुत्वगुण कहा जाता है। ऐसी अगुरुलघुत्वशक्ति भी आत्मा में है।)। 17। क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है ऐसी उत्पादव्ययध्रुवत्वशक्ति। (क्रमवृत्तिरूप पर्याय उत्पादव्ययरूप है और अक्रमवृत्ति रूप गुण ध्रुवत्वरूप है।)। 18। द्रव्य के स्वभावभूत ध्रौव्य-व्यय-उत्पाद से आलिंगित (स्पर्शित), सदृश और विसदृश जिसका रूप है ऐसे एक अस्तित्त्वमात्रमयी परिणामशक्ति।19। कर्मबन्ध के अभाव से व्यक्त किये गये, सहज, स्पर्शादिशून्य

(स्पर्श, रस, गंध और वर्ण से रहित) ऐसे आत्मप्रदेशस्वरूप अमूर्तत्वशक्ति। 20। समस्त, कर्मों के द्वारा किये गये, ज्ञातृत्वमात्र भिन्न जो परिणाम उन परिणामों के कारण के उपमरस्वरूप (उन परिणामों को करने की निवृत्ति स्वरूप) अकर्तृत्वशक्ति। (जिस शक्ति से आत्मा ज्ञातृत्व के अतिरिक्त कर्मों से किये गये परिणामों का कर्ता नहीं होता, ऐसी अकर्त्तत्व नामक एक शक्ति आत्मा में है) । 21। समस्त कर्मों से किये गये, ज्ञातृत्व मात्र से भिन्न परिणामों के अनुभव की (भोक्तृत्वकी)

अभोक्तत्वशक्तिः 22। सकलकर्मोपरमप्रवृत्तात्मप्रदेशनैष्पंद्यारूपा निष्क्रियत्वशक्तिः23। आसंसारसंहरणविस्तरणलक्षितकिंचिदूनचरमशरीर परिमाणावस्थितलोकाकाश सम्मितात्मावयवत्वलक्षणा नियतप्रदेशत्वशक्तिः 24। सर्वशरीरेकस्वरूपात्मिका स्वधर्मव्यापक - त्वशक्तिः 25। स्वपरसमानासमानसमानासमानत्रिविधभावधारणात्मिकका साधारणासाधारणसाधारणासाधारणधर्मत्वशक्तिः 26। विलक्षणानंतस्वभावभावितैकभावलक्षणा अनंतधर्मत्वशक्तिः 27 तदतद्रूपमयत्वलक्षणा विरुद्धधर्मत्वशक्तिः28। तद्रूपभवनरूपा तत्त्वशक्तिः 29। अतद्रूपभवनरूपा अतत्त्वशक्तिः30। अनेकपर्यायव्यापकैक द्रव्यमयत्वरूपा एकत्वशक्तिः31। एकद्रव्यव्याप्यानेकपर्यायमयत्वरूपा अनेकत्वशक्तिः

उपरमवस्वरूप अभोक्तृत्वशक्ति। 22। समस्त कर्मो के उपरम से प्रवृत्त आत्मप्रदेशो की निस्पन्दतास्वरूप (अकम्पतास्वरूप) निष्क्रियत्वशक्ति। (जब समस्त कर्मों का अभाव हो जाता है तब प्रदेशों का कम्पन मिट जाता है इसलिये निष्क्रियत्व शक्ति भी आत्मा में है।)। 23। जो अनादि संसार से लेकर संकोचविस्तार से लक्षित है और जो चरम शरीर के परिणाम से कुछ न्यून परिमाण से अवस्थित होता है ऐसा लोकाकाश के माप जितना मापवाला आत्म-अवयवत्व जिसका लक्षण है ऐसी नियतप्रदेशत्वशक्ति। (आत्मा के लोक परिमाण असंख्य प्रदेश नियत ही हैं। वे प्रदेश संसार अवस्था में संकोच विस्तार को प्राप्त होते हैं और मोक्ष-अवस्था में चरम शरीर से कुछ कम परिमाण से स्थित रहते हैं।)। 24। सर्व शरीरों में एकस्वरूपात्मक ऐसी स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति। (शरीर के धर्मरूप न होकर अपने अपने धर्मों में व्यापनेरूप शक्ति सो स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति है।)। 25। स्व-पर के समान, असमान और

समानासमान ऐसे तीन प्रकार के भावों की धारणस्वरूप साधारण-असाधारण-साधारणासाधारणाधर्मत्वशक्ति। 26। विलक्षणा(परस्पर भिन्न लक्षणायुक्त) अनन्त स्वभावों से भावित ऐसा एक भाव जिसका लक्षण है ऐसी अनन्त धर्मत्वशक्ति ।27। तद्रूपमयता और अतदरूपमयता जिसका लक्षण है ऐसी विरुद्ध धर्मत्वशक्ति। 28। तद्रूप भवनरूप ऐसी तत्त्वशक्ति। (तत्स्वरूप होने रूप अथवा तत्स्वरूप परिणमनरूप ऐसी तत्त्वशक्ति आत्मा में है। इस शक्ति से चेतन चेतन रूप से रहता है-परिणमित होता है।)। 29। अतद्रूप भवनरूप ऐसी अतत्त्वशक्ति। (तत्स्वरूप नहीं होने रूप अथवा तत्स्वरूप नहीं परिणमनेरूप अतत्त्वशक्ति आत्मा में है। इस शक्ति से चेतन जड़रूप नहीं होता।) 30। अनेक पर्यायों में व्यापक ऐसी एकद्रव्यमयतारूप एकत्व।।31। एक द्रव्य से व्याप्य जो अनेक पर्यायें उसमयपनेरूप अनेकत्वशक्ति

32 भूतावस्थत्वरूपा भावशक्तिः33 शून्यावस्थत्वरूपा अभावशक्तिः 34। भवत्पर्यायव्ययरूपा भावाभावशक्तिः 35। अभवत्पर्यायोदयरूपा अभावभावशक्तिः 36। भवत्पर्यायभवनरूपा भावभावशक्तिः 37। अभवत्पर्यायाभवनरूपा अभावाभावशक्तिः 38। कारकानुगतक्रियानिष्कांतभवनमात्रमयी भावशक्तिः 39। कारकानुगतभवत्तारूप भावमयी क्रियाशक्तिः40। प्राप्यमाणसिद्धरूपभावमयी कर्मशक्तिः41 । भवत्तारूप सिद्धरूपभावभावकत्वमयीकर्तृशक्तिः 42। भवद्भावभवनसाधकतमत्वमयी करणशक्तिः43। स्वयं दीयमानभावोपेयत्वमयी संप्रदानशक्तिः 44। उत्पादव्यालिंगितभावापाय निरपायध्रुवत्वमयी अपादानशक्तिः 45 भाव्यमानभावाधारत्वमयी अधिकरणशक्तिः 46। स्वभावमात्रस्वस्वामित्वमयी संबंधशक्तिः47। (समयसार)

।32 विद्यमान-अवस्थायुक्तारूप भावशक्ति। (अमुक अवस्था जिसमें विद्यमान हो उस रूप भावशक्ति।33। शून्य (अविद्यमान) अवस्थायुक्तारूप अभावशक्ति। (अमुक अवस्था जिसमें अविद्यमान हो उस रूप अभाव शक्ति)। 34। भवते हुए(प्रवर्त्तमान) पर्यायके व्यय भावाभावशक्ति ।35। नहीं भवते हुए(अप्रवर्तमान) पर्याय के उदयरूप अभावशक्ति।36। भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के भवनरूप

भावभावशक्ति ।37। नहीं भवते हुये (अप्रवर्तमान) पर्याय के अभवन रूप अभावाभाव शक्ति।38। (कर्त्ता, कर्म आदि) कारकों के अनुसार जो क्रिया उससे रहित भवनमात्रमयी (होनेमात्रमयी) भाव शक्ति। 39। कारकों के अनुसार परिणमित होने रूप भावमयी क्रियाशक्ति । 40। प्राप्त किया जाता जो सिद्धरूप भाव उसमयी कर्मशक्ति।41। होने पन रूप और सिद्धरूप भाव के भावकत्वमयी कर्तृत्वशक्ति । 42। भवते हुये (प्रवर्तमान) भाव के भवन के (होने के) साधकतमपनेमयी (उत्कृष्ट साधक त्वमयी, उग्र साधनत्वमयी) करणशक्ति। 43। अपने द्वारा दिया जाता जो भाव उसके उपेयत्वमय (उसे प्राप्त करने के योग्यपनामय, उसे लेने के पात्रपनामय) सम्प्रदान शक्ति ।44। उत्पादव्यय से आलिंगित भाव का अपाय (हानि, नाश) होने से हानि को प्राप्त न होने वाले ध्रुवत्वमयी अपादानशक्ति । 45। भाव्यमान (अर्थात् भाव में आते हुये) भाव के आधारत्वमयी अधिकरणशक्ति। 46। स्वभावमात्र स्व-स्वामित्वमयी सम्बन्धशक्ति। (अपना भाव अपना स्व है और स्वयं उसका स्वामी है- ऐसे सम्बन्धमयी सम्बन्धशक्ति)।47। 'इत्यादि अनेक शक्तियों से युक्त आत्मा है तथापि वह ज्ञानमात्रता को नहीं छोड़ता- इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं :-

इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि
यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः
एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं
तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु।। 264।।

श्लोकार्थ :- (इत्यादि अनेक निज-शक्ति-सुनिर्भरः अपि) इत्यादि (पूर्व कथित 47 शक्तियां इत्यादि) अनेक निज शक्तियों से भलीभांति परिपूर्ण होने पर भी (यःभावःज्ञानमात्रमयतां न जहाति) जो भाव ज्ञानमात्रमयता को नहीं छोड़ता (तद) ऐसा वह,(एवं क्रम-अक्रम-विवर्ति चित्रम्) पूर्वोक्त प्रकार से क्रमरूप और अक्रमरूप से वर्तमान विवर्त्तसे (रूपान्तर से, परिणमन से) अनेक प्रकार का (द्रव्य-पर्ययमयं) द्रव्य पर्यायमय (चिद्) चैतन्य (अर्थात् ऐसा वह चैतन्य भाव आत्मा (इह) इस लोक में (वस्तु अस्ति) वस्तु है।

भावार्थ-कोई यह समझ सकता है कि आत्मा को ज्ञानमात्र कहा है इसलिये वह एक स्वरूप ही होगा। किन्तु ऐसा नहीं है। वस्तु का स्वरूप द्रव्यपर्यायमय है। चैतन्य भी वस्तु है, द्रव्यपर्यायमय है। वह चैतन्य अर्थात् आत्मा अनन्त शक्तियो से

परिपूर्ण है और क्रमरूप तथा अक्रमरूप अनेक प्रकार के परिणाम के विकारों के समूह रूप अनेकाकार होता है फिर भी ज्ञान को जो कि असाधारणभाव है उसे नहीं छोड़ता उसकी समस्त अवस्थाएं-परिणाम पर्याय ज्ञानमय ही हैं।264।

'इस अनेकस्वरूप-अनेकान्तमय वस्तु को जो जानते हैं, श्रद्धा करते हैं और अनुभव करते हैं, वे ज्ञानस्वरूप होते हैं इस आशय का, स्याद्वाद का फल बतलाने वाला काव्य कहते हैं-

जयति सहजतेजःपुंजमज्जत्त्रिलोकी
स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः।
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोंपलंभः
प्रसभनियमिताचिंश्चिचमत्कार एषः।। 275।।

श्लोकार्थ :- तेजः पुञ्ज मज्जत् त्रिलोकी स्खलत् अखिल विकल्पः अपि एकः एव स्वरूपः (सहज) अपने स्वभावरूप (तेजःपुञ्ज में त्रिलोक के पदार्थ मग्न हो जाते है इसलिये जिसमें अनेक भेद होते हुए दिखाई देते हैं तथापि जिसका एक ही स्वरूप है(अर्थात् केवलज्ञान में सर्व पदार्थ झलकते हैं इसलिये जो अनेक ज्ञेयाकार रूप दिखाई देता है तथापि जो चैतन्यरूप ज्ञानाकार की दृष्टि में एकस्वरूप ही है), स्व-रस-विसर-पूर्ण अच्छिन्न-तत्त्व उपलम्भः) जिसमें निजरस के विस्तार से पूर्ण अछिन्न तत्त्वोपलब्धि है(अर्थात् प्रतिपक्षी कर्म का अभाव) हो जाने से जिसमें स्वरूपानुभवक अभाव नहीं होता) प्रसभ-नियमित-अर्चि) और जिसकी ज्योति अत्यन्त नियमित है (अर्थात् जो अनन्तवीर्य से निष्कम्प रहता है) (एषःचित्त् - चमत्कारः जयति) ऐसा यह (प्रत्यक्ष अनुभवगोचर) चैतन्य चमत्कार जयवन्त वर्तता है। किसी से बाधित नहीं किया जा सकता ऐसा सर्वोत्कृष्ट रूप से विद्यमान है।

(यहाँ 'चैतन्यचमत्कार जयवन्त वर्तता है' इस कथन में जो चैतन्यचमत्कार का सर्वोत्कृष्टतया होना बताया है, वही मङ्गल है)। 275।

अब इस श्लोक में टीकाकार आचार्यदेव आत्मा को आशीर्वाद देते हैं और साथ ही अपना नाम भी प्रगट करते हैं :-

अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्म
न्यनवरतनिमग्नं धारयद् ध्वस्तमोहम्।

श्लोकार्थ :- (अविचलित-चिदात्मनि आत्मनि आत्मनम् आत्मना अनवरत निमग्नं धारयत् (जो अचल चेतनास्वरूप आत्मा में आत्मा को अपने आप ही निरन्तर निमग्न रखती है(अर्थात् प्राप्त किये गये स्वभाव कभी नहीं छोड़ती),

ध्वस्त मोहम् जिसने मोह का (अज्ञानांधकार का) नाश किया है, (निःसपत्नस्वभावम्) जिसका स्वभाव निःसपल (प्रतिपक्षी कर्मों से रहित) है, विमल-पूर्ण जो निर्मल है और पूर्ण है; ऐसी (एतत् उदितम् अमृतचन्द्र-ज्योतिः) यह उदय को प्राप्त अमृतचन्द्र ज्योति (अमृतमय चन्द्रमा के समान ज्योति, ज्ञान आत्मा (समन्तात् ज्वलतु) सर्वतः जाज्वल्यमान रहो।

भावार्थ :- जिसका न तो मरण होता है और न जिससे दूसरे का नाश होता है वह अमृत है; और जो अत्यन्त स्वादिष्ट (मीठा) होता है उसे लोग रूढ़ि से अमृत कहते हैं। यहाँ ज्ञान को आत्मा को अमृतचन्द्रज्योति (अमृतमय चन्द्रमा के समान ज्योति) कहा है, जो कि लुप्तोपमालंकार है; क्योंकि 'अमृतचन्द्रवत् ज्योतिः' का समास करने पर 'वत का लोप होकर अमृतचन्द्रज्योतिः' होता है।

(यदि 'वत्' न रखकर 'अमृतचन्द्ररूप ज्योति' अर्थ किया जाय तो भेदरूपक अलङ्कार होता है। और 'अमृतचन्द्ररूपज्योति' ही आत्मा का नाम कहा जाय तो अभेद रूपक अलङ्कार होता है।)

उदितममृत्तचंद्रज्योतिरेतत्समंता ज्ज्वलतु विमलपूर्ण निःसपत्नस्वभावम्।।276।।

आत्मा को अमृतमय चन्द्रमा के समान कहने पर भी, यहाँ कहे गये विशेषणों के द्वारा आत्मा का चन्द्रमा के साथ व्यतिरेक भी है; क्योंकि 'व्यस्तमोह' विशेषण अज्ञानांधकार का दूर होना बतलाता है। 'विमलपूर्ण' विशेषण लांछन रहितता तथा पूर्णता बतलाता है; निःसपत्नस्वभाव' विशेषण राहुबिम्ब से तथा बादल आदि से आच्छादित न होना बतलाता है, और 'समंतात् ज्वलतु' सर्व क्षेत्र और सर्वकाल में प्रकाश करना बतलाता है; चन्द्रमा ऐसा नहीं है।

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके
जिनवचसि रमंते ये स्वयं बांतमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरच्चै
रनवमनयपक्षाक्षुण्णामीक्षंत एव।। 4।।

श्लोकार्थ :- (उभय-नय-विरोध-ध्वंसिनि) निश्चय और व्यवहार इन दो नयों

के विषय के भेद से परस्पर विरोध है; उस विरोध का नाश करने वाला (स्यात् पद-अंक) 'स्यात्' पद से चिह्नित जो (जिनपवचसि) जिन भगवान् का वचन (वाणी) है उसमें (ये रमन्ते) जो पुरुष रमते हैं (प्रचुर प्रीति सहित अभ्यास करते हैं(ते) वे (स्वयं अपने आप ही (अन्य कारण के बिना (वान्तमोहाः (मिथ्यात्व कर्म के उदय का वमन करके (उच्चैः पर ज्योतिःसमयसारं(इस अतिशयरूप परम ज्योति प्रकाशमान शुद्ध आत्मा को (सपदि ईक्षन्ते एव) तत्काल ही देखते हैं। वह समयसाररूप शुद्ध आत्मा (अनवम्) नवीन उत्पन्न नहीं हुआ; किन्तु पहले कर्मों से आच्छादित था सो वह प्रगट व्यक्ति रूप हो गया है और वह (अनय-पक्ष-अक्षण्णम) सर्वथा एकान्त रूप कुनय के पक्ष से खण्डित नहीं होता, निर्बाध है।

व्यवहरणनयःस्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या
मिह निहितदानां हंत हस्तावलंबः।
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं
परविरहितमंतः पश्यर्ता नैष किंचित्।। 5।।

श्लोकार्थः- (व्यवहरण नयः) जो व्यवहारनय है वह (यद्यपि) यद्यपि इह प्राक्-पदव्यां इस पहली पदवी में जब तक शुद्धस्वरूप की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक (निहित-पदानां) जिन्होंने अपना पैर रखा है ऐसे पुरुषों को (हन्त) अरे रे! हस्तावलंबःस्यात् हस्तावलम्बन तुल्य कहा है, (तद्-अपि) तथापि (चित्-चमत्कार-मात्रं पर-विरहितं परमं अर्थ अन्तः पश्यतां जो पुरुष चैतन्य-चमत्कारमात्र, परद्रव्यभावों से रहित (शुद्धनय के विषयभूत) परम 'अर्थ' को अन्तरङ्ग में अवलोकन करते हैं, परद्रव्यभावों से रहित (शुद्धनय के विषयभूत) परम 'अर्थ' को अन्तरङ्ग में अवलोकन करते हैं, उसकी श्रद्धा करते हैं तथा उस रूप लीन होकर चारित्रभाव को प्राप्त होते हैं उन्हें (एवः) वह व्यवहारनय(किञ्चित् न) कुछ भी प्रयोजनवान नहीं है।

अब निश्चय सम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं :-

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यांतरेभ्यःपृथक्।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयं
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसंततिमिमामात्मायमेकोस्तु नः।।6।।

श्लोकार्थः- (अस्य आत्मनः) इस आत्मा को (यद् इह द्रव्यान्तरेभ्यःपृथक्

दर्शनम्)अन्य द्रव्यों से पृथक देखना (श्रद्धान करना (एतत एवं नियमात् सम्यग्दर्शनम्) ही नियम से सम्यक्दर्शन है, यह आत्मा (व्यापतुः अपने गुण-पर्यायों व्याप्त रहने वाला है, और शुद्धनयतःएकत्वे नियतस्य शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है तथा (पूर्ण-ज्ञान-घनस्य) पूर्ण ज्ञानघन है। (च) एवं (तावान् अयं आत्मा (जितना सम्यक्दर्शन है उतना ही आत्मा है, (तत् इसलिए आचार्य प्रार्थना करते हैं कि इमाम नव-तत्त्व-सन्ततिं मुक्त्वा (''इस नवतत्त्व की परिपाटी को छोड़कर, अयम् आत्मा एकःअस्तु नः यह आत्मा एक ही हमें प्राप्त हो।''

भावार्थ :- सर्व स्वाभाविक तथा नैमित्तिक अपनी अवस्था रूप गुण पर्याय भेदों में व्यापने वाला यह आत्मा शुद्धनय से एकत्व निश्चित किया गया है-शुद्धनय से ज्ञायक मात्र एक आकार दिखलाया गया है, उसे सर्व अन्य द्रव्यों और अन्यद्रव्यों के भावों अलग देखना, श्रद्धान करना सो नियम से सम्यक् दर्शन है। उसे सर्व अन्य द्रव्यों और अन्य द्रव्यों के भावों से अलग देखना, श्रद्धान करना सो नियम से सम्यक् दर्शन है। व्यवहारनय आत्मा को अनेक भेदरूप कहकर सम्यक्दर्शन को अनेक भेदरूप कहता है, वहां व्यभिचार (दोष) आता है, नियम नहीं रहता। शुद्धनय की सीमा तक पहुँचने पर व्यभिचार नहीं रहता इसलिये नियमरूप है, शुद्धनय का विषयभूत आत्मा पूर्ण ज्ञानघन है- सर्व लोकालोक को जानने वाला ज्ञानस्वरूप है। ऐसे आत्मा का श्रद्धानरूपं सम्यक्दर्शन है। यह कहीं पृथक् पदार्थ नहीं है आत्मा ही परिणाम है, इसलिये आत्मा ही है। अतः जो सम्यक्दर्शन है सो आत्मा है, अन्य नहीं।

यहां इतना विशेष समझना चाहिए कि जो नय है सो श्रुतप्रमाण का अंश है, इसलिये शुद्धनय भी श्रुतप्रमाण का ही अंश हुआ। श्रुतप्रमाण परोक्ष प्रमाण है, क्योंकि वस्तु को सर्वज्ञ के आगम के वचन से जाना है; इसलिये यह शुद्धनय सर्व द्रव्यों से भिन्न, आत्मा की सर्व पर्यायों में व्याप्त, पूर्ण चैतन्य केवलज्ञान रूप-सर्व लोकालोक को जानने वाले, असाधारण चैतन्य धर्म को परोक्ष दिखाता है। यह व्यवहारी छद्मस्थ जीव आगम को प्रमाण करके शुद्धनय से दिखाये गये पूर्ण आत्मा का श्रद्धान करे सो वह श्रद्धान निश्चय सम्यक्दर्शन है। जब तक व्यवहारनय के विषयभूत भेदरूप तत्त्वों का ही श्रद्धान रहता है।

तब तक निश्चय सम्यक्दर्शन नहीं होता । इसलिये आचार्य कहते हैं कि इन नवतत्त्वों की संतति (परिपाटी) को छोड़कर शुद्धनय का विषयभूत एक आत्मा ही

हमें प्राप्त हो; हम दूसरा कुछ नहीं चाहते। वह वीतराग अवस्था की प्रार्थना है, कोई नयपक्ष नही है। यदि सर्वथा नयों का पक्षपात ही हुआ तो मिथ्यात्व ही है।

यहां कोई प्रश्न करता है कि आत्मा चैतन्य है, मात्र इतना ही अनुभव में आये तो इतनी श्रद्धा सम्यक्दर्शन है या नहीं ? उसका समाधान यह हैः नास्तिकों को छोड़कर सभी मतवाले आत्मा को चैतन्यमात्र मानते हैं, यदि इतनी ही श्रद्धा को सम्यक्दर्शन कहा जाये तो सबकी सम्यक्त्व सिद्ध हो जायेगा, इसलिए सर्वज्ञ की वाणी में जैसा सम्पूर्ण आत्मा का स्वरूप कहा है वैसा श्रद्धान होने से ही निश्चय सम्यक्त्व होता है ऐसा समझना चाहिए।। 6।।

अब, टीकाकार-आचार्य निम्नलिखित श्लोक में यह कहते हैं कि 'तत्पश्चात् शुद्धनय के आधीन, सर्व द्रव्यों से भिन्न, आत्म ज्योति प्रगट हो जाती है :-

अतः शुद्धनयायत्तं प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत्।
नवतत्त्वगतत्बेपि यदेकत्वं न मुंचति।।7।।

श्लोकार्थ :- (अतः) तत्पश्चात् (शुद्धनय-आयत्तं) शुद्धनय के आधीन (प्रत्यग् ज्योतिः) जो भिन्न आत्मज्योति है (तत्) वह (चकास्ति) प्रगट होती है (यद्) कि जो नव-तत्त्व-गतत्त्वे अपि) नव तत्त्वों में प्राप्त होने पर भी(एकत्वं) अपने एकत्व को (न मुंच) नहीं छोड़ती।

भावार्थ- नव तत्त्वों में प्राप्त हुआ आत्मा अनेकरूप दिखाई देता है; यदि उसका भिन्न स्वरूप विचार किया जाये तो वह अपनी चैतन्यचमत्कार मात्र ज्योति को नहीं छोड़ता।

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं।। 13।।

गाथार्थ :- (भूतार्थेन अभिगतः(भूतार्थ नय से ज्ञात (जीवा जीवी) जीव अजीव (च) और (पुण्यपापं) पुण्य, पाप (च) तथा (आस्रवसंवरनिर्जराः) आस्रव, संवर, निर्जरा (बंधः) बन्ध (च) और (मोक्ष) (सम्यक्त्वम) यह नवतत्त्व सम्यक्त्व है।

टीका :- यह जीवादि नवतत्त्व भूतार्थ नय से जाने हुये सम्यग्दर्शन ही है(यह नियम कहा); क्योंकि तीर्थ की (व्यवहार धर्म की) प्रवृत्ति के लिये अभूतार्थ (नय से कहा जाता है ऐसे नवतत्त्व जिनके लक्षण जीव, अजीव, पुण्य,पाप, आस्रव,

संवर, निर्जरा बन्ध और मोक्ष हैं उनमें एकत्व प्रगट करने वाले भूतार्थनय से एकत्व प्राप्त करके, शुद्धनय रूप से स्थापित आत्मा की अनुभूति जिसका लक्षण आत्मख्याति है- वह प्राप्त होती है (शुद्धनय से नव तत्त्वों को जानने से आत्मा की अनुभूति होती है, इस हेतु से यह नियम कहा है। (वहां विकारी होने योग्य और विकार करने वाला-दोनों योग्य (संवार्य) और संवर करने वाला (संवादक) दोनों संवर हैं, निर्जरा होने के योग्य और निर्जरा करने वाले दोनों निर्जरा है, बँधने के योग्य और बन्धन करने वाला दोनों बन्ध है, और मोक्ष होने योग्य तथा मोक्ष करने वाला- दोनों मोक्ष है; क्योंकि एक के ही अपने आप पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष की उपपत्ति (सिद्धि) नहीं बनती। वे दोनों और अजीव है (अर्थात् उन दों में से एक जीव है और दूसरा अजीव।)

बाह्य (स्थूल) दृष्टि से देखा जाये तो-जीव पुद्गल की अनादि बन्ध पर्याय के समीप जाकर एकरूप से अनुभव करने पर यह नवतत्त्व भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं और एक जीव द्रव्य के, स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर वे अभूतार्थ है, असत्यार्थ हैं; (वे जीव के एकाकार स्वरूप में नहीं है;) इसलिये इन सब तत्त्वों में भूतार्थ एक जीव ही प्रकाशमान है। इसी प्रकार अन्तरदृष्टि से देखा जाये तो ज्ञायक भाव जीव है और जीव के विकार का हेतु अजीव है; और पुण्य, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष जिनके लक्षण हैं। ऐसे केवल जीव के विकार हैं और पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष-ये विकार हेतु केवल अजीव हैं। ऐसे यह नव तत्त्व, जीवद्रव्य के स्वभाव को छोड़कर, स्वयं और पर जिनके कारण हैं ऐसे एक द्रव्य की पर्यायों रूप में अनुभव करने पर भूतार्थ हैं और सर्व काल में अस्खलित एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं- असत्यार्थ हैं। इसलिये इन तत्त्वों में भूतार्थ नय से एक जीव ही प्रकाशमान है। इस प्रकार यह, एकत्वरूप से प्रकाशित होता हुआ शुद्धनय रूप से अनुभव किया जाता है। और जो यह अनुभूति है सो आत्मख्याति (आत्मा की पहिचान) ही है, और जो आत्मख्याति है सो सम्यक्दर्शन ही हैं। इस प्रकार यह सर्व कथन निर्दोष है- बाधा रहित है।

भावार्थ-इन नव तत्त्वों में, शुद्ध नय से देखा जाये तो जीव ही एक चैतन्य-चमत्कार मात्र प्रकाशरूप प्रगट हो रहा है, इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न नवतत्त्व कुछ भी दिखाई नहीं देते। जब तक इस प्रकार जीव तत्त्व की जानकारी जीव को नहीं है

तब तक व्यवहारदृष्टि हैं, भिन्न भिन्न नवतत्त्वों को मानता है। जीव पुद्गल बन्धपर्याय दृष्टि से यह पदार्थ भिन्न भिन्न दिखाई देते हैं; किन्तु जब शुद्ध नय से जीव पुद्गल का निज स्वरूप भिन्न भिन्न देखा जाये तब वे पुण्य, पापादि सात तत्त्व कुछ भी वस्तु नहीं है; वे निमित्त नैमित्तिक भाव से हुए थे इसलिए जब वह निमित्त-नैमित्तिकभाव मिट गया तब जीव, पुद्गल भिन्न भिन्न होने से अन्य कोई वस्तु(पदार्थ) सिद्ध नहीं हो सकती। वस्तु तो द्रव्य है, और द्रव्य का निजभाव द्रव्य के साथ ही रहता है तथा निमित्त नैमित्तिक भाव का अभाव ही होता है, इसलिये शुद्धनय से जीव को जानने से ही सम्यक्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है। जब तक भिन्न भिन्न नव पदार्थों को जाने, और शुद्ध नय से आत्मा को न जाने तब तक पर्याय बुद्धि है।

चिरमिति नवतत्त्वच्छन्नमुन्नीयमानं
कनकमि निमग्नं वर्णमालाकलायें।
अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं
प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम्।। 8।।

श्लोकार्थ- (इति) इस प्रकार (चिरम् नव-तत्त्व-च्छन्नम् इदम् आत्मज्योतिः) नव तत्त्वों में बहुत समय से छिपी हुई यह आत्मज्योति (उन्नीसयमानं) शुद्धनय से बाहर निकालकर प्रगट की गई है, (वर्णमाला-कलापे निमग्नं कनकम् इव) जैसे वरणों में छिपे हुए एकाकार स्वर्णा को बाहर निकालते हैं। (अथ) इसलिएअब है भव्य जीवो!(सततविविक्तं) इसे सदा अन्य द्रव्यों से तथा उनसे होने वाले नैमित्तिक भावों से भिन्न, **(एकरूपं)** एकरूप **(द्दश्यताम्)** देखों (प्रतिपदम् उद्योतमानम्) यह (ज्योंति), पद पद पर अर्थात् प्रत्येक एकरूप चित्चमत्कारमात्र उद्योतमान है।

टीका :- अब, जैसे नवतत्त्वों में एक जीव को जानना भूतार्थ कहा है, उसी प्रकार, एकरूप से प्रकाशमान आत्मा के अधिगम के उपाय जो प्रमाण, नय, निक्षेप हैं वे निश्चय से अभूतार्थ हैं, उनमें भी यह आत्मा एक ही भूतार्थ हैं(क्योंकि ज्ञेय और वचन के भेदों से प्रमाणादि अनेक भेदरूप होते हैं)। उनमें से पहले, प्रमाण दो प्रकार के हैं- परोक्ष और प्रत्यक्ष। उपात्त और अनुपात पर (पदार्थों) द्वारा प्रवर्ते वह परोक्ष है और केवल आत्मा से ही प्रतिनिश्चितरूप से प्रवृत्ति करे सो प्रत्यक्ष हैं। (प्रमाण ज्ञान है। वह ज्ञान पांच प्रकार का है- मति, श्रुत, अवधि मनःपर्यय और केवल। उनमें से मति और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं, अवधि और मनःपर्यय ज्ञान विकल-प्रत्यक्ष है और केवलज्ञान-

सकल-प्रत्यक्ष है। इसलिये यह दो प्रकार के प्रमाण हैं।) वे दोनों प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय के भेद का अनुभव करने पर तो भूतार्थ हैं, सत्यार्थ है; और द्रव्य तथा पर्याय दोनों से अनालिंगित (आलिंगन नहीं किया हुआ) शुद्ध वस्तु मात्र जीव के (चैतन्यमात्र) स्वभाव का अनुभव करने पपर वे अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं।

निक्षेप के चार भेद है- नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। वस्तु में जो गुण न हो उस गुण के नाम से (व्यवहार के लिए) वस्तु की संज्ञा करना सो नाम निक्षेप है। 'यह वह है' इस प्रकार अन्य वस्तु में अन्य वस्तु का प्रतिनिधित्व स्थापित करना (प्रतिमारूप स्थापन करना) सो स्थापना निक्षेप है। वर्तमान से अन्य अर्थात् अतीत अथवा अनागत पर्याय से वस्तु को वर्तमान में कहना सो द्रव्य निक्षेप है। वर्तमान पर्याय से वस्तु को वर्तमान में कहना सो भाव निक्षेप है। इन चारों निक्षेपों का अपने अपने लक्षण भेद से (विलक्षण रूप से भिन्न भिन्न रूप से) अनुभव किये जाने पर वे भूतार्थ, सत्यार्थ है और भिन्न लक्षण से रहित एक अपने चैतन्य लक्षण रूप जीव स्वभाव का अनुभव करने पर वे चारों ही अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं। इस प्रकार इन प्रमाण-नय-निक्षेपों में भूतार्थ रूप से एक जीव ही प्रकाशमान हैं।

उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं
क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रम्।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मि
न्ननुभवसुपयाते भाति न द्वैतमेव।।9।।

श्लोकार्थ - आचार्य शुद्धनय का अनुभव करके कहते हैं कि (अस्मिन्, सर्वङ्कषे श्राम्नि अनुभवम् उपयाते) इन समस्त भेदों को गौण करने वाला जो शुद्धनय का विषयभूत चैतन्य-चमत्कार मात्र तेजःपुञ्ज आत्मा है, उसका अनुभव होने पर (नयश्रीः न उदयति) नयों की लक्ष्मी उदित नहीं होती, (प्रमाण अस्तम् एति) प्रमाण अस्त हो जाता है (अपि च) और (निक्षेपचक्रम् क्वचित् याति, न विद्मः) निक्षेपों का समूह कहां चला जाता है सो हम नहीं जानते। (किम अपरम् अभिदध्मः) इससे अधिक क्या कहें ?(द्वैतम् एव न नाति) द्वैत ही प्रतिभासित नहीं होता।

भावार्थः- भेद को अत्यन्त गौण करके कहा है कि प्रमाण, नयादि भेद की तो बात ही क्या ? शुद्ध अनुभव के होने पर द्वैत ही भासित नहीं होता, एकाकार चिन्मात्र ही दिखाई देता है।

यहाँ विज्ञानाद्वैतवादी तथा वेदान्ती कहते हैं कि अन्त में परमार्थरूप तो अर्द्ध तक ही अनुभव हुआ। यही हमारा मत है; इसमें आपने विशेष क्या कहा ? इसका उत्तरः- तुम्हारे मत में सर्वथा अद्वैत माना जाता है। यदि सर्वथा अद्वैत माना जाये तो बाह्य वस्तु का अभाव ही हो जाये, और ऐसा अभाव तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। हमारे मत में नय विवक्षा है जो कि बाह्य वस्तु का लोभ नहीं करती। जब शुद्ध अनुभव से विकल्प मिट जाता है तब आत्मा परमानन्द को प्राप्त होता है इसलिए अनुभव कराने के लिए यह कहा है- कि ''शुद्ध अनुभव में द्वैत भासित नहीं होता।'' यदि बाह्य वस्तु का लोप किया जाये तो आत्मा का भी लोप हो जायेगा और शून्यवाद का प्रसङ्ग आयेगा। इसलिए जैसा तुम कहते हो उस प्रकार से वस्तु स्वरूप की सिद्धि नहीं हो सकती और वस्तु स्वरूप की यथार्थ श्रद्धा के बिना जो शुद्ध अनुभव किया जाता है वह भी मिथ्यारूप है; शून्य का प्रसङ्ग होने से तुम्हारा अनुभव भी आकाश-कुसुम में अनुभव के समान है।।9।।

आत्मस्वभावं परभावभिन्न
मापूर्णमाद्य तविमुक्तमेकम्।
विलीनसंकल्पविकल्पजालं
प्रकाशयन् शुद्धनयोभ्युदेति।। 10।।

श्लोकार्थ :- (शुद्धनयः आत्मस्वभावंप्रकाशयन् अभ्युदेति) शुद्धनय आत्मस्वभाव को प्रगट करता हुआ उदय रूप होता है। वह आत्मस्वभाव को (परभावभिन्नम्) पर द्रव्य, पर द्रव्य के भाव तथा पर द्रव्य के निमित्त से होने वाले अपने विभाव ऐसे परभावों से भिन्न प्रगट करता है। और वह (आपूर्णम्) आत्म स्वभाव सम्पूर्ण से पूर्ण है समस्त लोकालोक का ज्ञाता है-ऐसा प्रगट करता है;(क्योंकि ज्ञान में भेद कर्म संयोग से है, शुद्धनय कर्म गौण हैं।) और वह (आदि-अन्तःविमुक्तम्) आत्म स्वभाव को आदि अन्त से रहित प्रगट करता है (अर्थात् किसी आदि से लेकर जो किसी से उत्पन्न नहीं किया गया, और कभी भी किसी से जिसका विनाश नहीं होता, ऐसे पारिणामिक भाव को प्रगट करता है।) और वह, (एकम्) आत्मस्वभाव को एक सर्व भेदभाव से (द्वैतभावों से) रहित एकाकार प्रगट करता है, और (विलीनसंकल्प-विकल्प-जालं) जिसमें समस्त संकल्प-विकल्प के समूह विलीन हो गये हैं ऐसा प्रगट करता है। (द्रव्य कर्म, भावकर्म, नोकर्म आदि पुद्गलद्रव्यों में

अपनी कल्पना करना सो संकल्प है, और ज्ञेयों के भेद से ज्ञान में भेद ज्ञात होना सो विकल्प है।) ऐसा शुद्धनय प्रकाशरूप होता है।।10।।

ओजोपस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अप्पण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि।।(14)

गाथार्थ :- (य) जो नय (आत्मनं) आत्मा को (अबद्धस्पष्टम्) बन्ध रहित और पर के स्पर्श से रहित, (अनन्यकं) अन्यत्व रहित, (नियतम्) चला चलता रहित, (अविशेषम्) विशेष रहित, (असंयुक्त) अन्य के संयोग से रहित-ऐसे पांच भाव रूप से (पश्यति) देखता है (तं) उसे, हे शिष्य! तू (शुद्धनय) शुद्धनय (विजानीहि) जान।

टीका :- निश्चय से अबद्ध-अस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त ऐसे आत्मा को अनुभूति शुद्धनय है, और वह अनुभूति आत्मा ही है; इस प्रकार आत्मा एक ही प्रकाशमान है। (शुद्धनय, आत्मा की अनुभूति या आत्मा सब एक ही है, अलग, नहीं।) यहां शिष्य पूछता है कि जैसा ऊपर कहा है वैसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है ? उसका समाधान यह है :- बद्धस्पृष्टतम आदि भाव अभूतार्थ है इसलिए यह अनुभूति हो सकती है। इस बात को दृष्टान्त से प्रगट करते है- जैसे कमलिनी पत्र जल में डूबा हुआ हो तो उसका जल से स्पर्शित होने रूप अवस्था से अनुभव करने पर जल से स्पर्शित होना भूतार्थ है। सत्यार्थ है, तथापि जल से किंचित् मात्र भी न स्पर्शित होने योग्य-कमलिनी-पत्र के स्वभाव समीप जाकर अनुभव करने पर जल से स्पर्शित होना अभूतार्थ है। असत्यार्थ है, इसी प्रकार अनादि काल से बँधे हुए आत्मा का, पुद्गलकर्मो से बँधने-स्पर्शित होने रूप अवस्था से अनुभव करने पर वद्धस्पष्टता भूतार्थ है- सत्यार्थ हैं, तथापि पुद्गल से किंचित्मात्र भी स्पर्शित न होने योग्य आत्मस्वभाव से समीप जाकर अनुभव करने पर बद्धस्पष्टता अभूतार्थ है- असत्यार्थ हैं। तथा जैसे मिट्टी का, ढक्कन, घड़ा, झारी इत्यादि से पर्यायों से अनुभव करने पर अन्यत्व भूतार्थ है- सत्यार्थ है, तथापि सर्वतः अस्खलित (सर्व पर्याय भेदों से किंचितमात्र भी भेदरूप न होने वाले ऐसे) एक मिट्टी के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अन्यत्व अभूतार्थ है, इसी प्रकार आत्मा का, नारक आदि पर्यायों से अनुभव करने पर (पर्यायों के अन्य अन्य रूप से) अन्यत्व भूतार्थ है- सत्यार्थ है, तथापि सर्वतः अस्खलित(सर्व पर्यायभेदों से किंचित मात्र भेद रूप न

होने वाले) एक चैतन्याकार आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अन्यत्व अभूतार्थ है। जैसे समुद्र का, वृद्धिहानिरूप अवस्था में अनुभव करने पर अनियतता (अनिश्चितता) भूतार्थ है-सत्यार्थ है, तथापि नियम-स्थिर समुद्र स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अनियतता अभूतार्थ है- असत्यार्थ है; इसी प्रकार आत्मा का, वृद्धिहानि रूप पर्याय भेदों से अनुभव करने पर अनियतता भूतार्थ है-सत्यार्थ है, तथापि नित्य-स्थिर (निश्चल) आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अनियतता अभूतार्थ है असत्यार्थ है। जैसे सोने का, चिकनापन, पीलापन भारीपन इत्यादि गुणरूप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता भूतार्थ है-सत्यार्थ हैं, तथापि जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये है ऐसे सुवर्ण स्वभाव से समीप जाकर अनुभव करने पर विशेषता अभूतार्थ है असत्यार्थ है; इसी प्रकार आत्मा का, ज्ञान, दर्शन आदि गुणरूप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता भूतार्थ है-सत्यार्थ है, तथापि जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं ऐसे आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर विशेषता अभूतार्थ है- असत्यार्थ है। जैसे जल का, अग्नि जिसका निमित्त है ऐसी उष्णता के साथ संयुक्तपना तप्तारूप अवस्थासे अनुभव करने पर (जल का) उष्णातारूप संयुक्तपना भूतार्थ है-सत्यार्थ है, तथापि एकान्त शीतलतारूप जलस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर (उष्णता के साथ) संयुक्तता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है; इसी प्रकार आत्मा का, कर्म जिसका निमित्त है ऐसे मोह के साथ संयुक्तता रूप अवस्था में अनुभव करने पर संयुक्तता भूतार्थ है सत्यार्थ है, तथापि जो स्वयं एकान्त बोधरूप (ज्ञानरूप) है ऐसे जीव स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर संयुक्तता अभूतार्थ है- असत्यार्थ है।

क्या है धर्म ? क्या है कर्म ?

(स्वशुद्ध आत्मा ही स्वधर्म-स्वकर्म...व इसके उपाय भी)

(चालः किसी ने अपना बनाके...2. बंगला. डिया...) **आचार्य कनकनन्दी**

क्या है धर्म ? क्या है कर्म ? क्या है तेरे ज्ञान-विज्ञान?
क्या है सत्ता ? क्या सम्पत्ति?क्या है तेरी प्रसिद्धि डिग्री (सिद्धि)।।
तू ही धर्म, तू ही कर्म, तू ही तेरे ज्ञान विज्ञान।
तू ही सत्ता, तू ही सम्पत्ति, तू ही तेरी प्रसिद्धिसिद्धि(1)
''वस्तु स्वभाव धर्म होने से, तेरा ''शुद्ध स्वभाव'' ही तेरा धर्म।

इस हेतु ही जो तेरा पुरुषार्थ, वह ही तेरा परमार्थ कर्म।।
इस हेतु ही तेरा जो ज्ञान वह (ही), यथार्थ से ज्ञान-विज्ञान।
स्व परम सत्य ही तेरी है सत्ता, स्व अनन्त वैभव तेरी सम्पत्ति।। (2)
उक्त सभी प्राप्ति ही सिद्धि-प्रसिद्धि, अनन्त ज्ञान दर्शन तेरी डिग्री।
इसके अतिरिक्त तेरी विकृति, कर्म जनित सभी विकार वृत्ति।।
चौरासी लक्ष्य योनि चतुर्गति में, उक्त गुण धर्म न प्राप्त हुए हैं।
राजा महाराजा चक्री इन्द्र तक, शुद्ध आत्मिक गुण प्राप्त न किये।। (3)
अतः (तू) स्वस्वरूप का करो श्रद्धान, स्वस्वरूप का करो सही विज्ञान
स्वस्वरूप प्राप्ति हेतु करो आचरण, इस हेतु त्याग करो विकार परिणाम
रागद्वेष मोह काम क्रोध मद, ईर्ष्या तृष्णा घृणा दीन हीन त्याग
संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्याग, ''पर चिन्ता अधमाधमा'' भी त्याग(4)
तब तेरे धर्म कर्मादि होगें सम्यक्, अन्यथा सभी है बाह्य प्रपंच।
दिखावा ढोंग पाखण्ड मिथ्यात्व, आडम्बर से ले संकीर्ण स्वार्थ।।
अनन्तकाल से अनन्तानन्त बार, ऐसे मिथ्या धर्मादि किया आचरण।
अभी सम्यक् रूप से करो अनन्तवां भाग जिससे पाओगे स्वआत्म वैभव(5)
यह परम आध्यात्मिक रहस्य, सर्वज्ञ हितोपदेशी द्वारा कथित सत्य
इससे अनन्त आत्मा बने परमात्मा, परमात्मा बनना 'कनक' का परम लक्ष्य(6)
ग.पु. का. दि. 17.06.2019 रात्रि 9:23

अनन्तः (स्व) प्रवत्ति से पर (बाह्य)निवृत्ति

(दोनों परस्पर उपकारी)

(चालः- 1. किसी ने अपना बनाके...2.सायोनारा...3. आत्मशक्ति...) - आचार्य कनकनन्दी

अन्तः/(स्व) प्रवृत्ति में /(से) बाह्य/(पर) निवृत्ति...पर निवृत्ति से स्व प्रवृत्ति...
परस्पर उपकारी दोनों होते हैं...दोनों से ही मिलती परम मुक्ति...(स्थायी)...
अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ...मिथ्यात्व के उपशमादि होने से...
तत्त्वार्थश्रद्धान व आत्मश्रद्धान में...होती प्रवृत्ति देव शास्त्र गुरु में...
अष्टमद व अष्टदोष-विसर्जन...उपशम संवेग वैराग्य आस्तिक्य होते...
अष्ट गुण व अष्टअंग भी होते...मैत्री प्रमोद करुणा माध्यस्थ (सुज्ञान) होते...(1)

इससे अप्रत्याख्यान चतुष्टय के...उपशमादि से अणुव्रत में होती प्रवृत्ति...

फैशन व्यसन अन्याय भ्रष्टाचार नशते...दया दान सेवा पूजा परोपकारादि होते...
धर्म न होता ख्याति पूजा लाभ निमित्त...आत्मा विशुद्धि हेतु होता धर्म में प्रवृत्त...
दुःखक्षय कर्मक्षय बोधि लाभ निमित्त...समाधिमरण से जिनगुण प्राप्ति निमित्त...(2)
मल से निर्लिप्त कमल सम प्रवृत्ति...साधु बनने की सदा भावना होती...
भोगोपभोग सत्ता सम्पत्ति ख्याति...पर मानकर स्व में होती प्रवत्ति...
इससे प्रत्याख्यान चतुष्टाय के...उपशमादि से महाव्रत में होती प्रवृत्ति...
समस्त बहिरंग परिग्रहों से निवृत्ति...स्व उपलब्धि हेतु समता प्रवृत्ति...(3)

आत्मविशुद्धि हेतु ही ध्यान अध्ययन...निस्पृह एकान्त मौन आचरण...
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व...संकल्प विकल्प संक्लेश विसर्जन...
इससे होती समस्त पर से निवृत्ति...स्व में ही स्व की होती प्रवृत्ति...
इससे मिले शुद्ध बुद्ध आनन्द...अतएव 'कनक' स्व में होता प्रवृत्त...(4)

ग.पु. कॉलोनी, दि. 18.06.2019, प्रातः 8:06, (केशलोंच के दिन)

सुशिष्य की सद्गुरु प्रति कृतज्ञता व व्यथा ज्ञापन

वीतरागी गुरु का सदुपयोग व दुरुपयोग।
(वैराग्य चाहना सदुपयोग तो वित्त(धन) चाहना दुरूपयोग

''मैं'' को मुझ से मिलाने वाले, तुम हो सद्गुरु उपकारी अन्तरात्मा।
मैं नहीं हूँ तन मन तथा वचन, मैं हूँ जीवात्मा बनूगाँ परमात्मा।।
मैं मानता था स्वयं को शरीरमय, धनजन कुटुम्ब को माना था मेरा।।
मैं को शरीरमय मानना है 'अहंकार', धनजनादि को मेरा मानना ''ममकार''(1)
दोनों का स्वरूप होता मिथ्यात्व, इससे उत्पन्न होते राग द्वेष।
इन से उत्पन्न होते आकर्षण-विकर्षण, जिससे होता संसार में परिभ्रमण।।
आप के आध्यात्मिक उपदेश से, मेरे स्वभाव-विभाव का हुआ ज्ञान।।
श्रद्धा-प्रज्ञा से मुझे हो रहा अनुभव, मेरा संसार समुद्र रहा अंजुली प्रमाण (2)

आत्मशक्ति मेरी हो रही है जागृति,करना चाह रहा हूँ आत्मउन्नति।
आपसद्गुरु, मुझे दे रहे हो उद्बोधन, परिनिर्माण हेतु बनो तू श्रमण।।
चारित्रमोहनीय मेरे कर्मोदय से, श्रमण बनने हेतु नहीं हूँ समर्थ।।
तब आपने दिया मुझे श्रावक धर्म, श्रावक धर्म नहीं 'पूर्ण उत्कृष्ट धर्म।।(3)

दया दान सेवा परोपकार करणीय, अन्याय अत्याचार शोषण वर्जनीय।
आत्मविशुद्धि हेतु स्वाध्याय चिन्तन, संसार शरीर भोग से विरक्त मन।।
अन्तरंग बहिरंग परिग्रहों से विरक्त, श्रमण बनकर ध्यान अध्ययन रक्त।।
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि विरक्त, समता शान्ति निस्पृहता सहित।। (4)

इससे ही होगी मेरी आत्मविशुद्धि, गुणस्थान आरोहण से मिलेगी मुक्ति।
अक्षय अनन्त सुख मिलेगा मुझे, संसार भ्रमण से मुक्ति मिलेगी मुझे।
अतः आप ही मेरे महोपकारी, तीन काल में तव सम न कोई उपकारी।।
मोही कुज्ञानी स्वार्थी न जाने आपको, जन्मान्ध न जाने सूर्य को
प्रकाशकारी(5)

मोही तो आपसे चाहते सत्ता सम्पत्ति, संसार वर्द्धक ख्याति पूजा प्रसिद्धि।
यंत्र मंत्र तंत्र टोना टोटका आदि, विवाह व्यापार परिग्रह की प्राप्ति।।
धार्मिक कार्य से धनजन चाहते, विधान पंचकल्याण चातुर्मास से।।
मन्दिर मूर्ति धर्मशाला निर्माण हेतु, आपके माध्यम से धनार्जन करते।। (6)

बोली हेतु बैठा रखते आपको घंटो, प्रवचन हेतु कहते करो मिनटों में।
मान सम्मान नाच गाना जुलुस, घंटों अपव्यय होता भोजन हेतु।।
इससे (दुःखी) हो रहा है मेरा अन्तरात्मा, वीतरागी सन्त की हो रही दुर्दशा
वीतरागी संत से भक्त चाहते वित उपेक्षित हो रहे हैं निस्पृह सन्त (7)
मिथ्यात्व (अवस्था) में मेरी थी ऐसी ही दशा, आपकी कृपा से दूर हुई ये दशा
अतःआप हो मेरे उद्धारकर्ता, 'सूरी कनक' से वर्णित मेरी ये गाथा। (8)

ग.पु. को दि. 01.07.2019 रात्रि 1.04